ज्यूं था त्यूं ठहराया

अनुक्रम

1. स्वभाव में थिरता...2
2. संस्कृति का आधारः ध्यान..24
3. आचार्यो मृत्युः..42
4. संन्यास, सत्य और पाखंड...59
5. जागो-डूबो...86
6. गुरु कुम्हार, शिष्य कुंभ है...111
7. दुख से जागो..133
8. इक साधे सब सधै..155
9. आचरण नहीं--बोध से क्रांति..177 10..बुद्धत्व और पांडित्य 201

ज्यूं था त्यूं ठहराया
पहला प्रवचन

स्वभाव में थिरता

पहला प्रश्नः ओशो, आज प्रारंभ होने वाली प्रवचनमाला को जो शीर्षक मिला है, वह बहुत अनूठा और बेबूझ है--"ज्यूं था त्यूं ठहराया!" हमें इस सूत्र का अर्थ समझाने की अनुकंपा करें।

आनंद मैत्रेय! यह सूत्र निश्चय ही अनूठा है और बेबूझ है। इस सूत्र में धर्म का सारा सार आ गया है--सारे शास्त्रों का निचोड़। इस सूत्र के बाहर कुछ बचता नहीं। इस सूत्र को समझा, तो सब समझा। इस सूत्र को जीआ, तो सब जीआ। सूत्र का अर्थ होता हैः जिसे पकड़ कर हम परमात्मा तक पहुंच जाएं। ऐसा
ही यह सूत्र है। सूत्र के अर्थ में ही सूत्र है। सेतु बन सकता है--परमात्मा से जोड़ने वाला। यूं तो पतला है बहुत, धागे की तरह, लेकिन प्रेम का धागा कितना ही पतला हो, पर्याप्त है।
"ज्यूं था त्यूं ठहराया!" मनुष्य स्वभाव से परमात्मा है, लेकिन स्वभाव से भटक गया। वह भटकाव भी अपरिहार्य था। बिना भटके पता ही नहीं चलता कि स्वभाव क्या है? जैसे मछली को जब तक कोई पानी से बाहर न निकाल ले, तब तक उसे याद भी नहीं आती कि क्या है पानी का राज, कि पानी जीवन है। यह तो जब मछली तट की रेत पर तड़फती है, तभी अनुभव में आता है। सागर में ही रही, सागर में ही बड़ी हुई, तो सागर का बोध असंभव है। भटके बिना बोध नहीं होता। भटके बिना बुद्धत्व नहीं होता।
इसलिए अपरिहार्य है भटकाव, लेकिन फिर भटकते ही नहीं रहना है! अनुभव में आ गया कि सागर है जीवन, तो फिर सागर की तलाश करनी है। धूप में तप्त रेत पर तड़फते ही नहीं रहना है।
और हम सब तड़फ रहे हैं। हमारा जीवन सिवाय तड़फन के और क्या है--एक विषाद,
एक संताप, एक चिंताओं का झमेला, एक दुख स्वप्नों का मेला! एक दुखस्वप्न छूट नहीं पाता कि दूसरा शुरू हो जाता है। कतार लगी है--अंतहीन कतार! कांटे ही कांटे--जैसे फूल यहां खिलते ही नहीं! दुख ही दुख! सुख की बस आशा। और आशा धीरे-धीरे निराशा बन जाती है। जब बहुत बार आशा हार जाती है; हर बार टूट जाती है, बिखर जाती है, तो स्वभावतः उम्र के ढलते-ढलते, सांझ आते-आते मनुष्य हताश हो जाता है, निराश हो जाता है। सूर्यास्त के साथ होते-होते उसके भीतर भी कुछ जीवन टूट जाता है, बिखर जाता है।
मरने के पहले ही लोग मर जाते हैं। जीने के पहले ही लोग मर जाते हैं! जीते-जी जान नहीं पाते जीवन क्या है? और कारण--इतना ही कि मछली तड़फती रहती है रेत पर; पास ही सागर है; एक छलांग की बात है। एक कदम से ज्यादा दूरी नहीं है। लेकिन अपनी तड़फन में ही ऐसी उलझ जाती है, याद भी आती है सागर की। वे सुख के दिन विस्मृत भी नहीं होते। इसीलिए तो आकांक्षा है आनंद की।
आनंद की आकांक्षा इस बात का सबूत है कि कभी हमने आनंद जाना है। जिसे जाना न हो, उसकी आकांक्षा कैसी! जिसे कभी चखा न हो, स्वाद न लिया हो, उसकी अभीप्सा असंभव है। जाना है कभी; स्वाद अब भी हमारी जबान पर है। अभी भी भूली नहीं। कितनी ही बिसर गई हो बात, बिल्कुल नहीं भूल गई, बिल्कुल नहीं मिट गई! कितने ही दूर की हो गई हो आवाज, अब भी आती है। अब भी पुकार उठती है, मगर साहस नहीं होता फिर--इस विराट सागर में डूबने का। जब तट पर इतनी कठिनाई है, तो सागर में पता नहीं और क्या मुश्किल हो जाए!
मछली सागर में फिर पहुंच जाए, तो ज्यूं था त्यूं ठहराया! हट गई थी स्वभाव से, फिर वापस लौट आई। फिर आनंद है। फिर उत्सव है। फिर हर रोज होली है, हर रोज दीवाली है।
और अब पहली बार पहचान होगी। सागर में पहले भी थी; सागर में अब भी है। मछली भी वही, सागर भी वही, फिर भी बात बदल गई। पहले अज्ञान था, अब बुद्धत्व है।
यह शीर्षक एक अपूर्व फकीर रज्जबजी के वचन का एक अंश है। पूरा वचन ख्याल में लोगे, तो यह अंश जल्दी समझ में आ सकेगा।

ज्यूं मुख एक देखि दुई दर्पन, गहला तेता गाया।
जन रज्जब ऐसी बिधि जानें, ज्यूं था त्यूं ठहराया।।
ज्यूं मुख एक देखि दुई दर्पन, ...
चेहरा तो एक है, लेकिन दर्पण में झांकोगे, तो दो हो जाता है। और दर्पण में झांके बिना चेहरे का पता नहीं चलता। सो मजबूरी है। झांक कर ही पता चलेगा। दर्पण में झांकना तो होगा। मगर झांकते ही जो एक था, वह दो हो जाता है! इसलिए खतरा भी है। अनिवार्यता और खतरा साथ-साथ।
अनिवार्यता--कि बिना दर्पण में झांके पता ही न चलेगा कि मेरा चेहरा कैसा है। नाक-नक्शा क्या है! मैं कौन हूं? कहां से हूं? क्या है मेरा स्वरूप? दर्पण में तो झांकना ही होगा। लेकिन झांकते ही एक दुविधा खड़ी हो जाती है, दुई खड़ी हो जाती है।
मैंने सुना है, अमृतसर से एक रेलगाड़ी दिल्ली की तरफ रवाना हुई। सरदार विचित्तर सिंह को जोर से लघुशंका लगी थी। जाकर सरदारी झटके से संडास का दरवाजा खोल दिया। झांक कर देखा; दर्पण में अपना चेहरा दिखाई पड़ा! जल्दी से कहाः माफ करिए सरदार जी! दरवाजा बंद कर दिया! मगर लघुशंका जोर से लगी थी। पांच मिनट सम्हाला, दस मिनट सम्हाला। मगर यह भीतर जो सरदार घुसा है, निकला ही नहीं, निकला ही नहीं! फिर जाकर दरवाजा खटखटाया, मगर जवाब भी न दे! फिर खोला। सरदार मौजूद था! कहाः माफ करना सरदार जी! फिर बंद कर दिया।
लेकिन अब सम्हालना मुश्किल हो गया। संयम की भी सीमा है! तभी कंडक्टर आ गया। तो विचित्तर सिंह ने कहा कि हद्द हो गई! एक आदमी अंदर घुसा है, सो घंटे भर से निकलता ही नहीं है! कंडक्टर ने कहाः देखो, मैं जाता हूं।
कंडक्टर ने झांका। कंडक्टर भी सरदार! जल्दी से दरवाजा बंद कर के विचित्तर सिंह को कहा कि भई, तुम दूसरे डब्बे के संडास में चले जाओ। भीतर तो कंडक्टर है! देखा कि ड्रेस वगैरह कंडक्टर की है!
वह जो दर्पण है, वह सिर्फ सरदारों को ही धोखा दे रहा है--ऐसा मत सोचना। दर्पण सबको धोखा दे रहा है। और जीवन में बहुत तरह के दर्पण हैं। हर आंख एक दर्पण है।
मां की आंख में बच्चा अपने को झांकता है, तो उसे पहले प्रतीति होती है
कि मैं कौन हूं। वह प्रतीति जीवन भर पीछा नहीं छोड़ती। वह दुई छाया की तरह पीछे लगी रहती है। क्योंकि मां ने जैसा अगाध, बेशर्त प्रेम दिया, कौन देगा! कुछ मांगा नहीं। बच्चे के पास देने को कुछ था भी नहीं। बच्चा कुछ भी नहीं देता है; मां सब देती है। इससे एक भ्रांति पैदा होती है, कि बच्चे को यूं लगता है कि लेने का मैं हकदार हूं!
दर्पण से धोखा खा गया। अब वह जिंदगी भर मांगेगा कि--दो। पत्नी से मांगेगा। मित्रों से मांगेगा। जहां जाएगा--कहीं छिपी भीतर आकांक्षा रहेगी कि प्रेम दो। "प्रेम मैं दूं"--यह तो बात ही नहीं उठेगी। क्योंकि पहला दर्पण जो मिला था, वह मां का दर्पण था। उस दर्पण से जो उसे छवि दिखाई पड़ी थी, वह यह थी कि मैं जैसा हूं, प्रेम का पात्र हूं। प्रेम मुझे मिलना चाहिए; यह मेरा हक है, अधिकार है। प्रेम को अर्जित नहीं करना है; बिना अर्जित मिलता है। और जीवन भर दुखी होगा, क्योंकि पत्नी मां नहीं होगी। मित्र मां नहीं होंगे। यह समाज मां नहीं होगा। फिर मां कहां मिलेगी? फिर मां कहीं भी नहीं मिलेगी। इस बड़ी दुनिया में हर जगह दुतकारा जाएगा। और कठिनाई यह है कि इस बड़ी दुनिया में जो भी लोग मिलेंगे, उन सबने मां के दर्पण में अपने चेहरे को देखा है। वे भी मांग रहे हैं कि दो!
तो मांग उठ रही है कि दो। प्रेम दो। पत्नी पति से मांग रही है। पति पत्नी से मांग रहा है। मित्र मित्र से मांग रहा है। देने वाला कोई भी नहीं! मांगने वालों की भीड़ है, जमघट है। मांगने वाले मांगने वालों से मांग रहे हैं! भिखारी भिखारी के सामने हाथ फैलाए खड़े हैं! दोनों के हाथों में भिक्षा-पात्र है।
वह जो दुई पैदा हो गई दर्पण से, अब अड़चन आएगी; अब छीना-झपटी शुरू होगी।
जब नहीं मिलेगा मांगे से, तो छीनो, झपटो, जबरदस्ती लो। इस जबरदस्ती का नाम ही राजनीति है। नहीं मिलता मांगे से, तो क्या करें! फिर येन केन प्रकारेण, जैसे भी मिल सकता हो--लो।

कैसी-कैसी विडंबनाएं पैदा हो जाती हैं! लोग प्रेम के लिए वेश्याओं के पास जा रहे हैं! सोचते हैं, शायद पैसा देने से मिल जाएगा! पैसा देने से प्रेम कैसे मिलेगा? प्रेम तो खरीदा नहीं जा सकता। सोचते हैं, बड़े पद पर होंगे, तो मिलेगा। लेकिन कितने ही बड़े पद पर हो जाओ, प्रेम नहीं मिलेगा। हां, खुशामदी इकट्ठे हो जाएंगे। लेकिन खुशामद प्रेम नहीं है।
लाख अपने को धोखा देने की कोशिश करो, दे न पाओगे। एक तस्वीर देखी थी पिता की आंखों में, वह धोखा दे गई। एक तस्वीर देखी थी भाई-बहनों की आंखों में, वह धोखा दे गई। फिर तस्वीरें ही तस्वीरें हैं--अपनी ही तस्वीरें-- लेकिन दर्पण अलग-अलग। तो अपनी ही कितनी तस्वीरें देखीं। हर दर्पण अलग तस्वीर दिखलाता है।
एक तस्वीर देखी पत्नी की आंखों में, पति की आंखों में। एक तस्वीर देखी अपने बेटे की आंखों में, बेटी की आंखों में। एक तस्वीर देखी मित्र की आंखों में, एक तस्वीर देखी शत्रु की आंखों में। एक तस्वीर देखी उसकी आंखों में--जो न मित्र था, न शत्रु था; जिसको परवाह ही न थी तुम्हारी। लेकिन तस्वीर तो हर दर्पण में दिखाई पड़ी। ऐसे बहुत सी अपनी ही तस्वीरें इकट्ठी हो गईं। हमने अलबम सजा लिया है! दुई ही नहीं हुई--अनेकता हो गई! एक दर्पण में देखते, तो दुई होती।
रज्जब ठीक कहते हैंः ज्यूं मुख एक देखि दुई दर्पन!
देखा नहीं दर्पण में कि दो हुआ नहीं। इसलिए द्वैत हो गया है। है तो अद्वैत। स्वभाव तो अद्वैत है। एक ही है। लेकिन इतने दर्पण हैं, दर्पणों पर दर्पण हैं! जगह-जगह दर्पण हैं! और तुमने इतनी तस्वीरें अपनी इकट्ठी कर ली हैं कि अपनी ही तस्वीरों के जंगल में खो गए हो। अब आज तय करना मुश्किल भी हो गया कि इसमें कौन चेहरा मेरा है! जो मां की आंख में देखा था--वह चेहरा? कि जो पत्नी की आंखों में देखा--वह चेहरा? कि जो वेश्या की आंखों में देखा-- वह चेहरा? कौन सा चेहरा मेरा है? जो मित्र की आंखों में देखा--वह? या जो शत्रु की आंखों में देखा--वह?
जब धन था पास, तब जो आंखें आस-पास इकट्ठी हो गई थीं, वह चेहरा सच था; कि
जब दीन हो गए, दरिद्र हो गए--अब जो चेहरा दिखाई पड़ रहा है? क्योंकि अब दूसरी तरह के लोग हैं।
एक बहुत बड़ा धनी बर्बाद हो गया। जुए में सब हार गया। मित्रों की जमात लगी रहती थी, मित्र छंटने लगे। उसकी पत्नी ने पूछा... । पत्नी को कुछ पता नहीं। पत्नी को उसने कुछ बताया नहीं--कि हाथ से सब जा चुका है; अब सिर्फ लकीर रह गई है--सांप जा चुका है। तो पत्नी ने पूछा कि क्या बात है! बैठक तुम्हारी अब खाली-खाली दिखती है? मित्र नहीं दिखाई पड़ते। आधे ही मित्र रह गए!
पति ने कहाः मैं हैरान हूं कि आधे भी क्यों रह गए हैं! शायद इनको अभी पता नहीं। जिनको पता चल गया, वे तो सरक गए। पत्नी ने कहाः क्या कहते हो! किस बात का पता?
पति ने कहाः अब तुझसे क्या छिपाना। सब हार चुका हूं। जो धन था--हाथ से निकल चुका है। सब जुए में हार चुका। जो मेरे पास इकट्ठे थे लोग, वे धन के कारण थे, यह तो आज पता चला! जिन-जिन को पता चलता जा रहा है कि अब मेरे पास कुछ भी नहीं है, वे खिसकते जा रहे हैं। ठीक हैः गुड़ था, तो मक्खियां थीं! अब गुड़ ही नहीं, तो मक्खियां क्यों? फूल खिले थे, तो भंवरे आ गए थे। अब फूल ही गिर गया, मुर्झा गया, तो भंवरों का क्या!
पत्नी ने यह सुना और बोली कि मेरे पिता ठीक ही कहते थे कि इस आदमी से शादी मत करो। यह आज नहीं कल गड्ढे में गिराएगा। मैं मायके चली!
पति ने कहाः क्या कहती हो! तुम भी छोड़ चली! पत्नी ने कहाः अब यहां रह कर क्या अपने जीवन को बरबाद करना है!
यहां लोग सब कारणों से जुड़े हैं। अकारण तो प्रीति कहां मिलेगी? और जब
तक अकारण प्रीति न मिले, तब तक प्राण भरेंगे नहीं।
यहां तो सब कारण हैं। लोग शर्तबंदी किए हुए हैं!
एक मित्र अपने बहुत प्रगाढ़ हितैषी से कह रहा था कि दो स्त्रियों के बीच मुझे चुनाव करना है--किससे शादी करूं? एक सुंदर है--अति सुंदर है,

लेकिन दरिद्र है, दीन है। और एक अति कुरूप है, पर बहुत धनी है। और अकेली बेटी है बाप की। अगर उससे विवाह करूं, तो सारा धन मेरा है। कोई और मालिक नहीं उस धन का। बाप बूढ़ा है। मां तो मर चुकी, बाप भी आज गया, कल गया! लेकिन स्त्री कुरूप है। बहुत कुरूप है! तो क्या करूं, क्या न करूं?
उसके मित्र ने कहा कि इसमें सोचने की बात है! अरे, शर्म खाओ। प्रेम और कहीं धन की बात सोचता है। जो सुंदर है, उससे विवाह करो। प्रेम सौंदर्य की भाषा जानता है, प्रेम धन की भाषा नहीं। जो सुंदर है, उससे विवाह करो। मित्र ने कहाः तुमने ठीक सलाह दी। और जब मित्र जाने लगा, तो उसके हितैषी ने पूछा कि भई, और उस कुरूप लड़की का पता मुझे देते जाओ!
इस दुनिया में सारे नाते-रिश्ते बस, ऐसे हैं! फिर ये सारी तस्वीरें इकट्ठी हो जाती हैं। फिर यह तय करना ही मुश्किल हो जाता है कि मैं कौन हूं! और अपने को तो तुमने कभी जाना नहीं; सदा दर्पण में जाना!
तुमने कभी किसी म्यूजियम में अनेक तरह के दर्पण देखे! किसी में तुम लंबे दिखाई पड़ते हो। किसी में तुम ठिगने दिखाई पड़ते हो। किसी में तुम मोटे दिखाई पड़ते हो। किसी में तुम दुबले दिखाई पड़ते हो। तुम एक हो, लेकिन दर्पण किस ढंग से बना है, उस ढंग से तुम्हारी तस्वीर बदल जाती है। और इतने दर्पण हैं कि अनेकता पैदा हो गई!
रज्जब तो कहते, हैं--दुई! दुई पर ही कहां बात टिकी? बात बहुत हो गई। दो
से चार होते हैं, चार से सोलह होते हैं। बात बढ़ती ही चली जाती है। दुई हुई कि चूके। फिर फिसलन पर हो। फिर फिसलते ही जाओगे, जब तक फिर पुनः एक न हो जाओ। एक हो जाओ--तो "ज्यूं था त्यूं ठहराया।"
दर्पण से मुक्त होना संसार से मुक्त होना है। दर्पणों से मुक्त होना संसार से मुक्त होना है।
जिस व्यक्ति को दूसरों की आंखें क्या कहती हैं, इसकी जरा भी परवाह नहीं, उसी को मैं संन्यासी कहता हूं।
मुझसे लोग पूछते हैं, आपको इतनी गालियां पड़ती हैं; इतना आपके खिलाफ लिखा जाता है! करीब-करीब सारी दुनिया में। आपको कुछ परेशानी नहीं होती! मुझे परेशानी होने का कोई कारण नहीं, क्योंकि कोई दर्पण क्या कह रहा है, यह दर्पण जाने। मुझे क्या पड़ी।
यह दर्पण में जो छवि बन रही है, यह दर्पण के संबंध में कुछ कहती है; मेरे संबंध में कुछ भी नहीं कहती। यह वक्तव्य दर्पण के संबंध में है--मेरे संबंध में नहीं।
इसलिए हमारे पास कहावत है कि कुत्ते भौंकते रहते हैं, हाथी निकल जाता है। हाथी प्रतीक है--मस्त फकीरों का। हाथी की चाल मस्ती की चाल है; मतवाली चाल है। कुत्ते भौंकते रहते हैं। भौंक-भांक कर चुप हो जाते हैं। आखिर कब तक भौंकते रहेंगे? कुत्ते दर्पणों की तरह हैं। और दर्पण पीछा करते हैं। दर्पण नाराज हो जाता है, अगर तुम उसकी फिकर न लो। अगर तुम उसकी न सुनो,
तो उसे क्रोध आता है। दर्पण भौंकेगा। दर्पण हजार तरह से तुम्हारी निंदा करेगा। दर्पण चाहेगा कि तुम च्युत हो जाओ; तुम अपने केंद्र से सरक आओ। तुम दर्पण पर भरोसा कर लो। लेकिन दर्पण पर जिसने भरोसा किया, वह चूका। वही संसारी है--जो दर्पण पर भरोसा करता है।
जो दर्पण पर भरोसा नहीं करता, जो कहता हैः मैं तो अपने को आंख बंद करके जानता हूं; अब किस दर्पण में देखना है! मैंने अपना असली चेहरा देख लिया, अब कहां मुझे, किससे पूछना है! और कौन मेरा चेहरा बता सकेगा! जब मुझे पता नहीं, तो कौन मेरा चेहरा बता सकेगा!
कुछ बातें हैं, जो आंख खोल कर देखी जाती हैं। बाहर का संसार आंख खोल कर देखा जाता है। भीतर का संसार आंख बंद करके देखा जाता है। आंख बंद करके जो दिखाई पड़ता है, वही तुम हो।
दर्पण में भटके तो भटके। ज्यूं मुख एक देखि हुई दर्पन! देखा नहीं दर्पण में, कि दो हुआ नहीं!
छोटे बच्चों को जब पहली दफा दर्पण दिखाओ, तो तुम देखना, उनकी क्या प्रतिक्रिया होती है! छोटा बच्चा, जिसने अभी दर्पण नहीं देखा, उसके सामने दर्पण रख दो। चौंकेगा। किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाएगा क्षण भर को कि अब क्या

करना--यह दूसरा बच्चा सामने है! या तो डर जाएगा या अपनी मां की तरफ भागेगा। या अगर हिम्मतवर हुआ, तो टटोल कर देखेगा कि कौन है! कहां है? दर्पण पर टटोलेगा, तो पकड़ में तो कुछ आएगा नहीं; हाथ फिसल-फिसल जाएगा!
दर्पण में कुछ है तो नहीं; सिर्फ भ्रांति है! तो छोटा बच्चा अगर बुद्धिमान होगा थोड़ा, तो दर्पण के पीछे जाकर देखेगा। सरक कर, घुटने के बल पीछे जाएगा, कि छिपा है कोई पीछे!
यह प्रत्येक छोटे बच्चे की प्रतिक्रिया होगी, जो पहली बार दर्पण के सामने आएगा। समझेगा कि कोई दूसरा है। जरूर छिपा है। पीछे छिपा होगा। यहां से पकड़ में नहीं आता, तो पीछे से जाकर पकडूं! और जब भी लौट कर आएगा, तो फिर पाएगा उसको कि छिपा है! थोड़ी देर में परेशान हो जाएगा; पसीना-पसीना हो जाएगा, कि करना क्या! इस दूसरे के साथ अब करना क्या? रोने लगेगा, चिल्लाने लगेगा; मां को पुकार देने लगेगा।
छोटे बच्चे जल्दी से टटोल कर देखना चाहते हैं, पहचानना चाहते हैं--कौन है? कैसा है?
छोटे बच्चे भी पहचानते हैं कि कौन प्रेमपूर्ण है, कौन अप्रेमपूर्ण है। छोटा बच्चा जिसको प्रेमपूर्ण पाता है, उसके पास सरक आता है। जिसको अप्रीतिकर पाता है, उससे दूर हट जाता है। छोटे बच्चे को क्रोध से देखो, रोने लगता है। प्रेम से देखो, पास आने को ललचाने लगता है।
और इन दर्पणों के साथ हम भी यही कर रहे हैं। लेकिन दर्पण हमारे सूक्ष्म हैं। इसलिए हम बहुत चिंतित होते हैं। जिस दर्पण ने कल हमारी सुंदर छवि दिखाई थी, अगर वह आज असुंदर छवि दिखाए, तो हमें लगता है--धोखा दिया गया, बेईमानी की गई! हम क्रोधित होते हैं। हम कहते हैं, कल की बात को बदलो मत; इतने जल्दी मत बदलो!
हम नातों को थिर करना चाहते हैं। हम चाहते हैं, हमारे नाते-रिश्ते शाश्वत हो जाएं। हम चाहते हैं, समय उनमें कोई व्यवधान न डाले। यह हमारे सारे संसार का फैलाव है।
इस छोटे से वचन में अदभुत बात कह दी रज्जब नेः ज्यूं मुख एक देखि दुई दर्पन, गहला तेता गाया। और जिन्होंने जितना जाना, जिन्होंने जितना पहचाना, उतना कहने की कोशिश की है, गाने की कोशिश की है। लेकिन जो सत्य है, वह किसी गीत में समाता नहीं।
गहला तेता गाया! जितना बन पड़ा है, उतना जानने वालों ने कहा है। लेकिन
उस एक को कहने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि शब्द भी दर्पण है। शब्द में लाते ही वह एक भी दो हो जाता है।
जब व्यक्ति अपने भीतर परिपूर्ण शून्य में, ध्यान में डूबता है, तो अनुभव होता है, साक्षात्कार होता है कि मैं कौन हूं। अभी कोई दर्पण नहीं, सिर्फ प्रतीति होती है, शुद्ध अनुभूति होती है कि मैं कौन हूं। ऐसा भी नहीं कि कोई उत्तर मिलता है, कि मैं कौन हूं। बस, एक भाव-दशा। यह परम शिखर है।
जैसे ही तुमने अपने भीतर भी कहा कि अरे, यह रही समाधि! दर्पण शुरू हुए।
एक से दो हो गई बात। बोलने वाला भीतर आ गया। मन लौट आया। मन ने कहा, सुनो मेरी! यह है समाधि। यही तो है निर्विकल्प समाधि। यही तो है निर्बीज समाधि। यही तो पतंजलि ने गाई। यही तो कबीर ने गुनगुनाई। यही तो नानक बोले। यही तो महावीर के वचनों में है। यही तो बुद्ध का संदेश है। यही तो कुरान; यही गीता; यही बाइबिल! आ गए तुम। पहुंच गए तुम। अब भ्रांति शुरू हुई। दर्पण आ गया। मन ने एक दर्पण सामने कर दिया।
समाधि एक बात थी; मन दर्पण दिखाने लगा। अब समाधि दो हो गई। शब्द बनी; विकृति शुरू हो गई।
फिर तुम किसी से कहोगे, तब और विकृति हो जाएगी। क्योंकि जो तुम्हारे भीतर छिपा था, उसको तब तुम किसी से कहने जाओगे, तो बात और बिगड़ जाएगी। क्योंकि जिससे तुम कहोगे, उसका कोई अनुभव नहीं है समाधि का। वह "समाधि" शब्द को तो सुन लेगा... और चूंकि बहुत बार इस शब्द को सुना है, इसलिए ऐसा भी मान लेगा कि अर्थ मेरी पकड़ में आता है। मगर अनुभव के बिना अर्थ कहां! उसके

लिए शब्द थोथा है, अर्थहीन है। वह सुन लेगा। शायद तोते की तरह दोहराने भी लगेगा।
इसी तरह के तोते तो तुम्हारे मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में बैठे हैं! इसी तरह के तोते तो तुम पूज रहे हो। यही तोते तो तुम्हारे पंडित हैं। ये दोहराए चले जा रहे हैं! इनका अपना कोई अनुभव नहीं है। जिनका अपना अनुभव है, वे भी जब कहने जाते हैं, तो बात बिगड़ जाती है; बन
ही नहीं पाती। हजार बार कही गई, और हजार बार बिगड़ गई है।
रवींद्रनाथ मरणशय्या पर थे। उनके एक मित्र ने उनसे कहा कि आप धन्यभागी हैं। आपको तो दुखी नहीं मरना चाहिए! क्योंकि रवींद्रनाथ की आंखों से आंसू झर रहे थे।
मित्र ने कहाः मैं तो सोचता था कि तुम तो कृतकृत्य हो गए। तुमने छह हजार गीत गाए! दुनिया के किसी कवि ने इतने गीत नहीं गाए। कालिदास और भवभूति, और शेक्सपियर और शैली--सब पीछे पड़ गए।
शैली ने दो हजार गीत गाए हैं। वह पश्चिम का सबसे बड़ा कवि है--संख्या की दृष्टि से--महाकवि है। रवींद्रनाथ ने उसी कोटि के छह हजार गीत गाए हैं, जो सब संगीत में बंध सकते हैं; जो छंद-मात्रा में आबद्ध हो सकते हैं; जो गीत से, शब्द से रूपांतरित होकर संगीत बन सकते हैं।
इतना विराट दान तुमने जगत को दिया। तुम धन्यभागी हो, मित्र ने कहा, तुम किसलिए रो रहे हो!
रवींद्रनाथ ने कहाः ठहरो, तुम मेरी बात समझे नहीं। मैं इसलिए रो रहा हूंः मैं प्रार्थना कर रहा हूं कि हे प्रभु, अभी तो साज बिठा पाया था। अभी गीत गाया कहां! और यह विदा का क्षण आ गया! यह कोई बात हुई! यह कैसा अन्याय? जिंदगी भर तो मैं साज बिठाता रहा... ।
साज बिठाना जानते हो न! जब तबलची लेकर अपनी हथौड़ी और तबले को ठोक-ठोक
कर साज बिठा रहा होता है। जब सितारवादक तारों को कस-कस कर उस जगह ला रहा होता है, उस स्वर में, जो न तो बहुत तना हो, न बहुत ढीला हो। क्योंकि तार बहुत ढीले हों, तो संगीत पैदा नहीं होता। और तार बहुत खिंचे हों, तो तार टूट ही जाएंगे; संगीत क्या पैदा होगा--विसंगीत पैदा होगा।
तारों को लाना पड़ता है उस मध्य में--बुद्ध ने कहा हैः मज्झिम निकाय--उस ठीक मध्य बिंदु पर, जहां न तो तार बहुत कसे होते हैं, न बहुत ढीले होते हैं। न कसे, न ढीले--जहां कसना और ढीला होना दोनों का अतिक्रमण हो जाता है। तार जब परिपूर्ण स्वस्थ होते हैं--न यह अति, न वह अति, जब पेंडुलम घड़ी का बीच में रुक गया होता है, तो घड़ी रुक जाती है। ऐसे ही जब तार बिल्कुल मध्य में हो जाते हैं, तब संभावना है संगीत के जन्म की।
रवींद्रनाथ ने कहा कि मैं तो अभी सितार के तार बिठा पाया था। तबले को ठोक-ठोक कर रास्ते पर लाया था बामुश्किल! ये छह हजार गीत उस गीत को गाने की कोशिश में गाए हैं--जो अब तक मैं गा नहीं पाया। ये छह हजार असफलताएं हैं। ये छह हजार असफल प्रयास हैं। एक गीत गाना चाहता हूं। बस, एक गीत। मगर जब भी गाता हूं, कुछ का कुछ हो जाता है!
गहला तेता गाया! बहुत गाया गया है। गीत एक है। सत्य एक है। लेकिन कोई
अब तक उसे कह नहीं पाया। कोई कभी कह भी न पाएगा। रवींद्रनाथ नाहक रो रहे थे। रवींद्रनाथ को बुद्धत्व का कोई अनुभव नहीं था, नहीं तो नहीं रोते। जानते इस सत्य को कि उस गीत को गाया नहीं जा सकता। हां, जितना बने, उतना गा दो। मगर यह आशा मत करो कि कभी पूर्ण रूप से सत्य को शब्द में बांधा जा सकेगा। न उपनिषद बांध पाते हैं, न ब्रह्मसूत्र, न कुरान; कोई नहीं बांध पाता। हां, जिससे जितना बन सका; जिसमें जितनी सामर्थ्य थी--उसने गुनगुनाने की कोशिश की है।
अनुकंपा है कि बुद्ध बोले, कि मोहम्मद गाए। अनुकंपा है। लेकिन सत्य
तो अनुभव है। जैसे ही शब्द में आया कि दो हो गया--दुई हो गई! और जैसे ही किसी को कहा--त्रैत हो गया! और जैसे ही किसी ने सुन कर उसकी व्याख्या की-- बात और बिगड़ गई!
गीता की हजार व्याख्याएं उपलब्ध हैं! बात बिगड़ती ही चली जाती है। टीकाओं पर टीकाएं होती रहती हैं! बात बिगड़ती ही चली जाती है।

इसीलिए जब कोई बुद्धपुरुष जीवित होता है, तब जो उसके निकट होते हैं, बस, वे ही थोड़ा-बहुत स्वाद ले लें, तो ले लें। बाद में तो बात बिगड़ती ही जाएगी। जितनी देर होती जाएगी, उतनी बिगड़ती जाएगी।
इसलिए धर्म जितना पुराना होता है, उतना ही सड़ जाता है। धर्म तो नया हो, अभी-अभी अनुभव के सागर में जिसने डुबकी मारी है, जो अभी-अभी मोती लाया हो-- शायद कुछ थोड़ा गुनगुना पाए; शायद थोड़ा कुछ इशारा कर पाए। लेकिन जितना पुराना हो जाता है, उतना ही सड़ जाता है।
हिंदू धर्म का यही दुर्भाग्य है कि यह सबसे पुराना धर्म है पृथ्वी पर। इसलिए इसकी सड़ांध गहरी है। यह भूल ही गया नया होना। इसे अपनी काया बदलनी है बार-बार। यह कायाकल्प की प्रक्रिया भूल गया। और जब भी इसकी कायाकल्प करने की किसी ने चेष्टा की, तो इसने इंकार कर दिया।
हम मुर्दे के पूजक हो गए। हमने बुद्ध को इनकार कर दिया। महावीर को इनकार कर दिया। हमने कबीर को इनकार कर दिया; हमने नानक को इनकार कर दिया। काश! हम बुद्ध को इनकार न करते, तो बुद्ध उपनिषदों को फिर जन्म दे जाते। काश! हम कबीर को इनकार न करते, तो कबीर ने फिर बुद्ध को पुनरुज्जीवित कर दिया होता। काश! हम नानक को इनकार न करते, तो बात फिर निखर-निखर आती।
धर्म का रोज पुनर्जन्म होना चाहिए। जैसे पुराने पत्ते गिरते जाते हैं
और नये पत्ते आते चले जाते हैं। जैसे नदी की धार। पुराना जल बहता जाता है और नया जल उसकी जगह लेता जाता है। धार रुकी--कि सड़ी। धार रुकी--कि सरिता मरी। फिर डबरा हुआ। बहने दो। बहते रहने दो।
यह गंगा को पूजने वाले भी राज न समझ सके! गंगा को पूजा, लेकिन असली गंगा को भूल गए। असली गंगा को तो इन्होंने कठौती में बंद कर लिया! ये कहते हैंः मन चंगा, तो कठौती में गंगा! कठौती में कहीं गंगा होगी? पागल हो गए? मन कितना ही चंगा हो। मन क्या खाक चंगा होगा? जब कठौती में गंगा होगी, तो मन क्या खाक चंगा होगा?
गंगा तो बहे। लेकिन तुमने गंगा की कथा पढ़ी न... । भगीरथ ने बड़े प्रयास से... इतना प्रयास किया कि भगीरथ का नाम ही महाप्रयास का पर्यायवाची हो गया। अब जब कभी कोई बड़ा प्रयास करता है, तो उसको हम कहते हैं--भगीरथ प्रयास!
भगीरथ ने इतना प्रयास किया कि आकाश से गंगा को उतार लाए। लेकिन गंगा आधी ही आ पाई। आधी आकाश में ही रह गई। यह सूचक है।
जितना जाना है, उतना शब्द में न ला सकोगे। जितना भीतर है, उतना बाहर न
ला सकोगे। आधा ही आ जाए, तो बहुत।
भगीरथ सौभाग्यशाली रहे होंगे कि आधा भी आ गया। आधा तो स्वर्ग में ही
रह गया। आधा तो अनुभव के लोक में ही रह गया। आधा तो परलोक में ही रह गया! आधा तो आकाश में ही रह गया। आधा पृथ्वी पर उतरा।
लेकिन गंगोत्री में गंगा की जो पवित्रता है, जो शुद्धता है, जो निश्चलता है, वह फिर वाराणसी की गंगा में नहीं है। वाराणसी की गंगा तो गंदी है। गंदा नाला है। फिर तो कितना कूड़ा-करकट मिल गया उसमें! फिर तो कितनी नालियां और नाले गिरते गए, गिरते गए, गिरते गए!
वैज्ञानिक कहते हैंः आज गंगा से ज्यादा गंदी कोई नदी नहीं है। उसमें तुम डुबकियां मार रहे हो! लाशें गंगा में डाली जाती हैं। मुर्दे गंगा में बहाए जाते हैं। और फिर इतने पापी अपने पाप गंगा में धोते हैं!
जरा सोचो तो, कितने पापी कितनी सदियों से गंगा में पाप धोते रहे! अगर
इन सबके पाप गंगा में धुल गए हैं, तो भूल कर गंगा को छूना भी मत, क्योंकि पाप बुरी बला है। अंगुली में भी लग जाए, तो धीरे-धीरे भीतर प्रवेश कर जाए! गंगा तो बिल्कुल अछूत समझना। यह तो शूद्र हो गई! अब इसमें डुबकी मार रहे हो। आशा यही है कि तुम और थोड़े पाप लेकर घर आ जाओगे! अब यह गंगा तुम्हारे पाप क्या छुड़ाएगी? तुम कीचड़ से कीचड़ को धो रहे हो। मगर यही दशा धर्म की होती है।
अनुभव के लोक में तो धर्म पूरा होता है, एक होता है, अखंड होता है। अभिव्यक्ति में आते ही, बाहर उतरते ही आधा हो जाता है। फिर जब तक तुम तक

पहुंचे, फिर तुम समझो और आधे में आधा हो गया। फिर तुम किसी और से कहो--और आधे में आधा हो गया!
और अब तो बात इतनी पुरानी हो गई कि अब तो पता ही नहीं कि किसने किससे कहा! कितने लोगों ने किसको दिया? कैसे बात चलती रही! कानों में कान--एक-दूसरे को लोक फूंकते रहे; एक-दूसरे के कान में डालते रहे! और हम आग्रह करते हैं इस बात का कि हमारा धर्म बहुत पुराना! जितना पुराना, उतना श्रेष्ठ। इस गलती में मत पड़ना। जितना पुराना, उतना सड़ा।
धर्म को भी पुनरुज्जीवित होना पड़ता है। हर बार भगीरथ को गंगा को वापस लाना होता है, तो गंगोत्री पैदा होती है। गहला तेता गाया!
मगर शब्द में अटकना मत--शून्य में उतरना। शब्द में भटकना मत। गाने वालों ने गाया है। उनके इशारे पकड़ लेना; लेकिन उनके शब्दों की पूजा मत करना। लेकिन शास्त्रों की पूजा चल रही है!
जन रज्जब ऐसी बिधि जानें, ...
रज्जब कहते हैंः मैं तो सीधा-सादा, साधारणजन हूं। मैं कोई पंडित नहीं। मैं कोई ज्ञानी नहीं। मुझे कुछ शास्त्रों का पता नहीं है। मुझे तो सिर्फ एक विधि का पता है; एक तरकीब जानता हूं; एक कीमिया मेरे हाथ में है। जन रज्जब ऐसी बिधि जानें, ज्यूं था त्यूं ठहराया।
बस, मेरे पास तो एक छोटा सा सूत्र है कि जैसा था--मेरा स्वभाव, जैसा था जन्म के पहले--वैसा ही मैंने उसे ठहरा दिया है। और उसके ठहरने में ही सब पा लिया है।
सब शास्त्र आ गए, सब सिद्धांत आ गए। सब बुद्ध आ गए; सब कृष्ण, सब क्राइस्ट--सब आ गए। क्योंकि कृष्ण ने भी कैसे पाया--ज्यूं था त्यूं ठहराया! और बुद्ध ने कैसे पाया--ज्यूं था त्यूं ठहराया! और जीसस ने कैसे पाया--ज्यूं था त्यूं ठहराया! तुम भी ठहरा लो--ज्यूं था त्यूं ठहरा लो। क्या है वह विधि? क्या है वह राजों का राज? क्या है वह रहस्य? छोटा सा रहस्य है। ध्यान कहो उसे, तो चलेगा। जागरण कहो उसे, तो चलेगा। बोध कहो उसे, तो चलेगा। साक्षीभाव--बस, मन में जो चल रहा है--विचारों का सिलसिला, तांता, वह जो भीड़ मन में चल रही है--वासनाओं की, इच्छाओं की, ऐषणाओं की; स्मृतियों का प्रवाह बंधा हुआ है; कल्पनाओं का जाल बुना जा रहा है!
अतीत और भविष्य के बीच तुम दबे जा रहे हो, पिसे जा रहे हो। कबीर कहते हैंः दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोए! ये हैं दो पाट--अतीत और भविष्य-- चक्की के दो पाट--इनके बीच पिसे जा रहे हो! "साबित बचा न कोय।"
लेकिन जब कबीर ने यह पद गाया--"दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय"--तो कबीर के बेटे कमाल ने इसके उत्तर में एक सूत्र लिखा कि चक्की के बीच में कील लगी होती है, जिस कील पर चक्की का पाट घूमता है।
कमाल था कबीर के बेटे का नाम। कमाल ने कहा कि सुनिए, कुछ बच जाते हैं-- कुछ! कबीर ने कहाः कौन? तो कमाल ने कहाः वे जो वह बीच में कील ठहरी हुई है, जो चलती नहीं है, जो ठहरी हुई है, जो सदा से ठहरी हुई है--उसका सहारा ले लेते हैं; वे बच जाते हैं। दो पाटों के बीच तो कोई नहीं बचता; उनमें पिसता ही है। लेकिन वह जो छोटी सी कील खड़ी हुई है थिर, उसका जो सहारा ले लेता है... । इसलिए कुछ गेहूं के दाने बच जाते हैं।
तुम चक्की चलाओ तो पता चलेगा। कुछ गेहूं के दाने बड़े होशियार! वे दोनों पाटों के बीच से सरक कर कील के पास पहुंच जाते हैं। वे कील का सहारा ले लेते हैं। वहां नहीं पीस सकती चक्की।
तुम्हारे भीतर भी ऐसी कील है।
कबीर ने कहा कि मैं यह देखता था कि कोई इस सूत्र को पूरा कर सकता है या नहीं। कमाल, मैं खुश हूं!
उसी दिन कबीर ने कमाल को यह बात कही थी कि बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल!
लोग समझते हैं, यह कमाल की निंदा की। नहीं। यह कमाल की प्रशंसा में कहा।
कबीर ने कहाः मैं तो कबीर ही रहा। कम से कम मैंने कुछ तो पैदा किया; एक बेटा पैदा किया, एक बेटी पैदा की।

कबीर का बेटा था कमाल, और बेटी थी कमाली। कबीर ने नाम भी उनको कमाल, कमाली इसीलिए दिया था कि कबीर ने साक्षीभाव में ही उनको जन्म दिया था-- इसलिए कमाल था।
यही तो कमाल है कि संन्यासी रहता संसार में है, और संसार उसे छुए न। कबीर पत्नी के साथ रहे; बाजार में रहे। जुलाहे थे, कपड़ा बुनते रहे, बेचते रहे। और आखिर में यह भी कह सके... । हिम्मत के आदमी थे, गजब के आदमी थे! यह भी कह सके परमात्मा को कि "ज्यों की त्यों रख दीन्हीं चदरिया"--यह ले अपनी चादर सम्हाल। यह ज्यों की त्यों रख दे रहा हूं। जैसी तूने दी थी, वैसी ही रख दे रहा हूं। दाग भी नहीं लगा। यूं संसार में रह आया हूं। काजल की कोठरी से गुजर आया हूं। और यह तेरी चादर देख! यह ले, सम्हाल, अपनी चादर!
ज्यों की त्यों रख दीन्हीं चदरिया!
साक्षीभाव में ही जीए! संभोग भी साक्षीभाव में ही! इसलिए अपने बेटे को नाम दिया--कमाल! और साक्षीभाव में बेटा पैदा हो, तो कमाल तो है। और बेटा फिर कमाल का ही होगा। कमाल का ही था।
कबीर ने कम से कम जन्म भी दिया कुछ, सिलसिला भी छोड़ा। लेकिन कमाल ने सिलसिला भी नहीं छोड़ा; किसी को जन्म ही नहीं दिया। बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल! ऐसा सपूत पैदा हुआ कि बात ही खतम कर दी। उसने सिलसिला ही तोड़ दिया। उसने कहाः अब क्या चलाते रखना सिलसिले को! इस संसार को क्यों बढ़ाए चले जाना!
यह उस दिन कबीर ने कहा था, जिस दिन कमाल ने यह बात जोड़ दी थी कि इतना जोड़ दें और कि जिसने बीच की कील के सहारे को पकड़ लिया, वह बच गया।
दो पाट हैं--अतीत और भविष्य के, और बीच में कील है--वर्तमान। साक्षीभाव
का अर्थ होता है--वर्तमान में ठहर जाना। न अतीत रह जाए, न भविष्य। फिर क्या बचा?
तुम्हारे पास अतीत और भविष्य के सिवाय और क्या है? कुछ भी नहीं। अतीत गया--भविष्य गया--कि शून्य बचा। उस शून्य में सिर्फ प्रकाश है; सिर्फ बोध है; सिर्फ होश है; कोई विषय नहीं है। दर्पण है, लेकिन दर्पण में कोई छवि नहीं बनती अब। कोई पराया नहीं, कोई दूसरा नहीं, कोई दूजा नहीं।
साक्षी है, लेकिन कोई साक्षी के सामने नहीं है। द्रष्टा है, लेकिन दृश्य कोई भी नहीं है। ज्ञानी है, लेकिन ज्ञान के लिए कुछ भी नहीं बचा। ज्यूं था त्यूं ठहराया! ऐसी साक्षी की अवस्था में तुम पुनः स्वभाव में थिर हो जाते हो।
बुद्ध इसको कहते हैं--"तथाता"। बुद्ध का एक नाम है "तथागत"। जो ऐसा ठहर गया, जो तथाता में आ गया--वह तथागत।
जो स्वभाव में आ गया, जो स्वरूप में डूब गया, उसने फिर सागर पा लिया।
फिर मछली नहीं तड़पती। फिर मस्ती है। फिर उत्सव है। फिर जीवन एक समारोह है।
फिर आनंद ही आनंद की वर्षा है। फिर अमृत के मेघ गरजते हैं।
ज्यूं मुख एक देखि दुई दर्पन, गहला तेता गाया।
जन रज्जब ऐसी बिधि जानें, ज्यूं था त्यूं ठहराया।।
इसलिए मैं कहता हूं, इस छोटे से सूत्र में सब आ गया। कुछ शेष नहीं रह जाता। इस एक बात को तुम पूरी कर लो, तो तुम्हारे जीवन में धर्म का अवतरण हुआ; तुम्हारी ज्योति जली--ज्योति जो जन्मों से बुझी पड़ी है। तुम्हारे भीतर फिर जीवन का प्रवाह बहा; प्रवाह, जो कितने जन्मों से अवरुद्ध है। कठौती की गंगा हो गए हो तुम! इस सूत्र को पूरा करते ही फिर गंगोत्री। फिर वही पावन गंगा। फिर तुम जहां से बहोगे, वहां तीर्थ बनेंगे। तुम जहां उठोगे-बैठोगे, वहां तीर्थ बनेंगे। तुम जहां उठोगे-बैठोगे वहां काबा और काशी!

दूसरा प्रश्नः ओशो,
इश्के बुतां करूं कि मैं यादे खुदा करूं?
इस छोटी सी उम्र में, मैं क्या-कया खुदा करूं?

अब्दुल करीम!

"इश्के बुतां करूं कि मैं यादे खुदा करूं!" तुमने दो कर लिए! वही बात
कर ली--ज्यूं मुख एक देखि दुई दर्पन। "इश्के बुतां" और "यादे खुदा" क्या दो बातें हैं? वह जो मंदिर में मूर्ति है और मस्जिद में जो शून्य है, वह एक के ही दो दर्पण हैं। मंदिर एक दर्पण है; मस्जिद एक दर्पण है। सत्य तो एक है। किसी ने उसे निर्गुण की तरह देखा; किसी ने उसे सगुण की तरह देखा। सब गुण भी उसके हैं। और जिसके सब गुण हैं, वह निर्गुण होगा ही।
इस्लाम उसे निर्गुण की तरह पूजता है; दूसरे मजहब, दूसरे धर्म उसे सगुण
की तरह पूजते हैं। मगर सब गुण उसके हैं।
यह जो अभिव्यक्त जगत दिखाई पड़ रहा है; ये जो रंग इंद्रधनुष के--सब रंग उसके। ये सुबहें उसकी, ये सांझें उसकी, ये चांद-तारे उसके। ये अलग-अलग रूपों में बैठे हुए लोग उसके। स्त्री में वह स्त्री है, पुरुष में पुरुष है। वृक्षों में वृक्ष। पत्थरों में पत्थर।
हम दो में तोड़ लेते हैं, बस दुविधा में पड़ जाते हैं। फिर सवालों पर सवाल हैं। फिर सवालों का कोई अंत नहीं।
"इश्के बुतां करूं कि मैं यादे खुदा करूं?"
अब मुश्किल खड़ी हुई कि मैं मस्जिद जाऊं, कि मंदिर जाऊं! और फिर कितने मंदिर हैं, कितने मस्जिद हैं! फिर मस्जिदों में भी झगड़े हैं; फिर मंदिरों में भी झगड़े हैं। फिर हिंदू के मंदिर जाऊं, कि जैन के मंदिर जाऊं, कि बुद्ध के मंदिर जाऊं? फिर जैनों के मंदिरों में भी झगड़े हैं--कि श्वेतांबर का मंदिर, कि दिगंबर का मंदिर? फिर दिगंबरों में भी झगड़े हैं--कि बीसपंथी का मंदिर, कि तेरापंथी का मंदिर!
झगड़ों पर झगड़े हैं! फिर बात बिखरने लगी। दो हुई, कि फिर खिसलने लगे तुम। फिर बिगड़ती ही चली जाएगी बात। फिर इसका कोई अंत नहीं है बिगड़ाव का। फिर यह जो एक था--अनंत होकर रहता है; अनेक होकर बंट जाता है!
मस्जिदों में कितने झगड़े हैं! मस्जिद और मंदिर में ही झगड़े होते तो भी समझ लेते। मस्जिदों में झगड़े हैं। शिया और सुन्नियों में झगड़े हैं। एक-दूसरे की गर्दन काटने को तैयार हैं! फुरसत कहां गर्दन काटने से--कि खुदा की इबादत हो। गर्दन काटने में ही वक्त चला जाता है। और गर्दन किसकी काट रहे हो। काटने वाला भी वही है, और कटने वाला भी वही है! हिंदू को मारो, तो उसे मारते हो। मुसलमान को मारो, तो उसे मारते हो। मंदिर को जलाओ, तो उसे जलाते हो। मस्जिद को जलाओ, तो उसे जलाते हो।
"इश्के बुतां करूं कि मैं यादे खुदा करूं?"
लेकिन भूल वहीं हो जाती है शुरू में, जहां दो कर लेते हो। दो मत करो। ज्यूं मुख एक देखि दुई दर्पन! क्यों दो करते हो? जो रुच जाए।
"इश्के बुतां"--अगर मूर्तियां प्यारी लगती हों, तो हर्ज कुछ भी नहीं।
अगर अमूर्त प्यारा लगता हो, तो हर्ज कुछ भी नहीं। किस बहाने अपने घर लौट आते हो, बहाने का कोई सवाल नहीं। बैलगाड़ी में आते हो, कि पैदल आते हो, कि हवाई जहाज से आते हो, कि रेलगाड़ी में आते हो--घर आ जाओ।
मगर लोग झगड़ रहे हैं! बैलगाड़ी भी नहीं चलती; रेलगाड़ी भी नहीं चलती। झगड़े से निपटें, तब तो चले। झगड़े इतने खड़े हो जाते हैं कि कुछ चलता ही नहीं। सब अटके हैं। झगड़े में जो पड़ा, वह अटक जाएगा। कोई गीता में अटका है, कोई कुरान में अटका है। जो नावें बन सकती थीं, वे अटकाव बना लिए हैं हमने। कैसी मूढ़ता है!
धार्मिकता तो एक है; धर्म अनेक हैं। इसलिए धर्म गलत हैं; धार्मिकता सच है। और धार्मिक व्यक्ति न हिंदू होता, न मुसलमान होता। धार्मिक व्यक्ति को मस्जिद में बिठा दो, तो भी साक्षी होता है; और मंदिर में बिठा दो, तो भी साक्षी होता है। अब इससे क्या फर्क पड़ता है--कहां साक्षी हुए! दीवालें हिंदुओं ने खड़ी की थीं कि मुसलमानों ने! क्या फर्क पड़ता है!
मैं एक गांव में मेहमान था। मेरे सामने ही एक मंदिर बन रहा था--जिस घर में मैं मेहमान था--मंदिर बन रहा था। जो राज मंदिर को बना रहे थे, जो कारीगर मंदिर के पत्थर तोड़ रहे थे, मूर्तियां निर्मित कर रहे थे, मुझे उनकी बातचीत से लगा कि वे मुसलमान मालूम होते हैं। तो मैंने जानकारी की, पूछताछ की तो पता चला कि हां, वे मुसलमान हैं।

तो जिनके घर में ठहरा था, जो उस मंदिर को बनवा रहे थे, मैंने उनसे पूछा
कि यह बड़े मजे की बात है! इस मंदिर की दीवालें मुसलमान उठा रहे हैं। और इस मंदिर की मूर्ति भी मुसलमान गढ़ रहे हैं! और इस मंदिर की सीढ़ियां भी मुसलमान खड़ी करेंगे। और यह मंदिर हिंदुओं का होगा? और इसी को एक दिन मुसलमान जलाएंगे।
मैंने उनसे पूछा कि यह मंदिर हिंदुओं का कैसे हो जाएगा? दीवालें मुसलमान उठा रहे हैं। कितने ही मंदिर हैं भारत में, जो मस्जिद बना दिए गए हैं, क्योंकि मुसलमानों के जमाने में, जब उनका राज्य था, उन्होंने हर किसी मंदिर को मस्जिद बना दिया। देर क्या लगती थी! थोड़े से फर्क करने थे, और मंदिर मस्जिद हो गई! और फिर अगर हिंदुओं का राज्य लौट आया किसी क्षेत्र में, तो उन्होंने मस्जिद को फिर मंदिर बना लिया!
मंदिर और मस्जिद में कुछ फर्क नहीं है। नासमझों को होगा फर्क। समझदारों को कोई फर्क नहीं है।
मुझे तुम मस्जिद में बिठा दो, क्या फर्क पड़ेगा! इसी मौज और इसी मस्ती में बैठूंगा। तुम मुझे मंदिर में बिठा दो, कोई फर्क न पड़ेगा। इसलिए तो गीता पर बोलूं, कि कुरान पर, कोई भेद नहीं पड़ता। मुझे तो जो बोलना है, वही बोलना है। मुझे तो जो कहना है, वही कहना है। मुझे तो गीत गाना है, वही गाना है। तुम साज मेरे हाथ में कोई भी थमा दो, गीत मैं वही गाऊंगा, राग मैं वही गाऊंगा। तुम बांसुरी पकड़ा दो तो; और तुम सितार दे दो तो, बोलूं तो वही बोलूंगा। चुप रहूं तो उसके लिए ही चुप रहूंगा। मेरे मौन में भी वही होगा; मेरी मुखरता में भी वही होगा।
धार्मिक व्यक्ति न हिंदू होता, न मुसलमान होता, न ईसाई होता, न सिक्ख होता। सिर्फ धार्मिक होता है। मेरा प्रयास--भगीरथ प्रयास--यही है कि तुम्हारी किसी तरह धर्मों से मुक्ति हो जाए तुम्हारी और धार्मिकता तुम्हारे जीवन में खिल जाए।
मत पूछो मुझसे--"इश्के बुतां करूं कि मैं यादे खुदा करूं?" जिस भांति तुम धार्मिक हो सको। अलग-अलग लोग हैं, अलग-अलग उनकी रुचियां हैं। अब मीरा को तुम जबरदस्ती महावीर बनाना चाहो, तो गलती हो जाएगी। मीरा बेचारी मीरा भी न हो पाएगी--महावीर तो हो ही नहीं सकती। तुम महावीर को मीरा बनाना चाहो, तो गड़बड़ हो जाएगी। फिर वे महावीर भी न हो पाएंगे; और मीरा हो नहीं सकते। यह यूं पागलपन है, जैसे कोई बेला को जुही बनाए; जुही को चंपा बनाए। चंपा को गुलाब होने के पाठ पढ़ाए। सारी बगिया पागल हो जाए! यह सारे आदमी का बगीचा पागलों से भर गया है। यहां पागल ही पागल हैं। यहां कोई होश की बात ही जैसे नहीं कर रहा है।
मैं न किसी को मुसलमान बनाना चाहता हूं, न किसी को हिंदू। हां, इतना मैं जरूर कहना चाहता हूंः जो तुम्हें रुचे।
कुरान की अपनी मौज है, अपनी मस्ती है। अगर भा जाए किसी के दिल को, तो बस, ठीक। तो कुरान की नाव बना लेना। और किसी को गीता भा जाए, तो क्या अड़चन! गीता की नाव बना लेना।
डूबता यह नहीं देखता कि जो नाव मुझे बचाने को आई है, उसका मांझी कौन है? हिंदू है कि मुसलमान? ईसाई है कि सिक्ख? यह भी नहीं पूछता कि आस्तिक है कि नास्तिक! डूबता ये बातें पूछता है? डूबता यह पूछेगा कि तुम कौन हो? तुम जब बीमार होते हो, तो तुम यह नहीं पूछते कि डाक्टर ईसाई है और मैं हिंदू; कि डाक्टर हिंदू है और मैं जैन--कैसे चिकित्सा करवाऊं? तुम जब बीमार होते हो, तब तुम फिकर नहीं करते। और तुम बीमार हो--आध्यात्मिक रूप से बीमार हो।
तुम यह फिकर क्या करते हो! तुम्हें जो चिकित्सक रुच जाए। क्योंकि ध्यान रखनाः दवा से भी ज्यादा मूल्यवान है--चिकित्सक। दवा तो गौण है। जिस हाथ पर तुम्हें भरोसा आ जाए, उस हाथ से राख भी मिल जाए, तो दवा हो जाती है। और जिस आदमी पर तुम्हें भरोसा न हो, वह तुम्हें स्वर्ण-भस्मी भी दे, मोतियों की भस्मी पिलाए--कुछ न होगा। राख ही समझो। तुम्हारा संदेह तुम्हें खा जाएगा।

श्रद्धा जहां जन्म जाए... अब्दुल करीम! जहां तुम्हारी श्रद्धा को पंख
लग जाएं, वहीं से आकाश को खोज लो।
यह क्या बात पूछनीः "किस घाट से उतरना है?" घाट अनेक हैं--सागर एक है। किसी घाट से उतरो।
"इश्के बुतां करूं कि मैं यादे खुदा करूं
इस छोटी सी उम्र में, मैं क्या-क्या खुदा करूं?"
और बांटा, तो जरूर उम्र बहुत छोटी है। अगर चिंता में पड़े, तो मुश्किल में आ जाओगे। फिर बहुत हैं... पृथ्वी पर तीन हजार धर्म हैं। यह "इश्के बुतां" और "यादे खुदा" की ही बात नहीं है। यहां तीन हजार धर्म हैं। तीन हजार धर्मों के कम से कम तीस हजार उप-धर्म हैं! अगर तुम इस चिंता में पड़ गए, तो एक जिंदगी क्या अनेक जिंदगियां छोटी हैं। यही तय न हो पाएगा, कि किस नाव पर बैठना है!
और सब मांझी पुकार दे रहे हैं कि "आओ, मेरी नाव में। यही नाव पहुंचा सकती है। बस, यही नाव पहुंचाएगी।" अब तुम अगर इसी चिंता में पड़ गए कि किस नाव में बैठूं, और किस नाव में न बैठूं! तो जिंदगी जरूर बहुत छोटी है। चिंता के कारण छोटी है। और अगर तुम निश्चिंत हो जाओ, तो यह जिंदगी बहुत बड़ी है। एक क्षण भी शाश्वत जितना बड़ा है।
अगर तुम निश्चिंत हो, चिंता छूट गई, तो जिंदगी को छोटी कहते हो! तुम्हें समय का अंदाज है--कि समय घड़ी के अनुसार ही नहीं होता; समय तुम्हारे चित्त की दशा के अनुसार भी होता है। एक समय तो बाहर का समय है जो घड़ी बताती है। और एक समय भीतर का समय है। वह भीतर का समय तुम पर निर्भर है।
तुम अपनी प्रेयसी के पास बैठे हो अब्दुल करीम! वर्षों बाद मिले हो, तो घंटे यूं बीतेंगे, जैसे पल बीते। इतनी तेजी से भागेंगे! रात गुजर जाएगी और पता न चलेगा।
यहां मेरे संन्यासी मुझसे कहते हैं कि समय कैसे गुजरा जा रहा है, पता नहीं चलता! ऐसा भागा जा रहा है! मस्ती के कारण। दुख में समय लंबा मालूम पड़ता है, मौज में समय छोटा हो जाता है।
आठ सितंबर को विवेक मुझसे कहने लगी, "एक वर्ष हो गया! भरोसा नहीं आता
कि आपके पिता के महापरिनिर्वाण को एक वर्ष हो गया! ऐसा लगता है यूं, अभी, कुछ ही दिन पहले तो हमने उन्हें विदा दी थी--और फिर आठ सितंबर का दिन आ गया। इतने जल्दी! दिन यूं भागे जाते हैं!"
अगर तुम मस्त हो, तो दिन भागे जाते हैं। समय का पता नहीं चलता। और अगर तुम दुख में हो, तो समय ठहर-ठहर कर, अटक-अटक कर चलता है। समय बूढ़े आदमी की तरह लकड़ी टेक कर चलने लगता है। रुक-रुक जाता है। पैसेंजर गाड़ी की तरह चलता है।
मेरे एक मित्र थे, रेखचंद्र पारेख; अभी कुछ दिन पहले विदा हो गए। उनको पैसेंजर गाड़ी से चलने का बहुत शौक था। मैंने उनको कई दफा कहा कि यह क्या पागलपन है! उन्होंने कहाः एक बार मेरी भी मानो। तो एक बार उनकी मान कर मैं पैसेंजर गाड़ी से यात्रा किया। और सच में ही मैंने पाया कि वे कहते थे, उसमें भी राज था।
जहां हम हवाई जहाज से एक घंटे में पहुंच सकते थे, वहां पहुंचने में चार दिन लगे! मगर उनकी बात भी मुझे समझ में आई कि उनकी बात भी ठीक थी।
हर स्टेशन पर गाड़ी का रुकना। घंटों रुकना। हर स्टेशन पर उनके जाने- पहचाने लोग थे। परिचित थे। कुली-कुली उनको पहचानता था! स्टेशन मास्टर उनको पहचानता। टिकिट कलेक्टर उनको पहचानता। होटल वाला उनको पहचानता! जहां गए, वहीं स्वागत था। और उनको पता था एक-एक जगह का--कि कहां भजिए अच्छे। कहां दूध अच्छा। कहां की चाय अच्छी। कहां की कचौड़ियां अच्छी। उनको एक-एक चीज का पता था।
एक स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई, वे मुझसे बोलेः जल्दी आओ। स्टेशन के बाहर
ले गए! मैंने कहाः कहां ले जा रहे हो? गाड़ी चली गई तो क्या होगा? उन्होंने कहाः तुम फिकर मत करो!
बाहर बहुत से आमों के वृक्ष थे। आम का एक झुंड का झुंड खड़ा था। और आम
पक गए थे। उन्होंने कहाः आम का समय है। और इस स्टेशन से तो मैं कभी जाता ही

नहीं जब कि पके आम का मौसम होता है। तो कुछ आम तोड़ लें। मैंने कहाः हद्द हो गई! अब ये आमों पर चढ़ना पड़ेगा। इस बीच अगर गाड़ी छूट गई... ! उन्होंने कहाः तुम फिकर मत करो। यहां गाड़ी रुकेगी।
जब हम ऊपर चढ़े तो एक आदमी हम से भी पहले उस पर चढ़ा हुआ था। उन दोनों ने नमस्कार भी किया और गपशप भी की। मैंने कहा कि अब उतर चलें अपन! उन्होंने कहाः तुम बिल्कुल फिकर ही मत करो। जब तक यह आदमी इस पर सवार है झाड़ पर, गाड़ी चलने वाली नहीं। मैंने कहाः यह है कौन? उन्होंने कहाः यह ड्राइवर है! इसी के पीछे-पीछे मैं आता हूं। गाड़ी चलेगी कैसे? फिकर ही मत करो।
और गाड़ी चलती भी कैसे! ठीक ही था। फिर बेफिकरी से सबने आम तोड़े। झोलियां भर कर आम लाए। अब ड्राइवर ही चढ़ा हो, तो तुम समझ सकते हो कि चार दिन लगने ही वाले थे। जहां आम भी तोड़ने हों रास्ते में रुक कर, और भजिए भी खाने हों, और चाय भी पीनी हो, और दूध भी लेना हो। और बच्चों के लिए मिठाइयां भी लेनी हों; खिलौने भी उनको मालूम थे कहां मिलते हैं, अच्छे, लकड़ी के। और कहां क्या--वह सारा का सारा... घर आते-आते उन्होंने डब्बे को सामान से भर लिया!
मैंने उनको कहाः यह बात तो ठीक है। उन्होंने कहाः अब तुम ही कहो--हवाई जहाज से जाते, तो यह मजा कहां! और हवाई जहाज से जो आदमी उड़ता है, उन्होंने कहाः उसको जनता कभी क्षमा नहीं करती। मैंने कहाः यह बात भी ठीक है। क्योंकि किसी के ऊपर से उड़ोगे, तो वह क्षमा कैसे करेगा? किसी के सिर पर चढ़ोगे--कैसे क्षमा करेगा?
और पैसेंजर गाड़ी में! ... मेरे आग्रह से वे फर्स्ट क्लास में चले। नहीं
तो वे कहते थे कि मजा थर्ड क्लास में ही चलने का है। क्योंकि दोस्ती, पहचान, मैत्री, नये-नये संबंध, और एक से एक मजेदार लोग, और उनकी जीवन-कथाएं! और जब रहना है चार दिन साथ, तो फिर सभी अपनी-अपनी खोल देते हैं। जो सगे- संबंधियों से लोग नहीं कहते, वह ट्रेन में अपरिचितों से कह जाते हैं। अपनों से कहने में डरते हैं, वह अजनबियों से कह जाते हैं। तो हर आदमी एक कहानी है। हर आदमी एक अनूठी कहानी है।
तो वे कहते कि यह क्या फर्स्ट क्लास में चलना! मैंने कहाः तुम इतनी कृपा करो कि थर्ड क्लास में मुझे मत घसीटो। मैं पैसेंजर में आने को राजी हो गया, इतना ही बहुत। तुम मुझे फर्स्ट क्लास में तो कम से कम चलने दो!
मगर वे बीच-बीच में जाते रहे मिलने लोगों से; थर्ड क्लास में बैठते रहे! उनको चैन न पड़े। भीड़-भाड़!
लोगों की रुचियां भिन्न हैं। रुचियों को ध्यान में रखो और तुम्हारी रुचि जिस बात से जुड़ जाए, वहां समय एकदम भिन्न हो जाता है। समय की धारा बदल जाती है।
एक मजे की बात है, जो तुमने शायद ख्याल में न ली हो। समय के संबंध में
एक विरोधाभास है। जब सुख के क्षण होते हैं, तो जल्दी जाते हैं। लेकिन दुख के क्षण धीरे-धीरे जाते हैं। और बाद में जब तुम याद करोगे, तो तुम चकित होओगे। बाद में स्थिति बिल्कुल उलट जाती है। जब तुम याद करोगे, तब सुख के क्षण लंबे मालूम होंगे, और दुख के क्षण जल्दी बीत जाएंगे। क्योंकि दुख को हम स्वीकारते नहीं, अंगीकार नहीं करते। कर नहीं सकते। वह हमारे स्वभाव के प्रतिकूल है। फूलों को हम संजो लेते हैं; कांटों को हम छोड़ देते हैं।
तो जब तुम बाद में याद करोगे, तो तुम कहोगे, अहा, प्यारा बचपन! क्या थे दिन! जब तुम बुढ़ापे में जवानी याद करोगे, तो कहोगे, अहा! क्या थे दिन! इधर हुई शाम, उधर हाथ में जाम! क्या थे दिन! हालांकि जवान आदमी अपनी मुसीबतें जानता है। जवानी में उसको मुसीबतें दिखाई पड़ती हैं। बुढ़ापे में मुसीबतें भूल जाती हैं।
बच्चा अपनी मुसीबतें जानता है। तुम जरा फिर से सोचो। बचपन को पुनरुज्जीवित करके सोचो, तब तुम्हें पता चलेगा--कितनी मुसीबतें थीं। रोज-रोज स्कूल जाना। रोज-रोज स्कूल में पिटाई-कुटाई। कान पकड़-पकड़ कर उठाया जाना। घुटने टिकवाना। सजाएं--दंड-बैठक लगवाना! कौन जाना चाहता है। सुबह-सुबह सर्द दिन, और शनिवार आ जाए--कौन उठना चाहता है सुबह-सुबह? एक करवट और लेकर आदमी कंबल ओढ़ कर सो जाना चाहता है।

जरा याद करो, पुनरुज्जीवित करो, फिर से जीओ, तो तुम इतना सुखी नहीं पाओगे, जितना तुम अभी पा रहे हो। लेकिन अगर तुम यूं देखोगे खड़े, दूर होकर, तो जवानी में लगेगाः बचपन बड़ा अदभुत था। सुख ही सुख था। न कोई चिंता। मगर यह अब तुम कह रहे हो। तब बहुत चिंता थी--कि परीक्षा में पास होंगे कि नहीं होंगे? माना, कि नौकरी की चिंता नहीं थी। दूसरी चिंताएं थीं। स्कूल में शैतान बच्चे थे, वे सताते।
मेरे स्कूल में एक लड़का था, उसकी चांद पिलपिली थी। वह भी मुझे जब बाद में मिला, तो कहने लगा, अहा, कैसे अच्छे दिन थे! मैंने कहाः तू तो मत कह! उसने कहाः क्यों?" मैंने कहाः मुझे भलीभांति तेरी जिंदगी याद है।
जो भी उससे जरा मजबूत था, वही उसकी चांद पिलपिलाता था! जो भी मिल जाए;
वह टोपी उतार कर पहले उसकी चांद दबाए। और मैंने उसकी चांद इतनी दबाई कि मुझे एक दफा हेडमास्टर के पास भेजा गया कि तुम क्यों इस लड़के को सताते हो! तुम क्यों इसकी टोपी उतार इसकी चांद... ?
तो मैंने हेडमास्टर से कहा कि आप इसके पहले कि मुझे कुछ कहें, मैं इसकी टोपी उतारता हूं, आप इसकी चांद पिलपिला कर देखें! उन्होंने कहाः इसमें क्या है! इसकी चांद में क्या है? वे भी उत्सुक हुए। मैंने कहाः आप देखें तो। जब उन्होंने उसकी चांद पिलपिलाई, तो वे भी हंसने लगे। उन्होंने कहा कि बात तो ठीक है। चांद इसकी अदभुत है!
उसकी बड़ी पिलपिली चांद थी। मैंने कहाः अब आप ही कहो, ऐसी चांद हो, तो कसूर किसका? ऐसे देना हो सजा, आप मुझे दे सकते हो। मगर इसकी चांद इतनी अदभुत है कि किसका जी इसकी चांद दबाने का न होगा।
उस लड़के की जान मुसीबत में थी। शिक्षक भी उसको सजा देते, तो टोपी निकाल उसकी चांद दबाते! उसका कान नहीं पकड़ते; उसकी चांद दबाते। क्योंकि वही उसका सबसे बड़ा दंड हो सकता था।
उसकी हालत मैं जानता था कि वह छिपा-छिपा स्कूल आता; गली-कूचों में से आता--कि कहीं सीधी सड़क से गया, तो मिलने वाले हैं दुष्ट--और वे सताएंगे। तो हमेशा स्कूल देर से आता। और जल्दी छुट्टी मांगता कि जब स्कूल की छुट्टी होती, तो एक हजार लड़के! एक साथ छूटना! उसकी मुसीबत हो जाती। घर जाते-जाते उसकी चांद इतनी दबाई जाती कि उसकी जान मुसीबत में थी।
वही मुझे बाद में जब मिला, तो मैंने कहाः चंदूलाल! तू तो मत कह!
अभी परसों एक पत्र लक्ष्मी लेकर आई। किसी सज्जन ने उत्तरप्रदेश से पत्र लिखा है कि आपसे मेरी विनती है कि आप कृपा करके चंदूलाल के नाम से लतीफे कहना बंद कर दें। बिल्कुल बंद कर दें। क्योंकि मेरे बाप का नाम चंदूलाल है। आप कोई दूसरा नाम चुन लें। आपका कुछ न बिगड़ेगा। आप कोई दूसरा नाम चुन लें। मगर यह चंदूलाल की वजह से मेरी मुसीबत हुई जा रही है। क्योंकि मैं आपका प्रेमी हूं और टेप सुनने जाता हूं। और जब भी आप चंदूलाल का नाम लेते हैं, सब लोग मेरी तरफ देख कर हंसते हैं कि यह चंदूलाल का बेटा! और मेरे बाप आप पर बहुत नाराज हैं कि यह आदमी क्यों मेरे पीछे पड़ा है!
अब मैंने कहा कि यह बड़ी मुश्किल हो गई। मैं कोई दूसरा नाम चुनूंगा, वह किसी का बाप होगा, किसी का बेटा होगा। और चंदूलाल कोई एक है? इसका चंदूलाल तो मुझे पता ही नहीं था कि ये चंदूलाल कहीं उत्तरप्रदेश में रहते हैं! मैं तो यूं ही चुन लिया था चंदूलाल! अरे, इस देश में कम से कम लाखों चंदूलाल होंगे।
मगर इस लड़के का नाम ही मुझे भूला गया है, क्योंकि हम उसे चंदूलाल ही कहते थे। उसका नाम कुछ और ही था। मगर उसको सभी लोग चंदूलाल के नाम से जानते थे। शिक्षक भी उसको बुलाते, तो कहते, "चंदूलाल!" वह नाराज होता था। झुंझलाता था। परेशान होता था।
मगर अभी मुझे मिला, तो कहने लगा कि अहा, क्या दिन थे वे! मैंने कहाः तू
तो कम से कम मत कह! तू तो याद कर कि तेरी क्या गति थी।" मैंने कहा, "उठा टोपी! कि तुझे याद दिलाऊं कि फिर तुझे भूली-बिसरी यादें आएं, तो शायद तुझे कुछ ख्याल में पड़े!

वह कहने लगा कि यह बात तो ठीक है। अगर लौट कर सोचूं, तो मुझे बहुत सताया गया। मगर अब वे बातें तो भूल गईं। अब तो सब अच्छी-अच्छी बातें याद रहीं।
जब तुम पीछे लौट कर देखोगे, तो जो सुखद क्षण थे, वे लंबे मालूम पड़ेंगे, क्योंकि वे तुमने चुन लिए। और जो दुखद थे, वे छोटे मालूम पड़ेंगे, क्योंकि वे तुमने चुने नहीं हैं। बस, उनकी तो हलकी लकीर रह गई मजबूरी में। वह लकीर भी तुम मिटा देना चाहते हो। इसलिए बूढ़ा आदमी सोचता है--जवानी अच्छी थी। जवान सोचता है--बचपन अच्छा था। और जो मर गए हैं, वे शायद सोचते होंगे कि बुढ़ापा अच्छा था--कब्र में लेटे-लेटे--कि अहा, क्या दिन थे!
अमरीका का एक सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश नब्बे साल का होकर मरा। जब
वह नब्बे साल का था, तो अपने बेटे के साथ बगीचे घूमने गया था। बेटे की उम्र थी पैंसठ साल। यूं बात चल रही थी दोनों में। एक सुंदर स्त्री पास से गुजरी। स्वभावतः बेटे की नजर उस पर पड़ी, बाप की भी नजर पड़ी। स्त्री बहुत सुंदर थी, नजर बचाना मुश्किल था। तो बेटे ने अपने बाप से कहा कि पिता जी, आपका मन होता होगा कि आप भी जवान होते... ! तो बाप ने कहा कि यह तो मन नहीं होता कि जवान होता। लेकिन इतना कम से कम मन होता है कि कम से कम पैंसठ साल का होता ही! कम से कम तेरी उम्र का तो होता ही! अब पैंसठ साल भी यूं बुढ़ापा है। मगर जो नब्बे साल का है, उसके लिए तो पैंसठ साल का होना भी जवानी है। पीछे लौट कर देखोगे, तो समय का रूप बदल जाता है। दुख में समय लंबा मालूम होता है। स्मृति में दुख का समय छोटा हो जाता है। सुख में समय छोटा मालूम होता है; स्मृति में सुख का क्षण लंबा हो जाता है। और समय के संबंध में आखिरी जो बात समझने की है, वह यह है कि दुख और सुख में समय का इतना अंतर पड़ता है; आनंद में समय की क्या अवस्था होती है? आनंद में समय मिट ही जाता है।
जब कोई व्यक्ति ठीक समाधिस्थ अवस्था में होता है, शून्य भाव में होता है, साक्षीभाव में होता है; ज्यूं था त्यूं ठहराया--उस अवस्था में होता है, तब समय समाप्त हो जाता है। समय होता ही नहीं। और अगर इस क्षण को तुम लौट कर याद करोगे, तो लगेगा शाश्वत था! क्योंकि इतना अपूर्व था! इतना गदगद तुम हुए थे कि शाश्वत भी उस विराट आनंद को अपने में कैसे समाएगा, यह भी भरोसा नहीं आता।
अब्दुल करीम, इस छोटी सी उम्र में, पूछते होः "मैं क्या-क्या खुदा करूं?"
कुछ न करो! बस, एक बात करो--ज्यूं था त्यूं ठहराया! इतना ही करो, और सब
हो जाएगा। "इश्के बुतां" भी हो जाएगा, "यादे खुदा" भी हो जाएगी। मूर्ति में जो अमूर्त छिपा है, वह मिल जाएगा।
फिर मूर्त से जाना हो, तो मूर्त से जाओ। अमूर्त में सीधी छलांग लगानी हो, तो सीधी छलांग लगाओ। मगर दिखाई नहीं पड़ता मुझे कि कोई अमूर्त में सीधी छलांग लगा पाता हो। माना कि मस्जिद में कोई बुत नहीं है, कोई मूर्तियां नहीं हैं। लेकिन काबा का पत्थर क्या है? आखिर मस्जिद क्या है? मस्जिद भी वही काम करने लगी, जो मूर्ति करती है! आखिर मस्जिद में तुम हाथ धोकर वजू करके प्रवेश क्यों करते हो? मस्जिद की पवित्रता क्या है? अगर मस्जिद भी एक मकान है, जैसे और मकान हैं, तो मस्जिद में नमन क्या करते हो! अगर ईंट-पत्थर-गारा ही है, जैसा सब मकानों में लगा है। नहीं। लेकिन मस्जिद की कुछ खूबी है। वही खूबी मूर्ति हो गई।
माना कि तुम्हारी मस्जिद में मूर्ति नहीं है... बहुत से मंदिर हैं, जिनमें मूर्ति नहीं होती--ग्रंथ होते हैं। मैं जिस जैन परिवार में पैदा हुआ उसके मंदिर में मूर्ति नहीं होती, उसके मंदिर में ग्रंथ होता है, जैसे गुरुद्वारा में ग्रंथ होता है।
तारण एक फकीर हुए नानक के समय में ही हुए। मेरा परिवार परंपरागत रूप
से उन्हीं कीशृंखला में हैं। जैसा नानक ने मूर्ति को हटा दिया और गुरुग्रंथ को जगह दे दी; वैसे ही तारण ने भी किया। वह एक हवा थी उस समय--आज से पांच सौ साल पहले। कबीर, नानक, तारण, रैदास--एक हवा थी कि क्यों पत्थर की मूर्ति पूजनी?

मगर कागज की किताब भी तो आखिर पत्थर की मूर्ति ही है। शायद पत्थर की मूर्ति ज्यादा टिकाऊ है कागज की किताब से--अगर स्थिरता की सोचो। अगर परमात्मा की शाश्वतता की सोचो, तो पत्थर की मूर्ति शायद उसकी शाश्वतता की खबर देती है। लेकिन अगर विचार की बात सोचो, तो शास्त्र ज्यादा उपयोगी हो सकता है। मूर्ति क्या कहेगी? शास्त्र पढ़ा जा सकता है; चिंतन-मनन किया जा सकता है। तो जिनको चिंतन-मनन प्रिय था, उन्होंने शास्त्र रख लिया। जिनको भजन-कीर्तन प्रिय था, उन्होंने मूर्ति रख ली। जो रुचिकर हो।
हिंदू घर में पैदा होने से कोई हिंदू नहीं; मुसलमान घर में पैदा होने
से कोई मुसलमान नहीं। जन्म से धर्म का कोई संबंध नहीं।
हमने बहुत संबंध जोड़ रखा है। इस गलत संबंध ने, इस नाजायज संबंध ने हमारी न मालूम कितनी मुसीबत कर दी है! हमारे जीवन की बहुत सी जड़ता इसी नाजायज संबंध के कारण हो गई है।
अब यह हो जाता है कि एक व्यक्ति जैन घर में पैदा हुआ, तो उसके मन में अगर मीरा जैसी भक्ति उठे, तो क्या करे? तड़फेगा। कृष्ण को कहां पाए! और महावीर के पास तुम नाच नहीं सकते। जंचेगी नहीं बात। महावीर खड़े हैं बिल्कुल नग्न। इनके पास तुम नाचोगे--शोभा नहीं देगा। तालमेल नहीं बैठेगा। उसके लिए तो कृष्ण ही चाहिए। वही रूप चाहिए। वहीशृंगार; वही मोरमुकुट; वही परिधान; वही नृत्य की मुद्रा; वही हाथ में बांसुरी--लगती है यूं कि अब बजी, तब बजी! वही नाचते हुए कृष्ण की प्रतिमा हो, तो तुम भी नाच सकोगे--तालमेल होगा।
महावीर की खड़ी हुई नग्न प्रतिमा के पास क्या नाचोगे? वहां तो सब नृत्य बंद हो गया; सब थिर हो गया है।
बुद्ध की प्रतिमा के पास नाचोगे; जंचेगा नहीं। वहां तो चुप हो जाना। वहां गीत भी नहीं गाना। वहां मौन-सन्नाटा चाहिए। मगर कोई गाकर भी सन्नाटे में उतरता है। कोई नाच कर भी सन्नाटे में उतरता है। कोई नाचते-नाचते खो जाता है नाच में। मिट जाता है। गल जाता है। पिघल जाता है। और उसी पिघलाव में, जब अहंकार नहीं होता--तो ज्यूं था त्यूं ठहराया!
अब तुम्हारी मौज।
मेरे इस मंदिर के द्वार अनेक हैं। कोई नाचता हुआ आए, तो उसके लिए मैंने कृष्ण की मूर्ति सजा रखी है। और किसी को नाच न जंचता हो, चुप बैठना हो, तो उसके लिए मैंने बुद्ध की मूर्ति बिठा रखी है। जिसकी जैसी रुचि हो। पहले अपनी रुचि को पहचानो। पहले अपने दिल को पहचानो; अपने दिल को टटोलो--और उसी आधार पर चलना, वहीं से संकेत लेना, तो यह दुविधा खड़ी नहीं होगी, तो यह दुई खड़ी नहीं होगी।
ज्यूं मुख एक देखि दुई दर्पन।
दर्पणों में मत देखो। आंख बंद करो और अपने भीतर के रुझान को पहचानो कि मेरा रुझान क्या है! और कठिनाई नहीं होगी। अगर तुम दूसरों की सुनोगे, तो कठिनाई में पड़ोगे, क्योंकि दूसरे अपनी सुनाएंगे।
इसलिए मैं निरंतर अनेक जीवन-दृष्टियों पर बोल रहा हूं। कहीं ऐसा न हो
कि कोई जीवन-दृष्टि तुमसे अपरिचित रह जाए। तुम्हें परिचित करा देता हूं। और निरंतर यह घटना घटती हैः जब मीरा पर बोला हूं, तो किसी के हृदय की घंटियां बजने लगीं। और जब बुद्ध पर बोला हूं, तो किसी के हृदय की गूंज उठी। और मैंने यह पाया है कि जिसको मीरा को सुन कर गूंजा था हृदय, उसको बुद्ध को सुन कर नहीं गूंजा। और जिसको बुद्ध को सुन कर हृदय आंदोलित हुआ, वह मीरा से अप्रभावित रह गया। जो मीरा को सुन कर रोया था, आंख आंसुओं से गीली हो गई थीं--वह बुद्ध को सुन कर ऐसा ही बैठा रहा। कहीं तालमेल न बैठा।
और जो बुद्ध को सुन कर गदगद हो आया, जिसके भीतर कुछ ठहर गया बुद्ध को सुनते-सुनते--वह मीरा को सुन कर सोचता रहा था; यह सब कल्पना-जाल है! यह सब भ्रम है! ये सब मन के ही भाव हैं। कहां कृष्ण? कहां की बांसुरी? कैसा नृत्य? यह मीरा स्त्री थी, भावुक थी, भावनाशील थी। भजन तो अच्छे गाए हैं! वह उनकी भजन की प्रशंसा कर सकता है--काव्य की दृष्टि से, संगीत की दृष्टि से, मगर, और उसके भीतर कुछ नहीं होता।

लेकिन जो मीरा को देख कर डांवाडोल हो गया था, वह बुद्ध को सुनता है, लगता हैः हैं--रेगिस्तान जैसे! उसके भीतर कोई फूल नहीं खिलते। उसका दिल ऐसा नहीं होता कि दौड़ पडूं इस रेगिस्तान में। कि जाऊं और खो जाऊं इस रेगिस्तान में। न कोई कोयल बोलती है। न कोई पक्षी चहचहाते हैं। कुछ भी नहीं। सन्नाटा है।
यहां मैं सारे द्वार तुम्हारे लिए खोल रहा हूं। इस तरह की बात कभी पृथ्वी पर नहीं की गई। इसलिए मैं इसे भगीरथ प्रयास कह रहा हूं। यह पहली बार हो रहा है। महावीर ने अपनी बात कही। मैं भी अपनी बात कह कर चुप हो सकता हूं। मगर मेरी बात कुछ लोगों के काम की होगी, थोड़े से लोगों के काम की होगी।
मीरा ने अपनी बात कही। बुद्ध ने अपनी बात कही। कृष्ण ने अपनी बात कही।
अब समय आ गया कि कोई इन सबकी बात को पुनरुज्जीवित कर दे। इसलिए तुम्हें मेरी बातों में बहुत से विरोधाभास मिलेंगे। मिलने वाले हैं। क्योंकि जब मैं मीरा पर बोलता हूं, तो मीरा के साथ एकरूप हो जाता हूं। फिर मैं भूल ही जाता हूं--बुद्ध को, महावीर को। फिर मेरा कुछ लेना-देना नहीं। और अगर किसी ने बुद्ध-महावीर की बात छेड़ी, तो मैं मीरा के सामने उन्हें टिकने नहीं दूंगा! जब मीरा मैं हूं, तो उस समय मीरा मैं हूं।
और जब मैं बुद्ध के संबंध में बोल रहा हूं; किसी ने कहा कि अब मेरी आंखों में आंसू नहीं आ रहे--तो मैं उसे झकझोरूंगा। तो मैं कहूंगा कि तुम्हें रोना हो, तो कहीं और जाकर रोओ। रोने की जरूरत क्या है! मीरा के समय जरूर कहूंगा कि रोओ, जी भर कर रोओ। गीले हो जाओ। इतने गीले कि बिल्कुल भीग ही जाओ। तराबोर हो जाओ।
तो मेरी बातों में तुम्हें विरोधाभास मिलेंगे, क्योंकि मैं सारे द्वार खोल रहा हूं। वे अलग-अलग द्वार हैं। उनकी कुंजियां अलग; उनके ताले अलग; उनकी स्थापत्य कला अलग; उनका रंग-ढंग अलग। मगर ये सब द्वार एक ही जगह ले जा रहे हैं। ज्यूं था त्यूं ठहराया!
अब्दुल करीम! मत पूछोः
"इश्के बुतां करूं कि मैं यादे खुदा करूं
इस छोटी सी उम्र में, मैं क्या-क्या खुदा करूं?"
बस, इतना सा कर लो। यह छोटी उम्र नहीं है, बहुत है। हिसाब से दी गई है। इससे ज्यादा तुम शायद झेल भी न पाओ। इससे ज्यादा शायद झेलना मुश्किल हो जाए।
पश्चिम में उम्र बढ़ गई है; सौ साल के पार जा चुकी है। आज रूस में बहुत
से लोग हैं जिनकी उम्र एक सौ पचास के करीब पहुंच गई। सबसे बड़ी उम्र का आदमी एक सौ चौरासी वर्ष का है, और अभी भी काम कर रहा है।
अमरीका में, स्वीडन में, स्विटजरलैंड में उम्र का मापदंड बहुत ऊपर पहुंच गया। और तब वहां एक नई चर्चा शुरू हुई--अथनासिया की, मृत्यु की स्वतंत्रता की। क्योंकि बूढ़े यह कह रहे हैं कि हमारा यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि जब हम मरना चाहें, हमें मरने दिया जाए!
हमें हैरानी होती है सुन कर--अथनासिया की बात। "मृत्यु का जन्मसिद्ध अधिकार"--यह भी कोई बात है! किसी ने सुनी? किसी विधान में दुनिया के अभी तक नहीं रही। लेकिन अब लानी पड़ेगी, क्योंकि आंदोलन गति पकड़ रहा है। लानी पड़ेगी।
जो आदमी सौ साल के ऊपर हो गया, जी चुका काफी, वह कहता है कि अब मुझे जीकर क्या करना है? जो देखना था, देख लिया। जो भोगना था, भोग लिया। अब मुझे क्यों सड़ाते हो? और अभी मुश्किल यह है कि कानूनी उसको मरने का हक नहीं है। अगर वह मरने की कोशिश करे, तो सजा खाएगा, जेल जाएगा। आत्महत्या का प्रयास समझा जाएगा। पाप है। अपराध है।
अभी अस्पतालों में यूरोप और अमरीका के ऐसे बहुत से लोग पड़े हैं, जिनकी हालत जीवित नहीं कही जा सकती। लेकिन बस, सांस ले रहे हैं। सांस भी ले रहे हैं, वह भी कृत्रिम, यंत्र के द्वारा सांस ले रहे हैं। डाक्टरों के सामने सवाल है--करीब-करीब दुनिया के सभी प्रतिष्ठित डाक्टरों के सामने यह चिंता है कि करना क्या? क्या हम उनको आक्सीजन देना बंद कर दें? बंद करते ही वे मर

जाएंगे। तो पुरानी अब तक की धारणा कहती है कि आक्सीजन तुमने अगर बंद की, तो तुम उनकी हत्या के जिम्मेदार हुए। तुमने उस आदमी को मार डाला। और इस आदमी को जिला कर क्या करना है? क्योंकि वह पड़ा है--साग-सब्जी की भांति--गोभी- गाजर! गोभी-गाजर भी नहीं, क्योंकि कम से कम गोभी-गाजर किसी काम आ जाए; वह किसी काम का नहीं। और दस-पांच आदमियों को उलझाए हुए है। एक नर्स लगी हुई है। एक डाक्टर लगा हुआ है। और चौबीस घंटे उसकी फिकर करनी पड़ रही है। यह इंजेक्शन दो, वह इंजेक्शन दो! टांगें ऊपर बंधी हुई हैं; वजन लटकाए गए हैं। न उसे होश है। वह कोमा में पड़ा है।
एक महिला को मैं देखने गया। वह नौ महीने से कोमा में है। अब सवाल उठता
है कि इसको कब तक जिलाए रखना? क्यों? क्या प्रयोजन है? मगर कौन मारने का हकदार है! क्या डाक्टर आक्सीजन देना बंद कर दे। तो डाक्टर के हृदय में भीतर कचोट होगी, क्योंकि उसका भी शिक्षण तो हुआ है पुराने आधारों पर। वह भी सो नहीं पाएगा रात में, कि यह मैंने क्या किया! मैंने उस आदमी को मार डाला! पता नहींः वह ठीक हो जाता, फिर। या हो सकता है, वह अभी और जीना चाहता हो। उसकी आकांक्षा के विपरीत जाने वाला मैं कौन हूं! और उसको जिलाए रखूं... ! और हो सकता है, वह मरना चाहता हो। क्योंकि क्या करेगा जीकर ऐसी अवस्था में?
सत्तर साल मेरे हिसाब से ठीक प्राकृतिक उम्र है। सत्तर से ज्यादा आदमी बोझपूर्ण मालूम होने लगेगा। खुद को भी बोझ लगने लगेगा, औरों को भी बोझ लगने लगेगा। और अगर सत्तर साल जिंदगी में कुछ न कर पाए, तो अब और क्या करोगे? अब विदा होने का क्षण आ गया।
सत्तर साल से ज्यादा अगर चिकित्साशास्त्र ने लोगों को जिलाने की कोशिश की, तो उसका अंतिम परिणाम यह होगा कि सभी समृद्ध देशों के विधानों में इस बात को जोड़ना ही होगा--जहां और जन्मसिद्ध अधिकार हैं, वहां एक जन्मसिद्ध अधिकार और जोड़ना होगा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मृत्यु का वरण करने का अधिकार है। तुम उसे जबरदस्ती जिला नहीं सकते। वह अगर मरना चाहता है, तो तुम्हें उसे मरने की सुविधा देनी होगी।" तुम कौन हो, जो उसे जबरदस्ती जिलाओ?
अब्दुल करीम, यह उम्र छोटी नहीं है। यह उम्र ठीक उतनी है, जितनी चाहिए। प्रकृति ने उतना दिया है, जितना चाहिए--न ज्यादा, न कम। लेकिन इस उम्र का अगर तुम आनंद के लिए उपयोग कर लो, तो यह शाश्वत है, बहुत है--जरूरत से बहुत ज्यादा है। क्योंकि एक क्षण भी आनंद का अगर मिल जाए, तो बस, तुमने चख ली बूंद अमृत की; तुम अमर हुए। फिर यह देह जाएगी, यह मन जाएगा, मगर तुम जहां हो--वहीं हो।
श्री रमण के मृत्यु के समय जब उनसे पूछा गया कि भगवान, आप विदा हो रहे हैं। आप कहां जाएंगे? उन्होंने कहाः पागल हुए हो! कहां जाऊंगा? जहां हूं वहीं रहूंगा। जैसा हूं वहीं रहूंगा। यहीं के यहीं रहूंगा। ज्यूं था त्यूं ठहराया!
जो अपने साक्षीभाव में बैठ गया, उसको न अब कहीं आना है, न कहीं जाना है। वह शाश्वत का अंग हो गया; वह अनंत का हिस्सेदार हो गया; वह परमात्मा का रूप हो गया; वह परमात्मामय हो गया। इसलिए तो हमने बुद्ध को भगवान कहा। महावीर को भगवान कहा। कहने का कारण था। भगवत्ता को उपलब्ध हो गए। भगवत्ता का अर्थ हैः जिसने भी जान लिया कि मैं जन्म के पहले था और मृत्यु के बाद भी रहूंगा; जिसने अपने स्वरूप को पहचान लिया। इतना ही करो।
फिर किस बहाने करते हो, यह तुम्हारी मर्जी।
इश्के बुतां--मूर्तियों से प्रेम हो--चलेगा। तो कोई प्यारी मूर्ति चुन लो। और अगर शून्य तक सीधी छलांग लगाने का साहस हो, तो कोई जरूरत नहीं मूर्ति चुनने की।
मूर्ति चुनो, तो प्रार्थना तुम्हारा पथ होगा। और अगर अमूर्ति चुनो,
तो ध्यान तुम्हारा पथ होगा। मगर ये पथ हैं। और ये सारे पथ एक ही शिखर पर पहुंच जाते हैं।
मैंने सारे पथों को छान-बीन कर देखा है, ये सब एक ही शिखर पर पहुंच जाते हैं। कोई कुरान गुनगुनाता आता है। कोई गीता गुनगुनाता आता है। कोई

कृष्ण को भजता आता है। कोई शांत-साक्षीभाव में आता है। मगर सबको आ जाना है अपने उस बिंदु पर, जो शाश्वत है, जो अमृत है।

आज इतना ही।

ज्यूं था त्यूं ठहराया
दूसरा प्रवचन

संस्कृति का आधारः ध्यान

पहला प्रश्नः ओशो, "भारतीय संस्कृति संसद" अपने पच्चीस वर्ष पूरे कर रही है, उसके उपलक्ष्य में डाक्टर प्रभाकर माचवे ने आपको चिंतक, विचारक और मनीषी का संबोधन देते हुए "भारतीय संस्कृति" ग्रंथ के लिए आपके विचार आमंत्रित किए हैं, जिसे वे ग्रंथ के प्रारंभ में प्रकाशित करके धन्यता अनुभव करेंगे।
निवेदन है कि कुछ कहें!

चैतन्य कीर्ति! मैं न तो चिंतक हूं, न विचारक, न मनीषी। चिंतन को हम बहुत मूल्य देते हैं; विचार को हम बड़ा सौभाग्य समझते हैं; मनीषा तो हमारी दृष्टि में जीवन का चरम शिखर है। लेकिन सत्य कुछ और है। न तो बुद्ध विचारक हैं--न महावीर, न कबीर। जिसने भी जाना है, वह विचारक नहीं है। जो नहीं जानता, वह विचारता है। विचार अज्ञान है। अंधा सोचता हैः प्रकाश कैसा है, क्या है! आंख वाला जानता है--सोचता नहीं। इसलिए कैसा चिंतन? कैसा विचार? विचार और चिंतन अंधेरे में टटोलना है--और अंधे आदमी का।
दर्शनशास्त्र की परिभाषा शापेनहार ने यूं की है--कि जैसे कोई अंधा आदमी अंधेरे में काली बिल्ली को खोजता हो, जो कि वहां है ही नहीं!
विचारक, चिंतक, मनीषी--सब मन की प्रक्रियाएं हैं। और जहां तक मन है, वहां तक संस्कृति नहीं। मन का जहां अतिक्रमण है, वहीं संस्कृति का प्रारंभ है। मन का अतिक्रमण होता है ध्यान से। इसलिए मेरे देखे, मेरे अनुभव में, ध्यान ही एकमात्र कीमिया है, जो व्यक्ति को सुसंस्कृत करती है। मनुष्य जैसा पैदा होता है, प्राकृत, वह तो पशु जैसा ही है; उसमें और पशु में बहुत भेद नहीं। कुछ थोड़े भेद हैं भी तो गुणात्मक नहीं-- परिमाणात्मक। माना कि पशु में थोड़ी कम बुद्धि है, आदमी में थोड़ी ज्यादा; मगर भेद मात्रा का है; कोई मौलिक भेद नहीं। मौलिक भेद तो ध्यान से ही फलित होता है। पशु को ध्यान का कुछ भी पता नहीं।
और वे मनुष्य जो बिना ध्यान के जीते है और मर जाते हैं--नाहक ही जीते हैं, नाहक ही मर जाते हैं। अवसर यूं ही गया! अपूर्व था अवसर। जीवन सत्य के स्वर्ण-शिखर छू सकता था; खिल सकते थे कमल आनंद के; अमृत की वर्षा हो सकती थी; लेकिन ध्यान के बिना कुछ भी संभव नहीं।
ध्यान का अर्थ हैः वह कीमिया जो प्राकृत को संस्कृत करती है। जैसे कोई अनगढ़ पत्थर को गढ़ता है और मूर्ति प्रकट होती है। जैसे कोई खदान से निकले हीरे को निखारता है, साफ करता है, पहलू उभारता है--तब हीरे में चमक आती है, दमक आती है। तब हीरा हीरा होता है।
हम सब पैदा होते हैं अनगढ़ पत्थर की भांति। वह हमारा प्राकृत रूप है। संभावना की तरह हम पैदा होते हैं। फिर उन संभावनाओं को--और वे अनंत हैं-- वास्तविकता में रूपांतरित करना, संभावनाओं को सत्य बनाना, उसकी कला ध्यान है।
लेकिन अक्सर यह हो जाता है कि हम "सभ्यता" और "संस्कृति" को पर्यायवाची बना लेते हैं। सभ्यता बाहर की बात है, संस्कृति भीतर की। "सभ्यता" शब्द का अर्थ होता हैः सभा में बैठने की योग्यता, समाज में जीने की क्षमता। औरों से कैसे संबंध रखना, इसकी व्यावहारिक कुशलता का नाम सभ्यता है--शिष्टाचार। भीतर कूड़ा-कचरा हो, भीतर क्रोध हो, भीतर ईर्ष्या हो, भीतर सब रोग हों, मगर कम से कम बाहर मुस्कुराए जाना! भीतर विषाद हो, मगर बाहर न लाना! भीतर घाव हों, घावों को फूलों से छिपाए रखना! दूसरों के साथ यूं मिलना जैसे कि तुम धन्यभागी हो, सब पा लिए हो! मुखौटे लगाए रखना! सभ्यता मुखौटे लगाना सिखाती है। फिर तरह-तरह के मुखौटे हैं--हिंदुओं
के और, मुसलमानों के और; जैनों के और, बौद्धों के और; भारतीयों के और, चीनियों के और, रूसियों के और! फिर संसार मुखौटों से भरा हुआ है। इसलिए सभ्यताएं अनेक होंगी। भारत की अलग होगी और अरब की अलग होगी और मिश्र की

अलग होगी। इतना ही क्यों, भारत में भी बहुत सभ्यताएं होंगी--जैन की अलग होगी, हिंदू की अलग होगी, मुसलमान की अलग होगी, ईसाई की अलग होगी, सिक्ख की अलग होगी; पंजाबी की अलग होगी, गुजराती की अलग होगी, महाराष्ट्रियन की अलग होगी; उत्तर की अलग होगी, दक्षिण की अलग होगी! भेद पर भेद होंगे; खंड पर खंड होंगे। लेकिन संस्कृति एक ही होगी। संस्कृति भारतीय नहीं हो सकती, हिंदू नहीं हो सकती, गुजराती नहीं हो सकती, पंजाबी नहीं हो सकती, बंगाली नहीं हो सकती। क्योंकि संस्कृति तो अंतरात्मा का परिष्कार है।
सभ्यता बाहर की बात है। वह औपचारिक है। स्वभावतः अलग-अलग होगी। अलग मौसम, अलग भूगोल, अलग जरूरतें--निश्चित ही सभ्यता को अलग कर देंगी। वह एक जैसी नहीं हो सकती। पश्चिम में सभ्यता और होगी, वहां के अनुकूल होगी--वहां के भूगोल, वहां के मौसम, वहां की जलवायु के अनुकूल होगी। अब वहां जूते पहने रहना चौबीस घंटे, मोजे पहने रखना, टाई बांधे रखना--बिल्कुल अनुकूल है। लेकिन मूढ़ हैं वे जो भारत में टाई बांधे घूम रहे हैं! सर्द मुल्कों में, हवा जरा भी भीतर न चली जाए, इसकी चेष्टा चलती है। लेकिन गर्म मुल्कों में, जहां पसीना बह रहा है, वहां लोग टाई कसे हुए बैठे हैं! इनसे ज्यादा मूढ़ और कौन होंगे? भारत में जूते कसे बैठे हैं दिन भर, मोजे भी पहने हुए हैं! पसीने से तरबतर हैं, बदबू छूट रही है। लेकिन उधार। सभ्यता उधार ली कि तुम सिर्फ मूढ़ता जाहिर करते हो।
सभ्यता अलग-अलग होगी। तिब्बत में अलग होगी... । अब तिब्बत में ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करना, सभ्यता नहीं हो सकती। कैसे होगी? मरना है? डबल निमोनिया करना है? लेकिन भारत में तो रोज ब्रह्ममुहूर्त में स्नान कर लेना, सभ्यता होगी, निश्चित सभ्यता होगी। भारत में जमीन पर बैठना पद्मासन में बिल्कुल सभ्य होगा। लेकिन पश्चिम में जमीन पर नहीं बैठा जा सकता। इतनी ठंड है, इतनी कठिनाई है। भारत में उघाड़े भी बैठो तो सभ्यता है, लेकिन पश्चिम में उघाड़े नहीं बैठ सकते हो।
लेकिन संस्कृति भिन्न-भिन्न नहीं हो सकती, क्योंकि संस्कृति न तो मौसम से जुड़ी है, न भूगोल से, न राजनीति से, न परंपरा से। संस्कृति की कोई परंपरा नहीं होती। संस्कृति को तो प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर ही अन्वेषण करना होता है।
संस्कृति पाने की कला ध्यान है, क्योंकि ध्यान से प्राकृत का परिष्कार होता है; क्रोध को करुणा बना दे--ऐसा चमत्कार होता है; वासना को प्रार्थना बना दे--ऐसा जादू; इसका पूरा विज्ञान कि जो-जो हमारे भीतर व्यर्थ है उसको छांट दे, ताकि सार्थक ही बच रहे; जो हमारे भीतर शुभ्रतम है, उसे उभार दे; अंधेरे को काट दे, दीये को जला दे, रोशन कर दे!
अंतर्ज्योति से जगमगाता हुआ व्यक्ति जानता है कि संस्कृति क्या है। केवल बुद्धों ने जाना है कि संस्कृति क्या है। संस्कृति बुद्धुओं की दुनिया का हिस्सा नहीं है। बुद्धू तो संस्कृति को भी बिगाड़ देंगे। वे तो उसको भी भारतीय बना लेंगे, ईसाई बना लेंगे, जैन बना लेंगे, हिंदू बना लेंगे! वे तो उस पर भी राजनीति थोप देंगे। भूगोल, इतिहास--इसके नीचे दब कर संस्कृति मर जाएगी। संस्कृति तो आत्मा है व्यक्ति की। वह तो सेतु है परमात्मा से मिलने का।
मैं तुम्हें यहां संस्कृति दे रहा हूं, सभ्यता नहीं। क्योंकि मेरी धारणा मेरे अनुभव से निकली है। अनुभव मेरा यह है कि सभ्य व्यक्ति जरूरी नहीं कि सुसंस्कृत हो। सभ्य व्यक्ति के तो कई चेहरे होते हैं--बैठकखाने में कुछ और, स्नानगृह में कुछ और; सामने के दरवाजे पर कुछ और, पीछे के दरवाजे पर कुछ और। मुख में राम, बगल में छुरी!
सभ्य व्यक्ति के तो बड़े द्वंद्व होते हैं। क्योंकि भीतर दबाया है उसने। सभ्यता दमन है। कोई भी सभ्यता हो, दमन है। जबरदस्ती व्यक्ति को समाज के साथ समायोजित करने की चेष्टा है। बिना रूपांतरित किए, उसे सिखाना है शिष्टाचार कि ऐसे जीओ, यह करो यह न करो। ये सब आदेश ऊपर से थोपे जाएंगे। स्वभावतः उसका आचरण एक होगा और अंतस और।

सभ्यता दमन है, लेकिन संस्कृति रूपांतरण है, दमन नहीं। संस्कृति होगी, तो सभ्यता तो होगी; लेकिन सभ्यता हो, तो संस्कृति अनिवार्य नहीं।
सभ्यता धोखा हो सकती है।
और यह भी भेद होगा कि जो संस्कृति को उपलब्ध है, उसकी सभ्यता उतने दूर
तक ही सभ्यता होगी, जितने दूर तक उसकी अंतरात्मा के विपरीत नहीं जाती। जहां विपरीत जाएगी, वहां वह बगावत करेगा; वहां वह विद्रोही होगा।
सभ्य आदमी कभी विद्रोही नहीं होता, हमेशा आज्ञाकारी होता है। इसलिए समाज को चिंता नहीं है कि तुम्हारे जीवन में संस्कृति हो; समाज को चिंता है कि बस तुम सभ्य रहो, इतना काफी है। सभ्य रहे, तो गुलाम रहे। सभ्य रहे, तो दास रहे। सभ्य रहे, तो शोषण तुम्हारा किया जा सकता है, बस, पर्याप्त है; भीड़ के हिस्से रहो। भीड़ जैसा चले, चलो। भेड़चाल! फिर भीड़ ठीक हो तो ठीक, गलत हो तो गलत--यह तुम्हारी चिंतना नहीं होनी चाहिए।
संस्कृत व्यक्ति मौलिक रूप से विद्रोही होगा। इसलिए मैंने कहा, संस्कृति की परंपरा नहीं होती। संस्कृति बगावत है, प्रतिभा है। निजता है संस्कृति में--उधार नहीं, बासापन नहीं।
संस्कृत व्यक्ति सभ्य होगा--एक सीमा तक; जरूर सबके साथ चलेगा, जब तक कि उसे अंतरात्मा को बेचना न पड़े। जिस क्षण तुमने कहा कि कुछ ऐसा करो जो उसकी अंतरात्मा की आवाज के विपरीत जाता है, वह बगावत करेगा। बुद्ध ने बगावत की। जीसस ने बगावत की। नानक ने बगावत की। कबीर ने बगावत की। ये संस्कृति के शिखर हैं।
बुद्ध परंपरा के साथ नहीं चले। यूं कौन होगा जो बुद्ध से ज्यादा सभ्य होगा? लेकिन बुद्ध के पास आंखें हैं, तो उन्हें दिखाई पड़ा कि वेदों में धर्म कहां! निन्यानबे प्रतिशत तो कूड़ा-कचरा है, तो बगावत की। कूड़ा-कचरा के साथ कोई समझौता नहीं हो सकता। जरूर जो एक प्रतिशत सत्य है, उसका समग्र स्वागत है; लेकिन जो निन्यानबे प्रतिशत असत्य है, उसका समग्र विरोध भी। महावीर ने बगावत की। कबीर ने बगावत की।
संस्कृत व्यक्ति--समाज नहीं चाहता। समाज सभ्यता से राजी है; उतना काफी है। बस, मुखौटा लगा लो, नाटक करते रहो कि भले हो, फिर भीतर-भीतर कुछ भी करते रहो।
सभ्य आदमी की राजनीति होती है; संस्कृति की कोई राजनीति नहीं होती। सभ्य आदमी बड़ा कूटनीतिज्ञ होता है--कहता कुछ, करता कुछ; दिखाता कुछ, होता कुछ! उसकी मुस्कुराहट में जहर छिपा हो सकता है। उसके फूलों में कांटे छिपे हो सकते हैं। उसकी हर बात में चालबाजी होगी। उसकी हर बात में बेईमानी होगी। उसके इरादे कुछ और होंगे, वह बताएगा कुछ और; बताएगा वह जो सबसे मेल खाए; और इरादे कुछ और होंगे, जिन्हें वह छिपा कर पूरा करता रहेगा; और अच्छे- अच्छे बहाने खोजेगा।
कल मैंने देखा, एक पत्रकार ने मोरारजी देसाई का इंटरव्यू लिया है। उसने पूछा कि आप प्रधानमंत्री बने हैं, यह आप अपने कर्म से बने हैं?" तो उन्होंने कहा कि "नहीं, यह तो मेरे भाग्य से मैं बना। यह मेरी नियति थी। यह परमात्मा ने मुझे बनाया!
जिंदगी भर आपा-धापी करते रहे, जोड़-तोड़ करते रहे, सब तरह की चालबाजियां करते रहे--अब यह आखिरी चालबाजी, कि अब यह मजा भी क्यों न ले लो कि परमात्मा को फिकर पड़ी है कि मोरारजी देसाई, सत्तर करोड़ लोगों में यह एक आदमी प्रधानमंत्री बने!
और पोल तो वहीं खुल गई, क्योंकि ढोल की पोल ज्यादा दूर नहीं होती। दूसरा ही प्रश्न पत्रकार ने पूछा कि अब परमात्मा ने आपको प्रधानमंत्री बनाया, यह बात समझ में आई कि आपके भाग्य में था, लेकिन फिर आपकी सत्ता उखड़ क्यों गई? तो वे भूल गए। झूठ कोई कितनी देर याद रखे? सत्य को याद नहीं रखना होता, झूठ को याद रखना होता है। तब वे तत्क्षण बोले कि यह मेरे कुछ साथियों को महत्वाकांक्षा थी प्रधानमंत्री होने की, चौधरी चरणसिंह को महत्वाकांक्षा थी प्रधानमंत्री होने की, उनके कारण सब बर्बाद हुआ।
अब यह बड़ा मजा है कि चौधरी चरणसिंह को परमात्मा ने नहीं बनाया? चौधरी चरणसिंह को नियति ने नहीं बनाया प्रधानमंत्री! सिर्फ मोरारजी भाई के लिए

परमात्मा ने भाग्य में लिखा! चौधरी चरणसिंह की खोपड़ी में बिल्कुल नहीं लिखा? ये अपनी कोशिश से बन गए!
और बड़ा मजा यह है, तब तो चौधरी चरणसिंह परमात्मा से भी बड़े हो गए! क्योंकि परमात्मा मोरारजी देसाई को बनाता है प्रधानमंत्री और चौधरी चरणसिंह उनको खिसका देते हैं, और खुद प्रधानमंत्री बन जाते हैं। तो परमात्मा से भी ज्यादा शक्तिशाली हो गए।
ढोल की पोल बहुत ज्यादा दूर नहीं होती। झूठ बोलोगे, अगर जरा आंख होगी पहचानने वाले में, तत्क्षण पकड़ जाओगे। मगर इस पत्रकार की पकड़ में नहीं आया। पत्रकार तो उनके पैर छूकर गया। पैर छूता हुआ चित्र छपा हुआ है साथ में कि पत्रकार न उनके चरण छुए कि कैसा धन्यभागी व्यक्ति, परमात्मा ने जिसको प्रधानमंत्री बनाया! उस पत्रकार को नहीं दिखाई पड़ा कि यह बड़ा मजा है, चौधरी चरणसिंह को भी परमात्मा ने ही बनाया होगा फिर, फिर इंदिरा को भी परमात्मा ने ही बनाया होगा!
मगर अभी ये ही पुराने उपद्रवी, अब फिर एक मुहिम उठा रहे हैं--इंदिरा हटाओ। परमात्मा ने बनाया है इंदिरा को, तुम किसलिए हटाने की चिंता में लगे हो? क्या परमात्मा से दुश्मनी ले रखी है? नहीं, और किसी को परमात्मा नहीं बनाता, मोरारजी देसाई को भर परमात्मा बनाता है; बाकी सब अपनी कोशिश से बन जाते हैं! यह परमात्मा सिर्फ इनके ही साथ है!
ये तथाकथित मुखौटे लगाए हुए लोग कहेंगे कुछ, करेंगे कुछ। इनके मंतव्यों पर भरोसा मत करना। ये संस्कृति के लक्षण नहीं हैं। हां, सभ्यता यही धोखा सिखाती है, यही पाखंड सिखाती है।
सभ्यता पाखंड है। मैं सभ्यता विरोधी हूं, संस्कृति का पक्षपाती हूं। लेकिन संस्कृति ध्यान के बिना नहीं मिलती।
"संस्कृति" शब्द में खतरा है, क्योंकि शब्द बनता है संस्कार से। संस्कार के दो अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ तो कि दूसरों के द्वारा दिए गए, दूसरों के द्वारा आरोपित, दूसरों के द्वारा सिखाए गए। और दूसरा अर्थ हो सकता है परिष्कार का; ध्यान के द्वारा निखारे गए। जो लोग संस्कृति का संस्कार से ही संबंध जोड़ कर रह जाते हैं, वे शब्द को तो समझ गए, लेकिन शब्द के भीतर छिपी हुई आत्मा से चूक गए। शरीर तो शब्द का समझ में आ गया, लेकिन आत्मा छिटक गई हाथ से।
संस्कृति संस्कार ही नहीं है, क्योंकि संस्कार से सभ्यता बनती है। मां-बाप ने सिखाया--ऐसे उठो, ऐसे बैठो; इस मंदिर में जाओ, इस मस्जिद में जाओ; यह शास्त्र पढ़ो। ये सब संस्कार हैं। तो हर बच्चे को संस्कारित करते हैं हम। जनेऊ पहना देते हैं, तो उसको कहते हैं--"यज्ञोपवीत संस्कार"! फिर ऐसे संस्कार होते ही रहते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक संस्कार चलते रहते, मृत्यु के बाद भी--"अंतिम संस्कार"! मर गया आदमी मगर संस्कार करने वाले नहीं छोड़ते; वे मरे-मराए पर भी संस्कार करते चले जाते हैं! जो मर गए बहुत पहले, उन पर भी संस्कार थोपते चले जाते हैं! लाशों को भी रंगते रहते हैं! संस्कृति संस्कार ही नहीं है, संस्कृति मौलिक रूप से परिष्कार है। लेकिन परिष्कार के लिए ध्यान की कला चाहिए। और ध्यान न हिंदू होता, न मुसलमान होता। ध्यान का अर्थ हैः साक्षीभाव! ज्यूं था त्यूं ठहराया! तुम्हारे भीतर जो स्वरूप है, जो गहनतम तुम्हारी जीवन की ऊर्जा छिपी पड़ी है, जो तुम्हारा केंद्र है, उसमें ठहर जाना। पूर्ण विराम आ जाए। कोई दौड़ न रहे, कोई आकांक्षा न रहे, कोई महत्वाकांक्षा न रहे! ऐसी शांति घनी हो, ऐसा निर्विचार हो, ऐसा मौन हो कि कोई तरंग न उठे! झील ऐसे शांत हो रहे कि जैसे दर्पण हो गई। तो फिर जो है, वह झलकता है। जो है, उसका झलकना ही परमात्मा का अनुभव है।
महत्वाकांक्षी व्यक्ति के मन में इतनी आपाधापी होती है, इतने विचारों
की तरंगें होती हैं, इतनी लहरें होती हैं कि झील पर चांद का नक्श बने तो कैसे बने! टूट-टूट जाता है, बिखर-बिखर जाता है। चांद तो एक है, मगर झील में जब लहरें होती हैं, तो अनेक खंडों में बिखर जाता है। प्रतिबिंब खंडित हो सकता है, चांद खंडित नहीं होता।

उसी भेंटवार्ता में मोरार जी देसाई ने कहा कि मुझे पनचानबे प्रतिशत सत्य मिल चुका है!
पनचानबे प्रतिशत! यह कोई दुकानदारी है? लेकिन गुजराती मन! लाख करो, बनिया होने से छुटकारा नहीं हो सकता। वहां भी प्रतिशत चल रहा है!
मैंने सुना है, एक यहूदी को उसके एक मित्र ने पूछा कि सब ठीक-ठाक तो है? अभी-अभी उसने विवाह किया है। उसने कहा कि सब ठीक-ठाक है। बड़े आनंद में हूं। पत्नी क्या मिली, देवी है, अप्सरा है! ऐसी सुंदर शायद पृथ्वी पर दूसरी कोई स्त्री न हो।
मित्र ने कहाः वह तो मुझे भी मालूम है कि स्त्री सुंदर है, मगर क्या मैं यह समझूं कि तुम्हें पूरी कथा स्त्री की मालूम नहीं? तुम्हारे अलावा उसके चार प्रेमी और भी हैं!
यहूदी ने कहाः उसकी चिंता न करो। अच्छे धंधे में बीस प्रतिशत लाभ भी बहुत! रद्दी धंधे में सौ प्रतिशत लाभ का भी क्या करोगे? मिल जाए कोई डाकिन और उसमें सौ प्रतिशत अपनी हो, इससे यह बीस प्रतिशत अपनी, यह बहुत!
यहूदी का मन बनिये का मन है। यहूदी शुद्ध गणित में सोचता है। मारवाड़ी
हो कि गुजराती हो--मन यहूदी का होता है।
सत्य के भी खंड, उसमें भी प्रतिशत! यह कोई धन की और ब्याज की दुनिया है? पंचानबे प्रतिशत सत्य मिल चुका है! सत्य जब मिलता है, तो पूरा मिलता है, अखंड मिलता है। उसके खंड होते नहीं। उसके टुकड़े होते नहीं। सत्य के कोई टुकड़े कभी नहीं कर सका। सत्य के टुकड़े करोगे, तो सत्य सत्य ही नहीं है। झूठ के टुकड़े होते हैं। झूठ के खंड होते हैं। सत्य अखंड है, अविभाज्य है, अद्वय है। दो भी नहीं कर सकते, और ये तो सौ टुकड़े किए बैठे हैं! पंचानबे टुकड़े इनको मिल गए हैं, पांच टुकड़े और बचे हैं!
अब यह पागलपन देखते हो?
और उन्होंने कहा कि बस, अब एक महत्वाकांक्षा और बची है--परमात्मा को पाने की। एक महत्वाकांक्षा पूरी हो गई--प्रधानमंत्री होने की! जब तक पूरी नहीं हुई थी, तब तक वही कहते थे कि यह मेरी महत्वाकांक्षा है; अब पूरी हो गई, तो अब कहते हैं--यह मेरी नियति थी। परमात्मा ने लिखा ही हुआ था। यह होने ही वाला था। इसे कोई दुनिया की शक्ति रोक नहीं सकती थी। अब कहते हैं कि परमात्मा को पाना मेरी महत्वाकांक्षा है!
परमात्मा को पाने की कोई महत्वाकांक्षा हो ही नहीं सकती। और जिसके मन में परमात्मा को पाने की महत्वाकांक्षा है, वह कभी परमात्मा को पा न सकेगा, क्योंकि महत्वाकांक्षी मन ही तो बाधा है। जब तक महत्वाकांक्षा न गिर जाए, वासना न गिर जाए... फिर वह वासना परमात्मा को ही पाने की क्यों न हो, कुछ भेद नहीं पड़ता। धन पाना चाहो, पद पाना चाहो, परमात्मा पाना चाहो-- चाह तो एक है, चाह का रंग एक है, चाह की भ्रांति एक है।
चाह दौड़ाती है, भगाती है, ठहरने नहीं देती। और जो अचाह हुआ, वह ठहरा-- ज्यूं का त्यूं ठहराया! जहां कोई चाह नहीं, वहां कोई दौड़ नहीं, भाग नहीं, आपाधापी नहीं। और जो ठहरा अपने केंद्र पर, उसे मिल गया परमात्मा। परमात्मा वहीं छिपा है, कहीं बाहर नहीं। और जब मिलता है, तो पूरा मिलता है-- स्मरण रखना। या तो नहीं मिला है या मिला है। आधा-आधा नहीं होता कि थोड़ा मिला, थोड़ा नहीं मिला! परमात्मा की उपलब्धि क्रांति है--क्रमिक विकास नहीं।
लेकिन जिन्होंने ध्यान नहीं जाना है, उन्होंने संस्कृति भी नहीं जानी; उन्होंने धर्म भी नहीं जाना; उन्होंने सत्य भी नहीं जाना। वे केवल सभ्यता के ही आवरणों में लिपटे हुए हैं; सभ्यता के आभूषणों को ही पहने हुए बैठे हैं। और सभ्यता के आभूषण दिखते आभूषण हैं, वस्तुतः जंजीरें हैं। सोने की सही, हीरे-जवाहरात जड़ी सही, मगर जंजीरें जंजीरें हैं।
सभ्यता तो एक कारागृह बनाती है--सुंदर, सजावट से बना हुआ। लेकिन कारागृह कारागृह है, चाहे दीवारों पर कितने ही बड़े चित्रकारों के चित्र टंगे हों, और चाहे कितना ही सुंदर फर्नीचर हो, और चाहे सींखचे सोने के हों।
लेकिन कुछ लोग इन कारागृहों को ही घर समझ लेते हैं। कुछ क्या, अधिकतम!

मैंने सुना है, एक यात्री, एक सत्य का खोजी एक धर्मशाला में ठहरा है। धर्मशाला के द्वार पर ही एक तोता टंगा है। सुंदर उसका पिंजरा है और वह तोता चिल्ला रहा हैः स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! ... यही तो उसके भी प्राणों की पुकार थी--स्वतंत्रता, सारे बंधनों से स्वतंत्रता! इसी खोज में तो वह इस पहाड़ी स्थल पर आया था कि बैठूंगा एकांत में कि सबसे स्वतंत्र हो जाऊं। यही पुकार तोते की भी है!
और तब उसे लगा ऐसे ही पिंजरे में मैं बंद हूं, ऐसे ही पिंजरे में यह बेचारा तोता बंद है। इसके भी पंख काट दिए हैं तोते के। पिंजरे में बंद कर दिया, तो पंख कट गए, इससे आकाश छिन गया। यह आकाश का पक्षी; यह आकाश का मुक्त गगनविहारी, इसे कहां सीखचों में बंद कर दिया! माना कि सींखचे सुंदर हैं। लेकिन सराय का मालिक कहीं नाराज न हो जाए... ! दिल तो हुआ इस खोजी का कि पिंजरा खोल दूं और तोते को उड़ा दूं; लेकिन तोता किसी और का है, झंझट खड़ी हो जाए! तो उसने कहा, अभी नहीं, रात देखूंगा।
सांझ जब सूरज डूब रहा था, तब भी तोता चिल्ला रहा थाः स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! क्योंकि वह जो सराय का मालिक था, वह स्वतंत्रता के आंदोलन में जेल जा चुका था और जेल में उसे एक ही आकांक्षा थी--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता... । जब निकला था बाहर तो अपने तोते को भी उसने राम-राम रटना नहीं सिखाया--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता का पाठ सिखा दिया। मगर पाठ पाठ है। और मजा देखते हो, पाठ स्वतंत्रता का सिखा दिया और पिंजरे में तोते को बंद कर दिया! इतना न सूझा कि स्वतंत्रता का पाठ सिखाते हो, तो कम से कम इसे तो स्वतंत्र कर दो!
रात वह सत्य का खोजी उठा, उसने पिंजरे का द्वार खोला, तोता सो रहा था उसे जगाया हिला कर और कहाः उड़ जा!
मगर तोते ने तो अपने सींखचों को जोर से पकड़ लिया। चिल्लाए जाए स्वतंत्रता, स्वतंत्रता और पकड़े है सींखचों को! यात्री तो हैरान हुआ, उसने कहा कि इस शोरगुल में कहीं मालिक जग जाए तो कहेगा, मेरे तोते को उड़ाए देते हो, यह क्या बात है! तो उसने जल्दी से हाथ भीतर डाला कि तोते को पकड़ कर बाहर निकाल ले और खोल दे, मुक्त कर दे। लेकिन तोते ने उसके हाथ पर चोटें मारी, उसके हाथ को लहूलुहान कर दिया अपनी चोंच से, और चिल्लाए जाए--स्वतंत्रता! वह आवाज लगाए जाए क्योंकि एक ही मंत्र सीखा था।
सीखे मंत्रों की यही गति होती है। उधार मंत्रों की यही गति होती है। चिल्लाए जाए--स्वतंत्रता! और सींखचे पकड़े हुए है। और जो हाथ स्वतंत्रता देने आ रहा है, उस हाथ पर चोटें कर रहा है, उसे लहूलुहान कर रहा है। मगर वह यात्री भी जिद्दी था। उसने तो किसी तरह खींच कर तोते को बाहर निकाल लिया और मुक्त कर दिया।
निश्चिंत हो कर यात्री सो गया। सुबह जब उठा, तो चकित हुआ। तोता अपने पिंजरे में था! पिंजरे का द्वार अब भी खुला पड़ा था और तोता फिर चिल्ला रहा थाः स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!
ऐसी हमारी उधार दशा है। महत्वाकांक्षा--और परमात्मा को पाने की! यह तोता है, जो सींखचे को पकड़े हुए है और स्वतंत्रता चिल्ला रहा है। सींखचे छोड़ दो। और मजा यह है कि तोता तो सींखचे छोड़ दे तो भी जरूरी नहीं, क्योंकि हो सकता है पिंजरे का द्वार बंद हो; लेकिन तुम तो अपने ही द्वारा दरवाजा बंद किए बैठे हो! खोलो, तो अभी मुक्त हो जाओ। किसी और ने तुम्हारे दरवाजे को बंद नहीं किया है, तुमने ही अपनी सुरक्षा के लिए दरवाजा बंद कर लिया है। और अब चिल्ला रहे हो--स्वतंत्रता!
मगर सभ्य आदमी ऐसे ही उलझन में है--दूसरों को ही धोखा नहीं देता, खुद
भी धोखा खाता है। सभ्यता निपट पाखंड है। संस्कृति सत्य है।
लेकिन ध्यान रहे, संस्कृति बंटी होती नहीं--न पूरब की, न पश्चिम की। जो भीतर गया, वहां कहां पूरब, कहां पश्चिम! वहां कहां भारत, कहां पाकिस्तान! वहां कहां हिंदू, कहां मुसलमान! जो भीतर गया, वहां तो सब विशेषण गिर जाएंगे; वहां तो रह जाती है शुद्ध चेतना। और उस चेतना को ही पा लेना, सब कुछ पा लेना है--सच्चिदानंद को पा लेना है। वह जो ऋषि की पुकार है, वहां पूरी हो जाती है--असतो मा सदगमय! तमसो मा ज्योतिर्गमय! मृत्योर्मा अमृतंगमय! हे

प्रभु, मुझे असत से सत की ओर ले चल, अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर! ध्यान में एक साथ ये तीनों ही रहस्य तुम पर बरस आते हैं; अनायास यह प्रसाद उपलब्ध हो जाता है।
संस्कृति तुम्हें सत्य बनाती है। संस्कृति तुम्हें आलोकित करती है।
और संस्कृति तुम्हें अमृत बनाती है। क्योंकि संस्कृति तुम्हें समय के पार ले जाती है--जहां कोई जन्म नहीं, जहां कोई मृत्यु नहीं। जब तक अमृत न पा लिया जाए, तब तक जानना जीवन व्यर्थ है।

दूसरा प्रश्नः ओशो,
चुप साधन, चुप साध्या, चुप मा चुप्प समाय।
चुप समझारी समझ है, समझे चुप हो जाए।।
भूरिबाई के इस कथन पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

वेदांत भारती! भूरिबाई से मेरे निकट के संबंध रहे हैं। मेरे अनुभव में हजारों पुरुष और हजारों स्त्रियां आए, लेकिन भूरिबाई अनूठी स्त्री थी। अभी कुछ समय पहले ही भूरिबाई का महापरिनिर्वाण हुआ, वह परम मोक्ष को उपलब्ध हुई। उसकी गणना मीरा, राबिया, सहजो, दया--उन थोड़ी सी इनी-गिनी स्त्रियों में करने योग्य है। मगर शायद उसका नाम भी कभी न लिया जाएगा, क्योंकि बे-पढ़ी-लिखी थी; ग्रामीण थी; राजस्थान के देहाती वर्ग का हिस्सा थी। लेकिन अनूठी उसकी प्रतिभा थी। शास्त्र जाने नहीं और सत्य जान लिया! मेरा पहला शिविर हुआ, उसमें भूरिबाई सम्मिलित हुई थी। फिर और शिविरों में भी सम्मिलित हुई। नहीं ध्यान के लिए, क्योंकि ध्यान उसे उपलब्ध था--बस, मेरे पास होने का उसे आनंद आता था। एक प्रश्न उसने पूछा नहीं, एक उत्तर मैंने उसे दिया नहीं। न पूछने को उसके पास कुछ था, न उत्तर देने की कोई जरूरत थीं। मगर आती थी, तो अपने साथ एक हवा लाती थी।
पहले ही शिविर से उससे मेरा आंतरिक नाता हो गया। बात बन गई! कही नहीं गई, सुनी नहीं गई--बात बन गई! पहले प्रवचन में सम्मिलित हुई। उस शिविर की ही घटनाएं और बातों का संकलन "साधना-पथ" नाम की किताब है, जिसमें भूरिबाई सम्मिलित हुई थी।
पहला शिविर था, पचास व्यक्ति ही सम्मिलित हुए थे। दूर राजस्थान के एक एकांत निर्जन में, मुछाला महावीर में। भूरिबाई के पास हाईकोर्ट के एक एडवोकेट, कालिदास भाटिया, उसकी सेवा में रहते थे। सब छोड़ दिया था--वकालत, अदालत। भूरिबाई के कपड़े धोते, उसके पैर दबाते। भूरिबाई वृद्ध थी, सत्तर साल की होगी। भूरिबाई आई थी। कालिदास भाटिया आए थे, और दस-पंद्रह भूरिबाई के भक्त आए थे। कुछ थोड़े से लोग उसे पहचानते थे। उसने मेरी बात सुनी। फिर जब ध्यान के लिए बैठने का मौका आया, तो वह अपने कमरे में चली गई। कालिदास भाटिया हैरान हुए कि ध्यान के लिए ही तो हम यहां आए हैं। तो वे गए भागे, भूरिबाई को कहा कि बात तो इतने गौर से सुनी, अब जब करने का समय आया, तो आप उठ क्यों आई? तो भूरिबाई ने कहाः तू जा, तू जा! मैं समझ गई बात।
कालिदास बहुत हैरान हुए कि अगर बात समझ गई, तो ध्यान क्यों नहीं करती! मुझसे पूछा आकर कि मामला क्या है, माजरा क्या है? भूरिबाई कहती है, बात समझ गई, फिर ध्यान में क्यों नहीं करती? और मैंने उससे पूछा तो कहने लगीः तू जा, बाप जी से ही पूछ ले!
भूरिबाई सत्तर साल की थी, मुझसे "बाप जी" कहती थी... कि तू बापजी से ही पूछ ले। तो मैं आपके पास आया हूं, कालिदास बोला। वह कुछ बताती भी नहीं; मुस्कुराती है! और जब मैं आने लगा तो कहने लगीः तू कुछ समझा नहीं रे! मैं समझ गई।
तो मैंने कहाः वह ठीक कहती है, क्योंकि ध्यान मैंने समझाया--अक्रिया है। और तूने जा कर उससे कहा कि भूरिबाई, ध्यान करने चलो! तो वह हंसेगी ही, क्योंकि ध्यान करना क्या! जब अक्रिया है, तो करना कैसा! और मैंने समझाया कि ध्यान है चुप हो जाना, सो उसने सोचा होगा भीड़-भाड़ में चुप होने की बजाय अपने कमरे में चुप होना ज्यादा आसान है। इसलिए ठीक समझ गई वह। और सच यह है कि उसे ध्यान करने की जरूरत नहीं है। चुप का उसे पता है, हालांकि वह उसको

ध्यान नहीं कहती, क्योंकि ध्यान शास्त्रीय शब्द हो गया। वह सीधी-सादी गांव की स्त्री है।
जब वह वहां से लौट कर गई शिविर के बाद, तो उसने यह सूत्र अपनी झोपड़ी पर किसी से कहा था कि लिख दो!
तुम्हें कहां से इस सूत्र का पता चला, वेदांत भारती?
चुप साधन, चुप साध्या, चुप मा चुप्प समाय।
चुप समझारी समझ है, समझे चुप हो जाय।।
चुप ही साधन है, चुप ही साध्य है। और चुप में चुप ही समा जाता है। चुप समझारी समझ है। अगर समझते हो, समझना चाहते हो तो बस एक ही बात समझने योग्य है--चुप। समझे चुप हो जाए। और समझे कि चुप हुए। कुछ और करना नहीं है। चुप समझारी समझ है।
उसके शिष्यों ने मुझसे कहा कि हमारी तो सुनती नहीं, आप बाई को कह दो, आपकी मानेगी, आपका कभी इनकार न करेगी। आप जो कहोगे, करेगी। आप इससे कहो कि अपने जीवन का अनुभव लिखवा दे। लिख तो सकती नहीं, क्योंकि बे-पढ़ी-लिखी है। मगर जो भी इसने जाना हो, लिखवा दे। अब ब.ूढी हो गई, वृद्ध हो गई, अब जाने का समय आता है। लिखवा दे। पीछे आएंगे लोग, तो उनके काम पड़ेगा।
मैंने कहा कि बाई लिखवा क्यों नहीं देती? तो उसने कहाः बाप जी, आप कहते हैं, तो ठीक है। अगले शिविर में जब आऊंगी, तो आप ही उदघाटन कर देना। लिखवा लाऊंगी।
अगले शिविर में उसके शिष्य बड़ी उत्सुकता से, बड़ी प्रतीक्षा करते रहे।
उसने एक पेटी में एक किताब बंद कर के रखवा दी, ताला डलवा दिया, चाबी ले आई।
पेटी को उसके शिष्य सिर पर उठा कर लाए और मुझसे कहा कि आप खोल दें। मैंने खोल दिया। कितबिया निकाली। जरा सी किताब! होंगे दस-पंद्रह पन्ने और छोटी सी किताब, होगी तीन इंच लंबी, दो इंच चौड़ी। और काले ही पन्ने, सफेद भी नहीं। सब काले! लिखा कुछ भी नहीं।
मैंने कहाः भूरिबाई, खूब लिखा तूने! और लोग लिखते हैं, तो थोड़ा-बहुत पन्ने को काला करते हैं, तूने ऐसा लिखा कि सफेद बचने ही नहीं दिया। लिखती गई, लिखती गई, लिखती गई!
उसने कहाः अब आप ही समझ सकते हो, ये तो समझते ही नहीं। इनको मैं कहती हूं कि देखो। और लोग लिखते हैं, थोड़ा-बहुत लिखते हैं। वे पढ़े-लिखे हैं, थोड़ा ही बहुत लिख सकते हैं। मैं तो गैर-पढ़ी-लिखी हूं। सो मैंने लिख मारी, पूरी ही बात लिख दी! छोड़ी ही नहीं जगह। और किसी और से क्या लिखवाना, सो मैं ही लिखती रही; गूदती रही, गूदती रही, गूदती रही--बिल्कुल किताब को काला कर दिया! अब आप उदघाटन कर दो!
मैंने उदघाटन भी कर दिया। उसके शिष्य तो बड़े हैरान हुए। मैंने कहा कि यही शास्त्र है। यह शास्त्रों का शास्त्र है!
सूफियों के पास एक किताब है, वह कोरी किताब है। उसे वे "किताबों की किताब" कहते हैं। मगर उसके पन्ने सफेद हैं। भूरिबाई की किताब उससे भी आगे गई। इसके पन्ने काले हैं। सूफियों की वह किताब बड़ी प्रसिद्ध है। परंपरा से गुरु उसको शिष्य को देता रहा है और सूफी उस किताब को खोल कर पढ़ते भी हैं। तुम कहोगे, क्या खाक पढ़ते होंगे? कोरे पन्ने भी पढ़े जा सकते हैं। कोरे पन्ने को देखते रहो, देखते रहो, देखते रहो, देखते रहो, तो धीरे-धीरे कोरे हो जाओगे।
बोधिधर्म बुद्ध के परम शिष्यों में से एक--समकालिक नहीं, हजार साल बाद हुआ, मगर परम शिष्यों में से एक--नौ वर्ष तक दीवाल की तरफ देखता हुआ बैठा रहा। दीवाल भी थक गई होगी, मगर बोधिधर्म नहीं थका। देखता ही रहा, देखता ही रहा, देखता ही रहा। कोरी दीवाल! मन भी घबड़ा गया होगा। मन भी भाग खड़ा हुआ होगा कि तू बैठा रह, हम चले! जब मन चला गया, तभी बोधिधर्म दीवाल से हटा और बहुत हंसा। कहते हैं, सात दिन तक बोधिधर्म हंसता ही रहा। लोगों ने पूछाः हुआ क्या? उसने कहा कि मैं यह देखता था कि कब तक यह मन टिकता है।
अब सफेद दीवाल हो, तो मन कब तक टिके! मन को करने को क्या बचा! न कुछ पढ़ने को है, न कुछ सोचने को है, न विचारने को है। कोरी दीवाल देखते रहे, देखते रहे। नौ साल! अदभुत आदमी था बोधिधर्म! और ऐसे कोरी दीवाल को देखते-

देखते परम बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ। यह पढ़ा शास्त्र! यह है वेदों का वेद! यह उपनिषदों का सार!
उपनिषद कहते हैंः अज्ञानी तो अंधकार में गिरता ही है, तथाकथित ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाता है। यह पंडितों के संबंध में कहा हुआ है, महापंडितों के संबंध में। ये जो तोतों की तरह पंडित हैं--पोपटलाल--जो रटे जा रहे हैं, इनकी रटन कैसे बंद हो!
बोधिधर्म हंसा सात दिन तक। उसके संगी-साथियों ने पूछा कि क्यों हंसते हो? उसने कहा, "मैं इसलिए हंसता हूं कि मैं देखता था कि कौन जीतता है, मैं जीतता हूं कि मन जीतता है! मैंने भी कहा कि जब तक तुझे उधेड़बुन करना है करता रह, मैं तो देखता हूं दीवाल, तो दीवाल ही देखता रहूंगा।" ऊब गया, थक गया मन, घबड़ा गया होगा। घबड़ा ही जाएगा। भाग खड़ा हुआ मन।
बोधिधर्म ने कहाः कहां जाता है? अरे लौट आ! फिर नहीं लौटा।
ध्यान की यही तो प्रक्रिया हैः बैठ रहे। आंख बंद कर ली। बोधिधर्म ने सफेद दीवाल के सामने बैठ कर आंख बंद की। सफेद दीवाल को देखना आंख बंद करने जैसा ही है। मगर भूरिबाई की किताब दोनों के पार जाती है--सूफियों की किताब के भी, बोधिधर्म की दीवाल के भी। जब तुम आंख बंद करोगे, तो अंधेरा ही दिखाई पड़ेगा, वह काला होगा।
आंख बंद की और चुप हुए तो पहले तो अंधेरा, अंधेरा ही अंधेरा! घबड़ाना मत। देखे ही चले जाना, देखे ही चले जाना, देखे ही चले जाना। प्रतीक्षा करना। धैर्य रखना। ऊबना मत। तुम मत ऊबना, मन ऊब जाए। और मन जिस दिन ऊब गया, टूट गया। तुमसे नाता टूट गया। और तत्क्षण प्रकाश हो जाता है। सब अंधकार तिरोहित हो जाता है।
मन गया कि जो आवरण पड़ा था प्रकाश पर, वह हट गया। जैसे किसी ने चट्टान
रख कर झरने को दबा दिया था; चट्टान हट गई, झरना फूट पड़ा। जैसे किसी ने दीये को बर्तन से ढांक दिया था; बर्तन उठ गया, रोशनी जगमगा उठी। दीवाली हो गई। भूरिबाई कुछ कहती नहीं थी। कोई उससे पूछने जाता था--क्या करें? तो वह ओंठों पर अंगुली रख कर इशारा कर देती थी--चुप हो रहो, बस और कुछ करना नहीं। यही उसने इस सूत्र में कह दिया है--
चुप साधन चुप साध्या, चुप मा चुप्प समाय।
चुप समझारी समझ है, समझे चुप हो जाय।।
अगाध उसका मेरे प्रति प्रेम था--ऐसा कि मुझे भी मुश्किल में डाल देता था। भोजन करने मैं बैठता, तो भोजन करना मुश्किल, क्योंकि वह मेरे बगल में बैठती। और मेरी थाली की चीजें सरकने लगतीं, उठाने लगती वह। जो चीज भी मैं जरा-सी तोड़ कर चख लेता, वही गई, नदारद! घंटों लग जाते भोजन करने में, क्योंकि फिर लाओ। एक कौर तोड़ पाता रोटी से कि रोटी गई, वह प्रसाद हो गई! वह खुद लेती उसमें से प्रसाद और फिर उसके भक्त बैठे रहते कतार में, सो वह बंट जाती रोटी। मैंने जरा सा टुकड़ा सब्जी का लिया कि वह सब्जी की प्लेट गई! दो घंटे, तीन घंटे लग जाते।
एक बार आमों का मौसम था और मैं शिविर लिया, भूरिबाई आ गई। वह दो टोकरियां भर कर आम ले आई। मैंने कहाः इतने आम मैं क्या करूंगा? एक आम, दो आम बहुत होते हैं।
उसने कहाः आपको पता नहीं बाप जी, प्रसाद बनेगा!
मैं घबड़ाया कि यह प्रसाद जरा मुश्किल का होने वाला है। और उसके पच्चीस तीस भक्त भी मौजूद थे, वे सब आ गए और प्रसाद बनना शुरू हो गया! वह एक आम को मेरे मुंह में लगाए, इधर मैं एक घूंट भी ले नहीं पाया आम से कि आम प्रसाद हो गया, वह गया! और इतनी जल्दी पड़ी प्रसाद की, क्योंकि वे पच्चीस लोगों तक पहुंचाने हैं आम, और ज्यादा देर न लग जाए, तो आम में से पिचकारी छूट जाए--मेरे मुंह पर, मेरे कपड़ों पर सब आम ही आम हो गया! मेरे कंठ में तो शायद एक आम भी पूरा नहीं गया होगा। वह दो टोकरियां प्रसाद हो गया! वह खुद चखे और फिर भक्तों में बंटता जाए, बंटता जाए, पहुंचता जाए आम। मैंने उससे कहाः भूरिबाई, आमके मौसम में अब कभी शिविर नहीं लूंगा। यह तो बड़ा उपद्रव है!

मगर उसको फिकर नहीं, तराबोर कर दिया उसने आम के रस से मुझे। उसका प्रेम अदभुत था! अपने ढंग का था, अनूठा था। उसे लौटना नहीं पड़ेगा जगत में।
वह सदा के लिए गई। "चुप मा चुप्प समाय!" वह समा गई। सरिता सागर में समा गई। कुछ उसने किया नहीं, बस चुप रही। और उसके घर जो भी चला जाता, उनकी सेवा करती। किसी की भी सेवा करती। और चुपचाप, मौन।
अदभुत महिला थी। यूं कुछ प्रसिद्ध महिलाएं हैं भारत में, जैसे आनंदमयी, मगर भूरिबाई का कोई मुकाबला नहीं। प्रसिद्धि एक बात है, अनुभव दूसरी बात है।
यह सूत्र प्यारा है। इसे ख्याल रखना। इस सूत्र को तुम समझ लो, तो समझने को कुछ और शेष नहीं रह जाता है।
योग प्रीतम का गीत, वेदांत भारती, तुम्हारे लिए उपयोगी होगा--

भीतर का राग जगाओ तो कुछ बात बने
ध्यान का चिराग जलाओ तो कुछ बात बने
जल जाए अहंकार दमक उठो कुंदन से
ऐसी इक आग जलाओ तो कुछ बात बने
बाहर की होली के रंग कहां टिकते हैं
शाश्वत के फाग रचाओ तो कुछ बात बने बोते बबूल अगर बींधेंगे कांटे ही खुशबू का बाग लगाओ तो कुछ बात बने टूटें सब जंजीरें अंतर-पट खुल जाएं भीतर वह राग जगाओ तो कुछ बात बने गैरों की यारी में खोते हो पतियारा
प्रीतम से लाग लगाओ तो कुछ बात बने
भीतर का राग जगाओ तो कुछ बात बने
ध्यान का चिराग जलाओ तो कुछ बात बने
जल जाए अहंकार दमक उठो कुंदन से
ऐसी इक आग जलाओ तो कुछ बात बने।

तीसरा प्रश्नः ओशो, मैं आपको कब समझूंगा? समझने में बाधाएं क्या हैं? उपाय क्या है?

चंद्रकांत! समझने की बात ही गलत है। यहां समझने को क्या? ध्यान समझने
की बात नहीं है। और मेरा तो शब्द-शब्द ध्यान में डुबोया हुआ है, भिगोया हुआ है। पीओ!
ये समझने इत्यादि की बातें बचकानी हैं। समझ तो मन की होती है, पीना हृदय का होता है। पीओगे तो भर पाओगे। समझ-समझ कर तो कचरा ही जुड़ता जाएगा। समझने को यहां कुछ भी नहीं, डूबने को है। यह शराब है--खालिस शराब! अंगूर की नहीं, आत्मा की। यह मंदिर नहीं, मयकदा है।
यहां जो मेरे पास आ बैठे हैं, इनको तुम साधारण धार्मिक लोग मत समझो।
जिनको तुम मंदिर और मस्जिद में पाते हो, ये वे नहीं हैं। ये रिंद हैं। ये पियक्कड़ हैं। ये पीने को आ जुटे हैं। यहां कुछ और रंग है, कुछ और ढंग है।
तुम समझने की बात उठाओगे, तो चूक जाओगे। समझना होता है तर्क से; पीना होता है प्रेम से।
समझ कर कौन कब समझ पाया है? हां, जिसने प्रेम किया, वह समझ भी गया। समझ अपने-आप चली आती है प्रेम के पीछे, जैसे तुम्हारे पीछे छाया चली आती है। प्रेम ही समझ सकता है। और जिन लोगों ने कहा है, "प्रेम अंधा है", वे पागल हैं। वासना अंधी होती है, मोह अंधा होता है। प्रेम तो आंख है--अंतर्तम की। प्रेम को अंधा मत कहो।
वासना निश्चित अंधी होती है; वह देह की है। राग भी अंधा होता है; वह मन
का है। और प्रेम तो आत्मा का होता है। वहां कहां अंधापन! वहां कहां अंधियारा! वहां तो बस आंख ही आंख है। वहां तो दृष्टि ही दृष्टि है। इसलिए जो उसे पा लेता है, उसे हम द्रष्टा कहते हैं, आंख वाला कहते हैं।

तुम पूछते होः "मैं आपको कब समझूंगा?"
अरे, अभी समझो! कब? कल का क्या पता है? मैं रहूं, तुम न रहो। तुम रहो, मैं न रहूं। मैं भी रहूं तुम भी रहो, लेकिन साथ छूट जाए। किस मोड़ पर हम बिछुड़ जाएं, कहां राह अलग-अलग हो जाएं, किस पल, कौन जाने! भविष्य तो अज्ञात है। "कब" की मत पूछो, "अब" की पूछो।
इस देश के समस्त महान सूत्र-ग्रंथ अब से शुरू होते हैं। ब्रह्मसूत्र शुरू होता हैः अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। अब ब्रह्म की जिज्ञासा। नारद का भक्ति-सूत्र शुरू होता हैः अथातो भक्ति जिज्ञासा। अब भक्ति की जिज्ञासा। "अब"--कब नहीं। "अथातो"! उस एक शब्द में बड़ा सार है। अब!
यूं ही बहुत समय बीत गया कब-कब करते, कितना गंवाया है! जन्म-जन्म से तो पूछ रहे हो--कब। छोड़ो कब। अब भाषा सीखो अब की।
जीसस ने अपने शिष्यों से कहा है, देखते हो ये लिली के फूल, ये जो राह के किनारे खिले हैं! इनका सौंदर्य देखते हो! सोलोमन भी, सम्राट सोलोमन भी अपनी हीरे-जवाहरातों से जड़ी हुई वेशभूषा में इतना सुंदर न था, जितने ये भोले-भाले नंगे फूल, लिली के फूल, ये गरीब फूल!
एक शिष्य ने पूछाः प्रभु इनका राज क्या है?
तो जीसस ने कहाः ये अभी जीते हैं। इनके लिए न बीता कल है, न आने वाला कल। आज सब कुछ है। यही इनके सौंदर्य का राज है। तुम भी यूं जीओ, जैसे लिली के फूल--और सब रहस्य खुल जाएंगे, सब रहस्य पट उठ जाएंगे।
घूंघट उठ जाए अभी, परमात्मा के चेहरे से, मगर कब की पूछी, तो चूके। मन हमेशा कब की पूछता है। वह कहता है--कल। अभी समझें, और समझें, पीएंगे कल। पहले समझ तो लें, फिर पीएंगे।
अरे पीओ तो समझोगे, समझ के कोई कभी पीएगा? समझेगा कैसे बिना पीए? चखी नहीं तुमने शराब कभी, कहते हो--समझेंगे? कैसे समझोगे? ढालो सुराही से। हो प्याली तो ठीक, हाथों की अंजुलि बना लो। प्याली के लिए भी मत रुको, कि पात्र होगा तब पीएंगे, पात्रता होगी तब पीएंगे। प्याली के लिए भी मत रुको, अंजुलि बना लो हाथों की। पीओ! शराब को समझने का एक ही ढंग है--पीना। और परमात्मा को समझने का भी एक ही ढंग है--पीना।
चंद्रकांत, तुम पूछ रहे होः समझने में बाधाएं क्या हैं?
यह समझने की इच्छा ही बाधा है। और तो कोई बाधा नहीं देखता मैं। और कोई बाधा कभी रही नहीं। यह बाधा ऐसी है कि इसे तुम कभी हटा न सकोगे।
तुम पूछते होः उपाय क्या है?
मैं बाधा को ही समझा लूं, तो बस उपाय मिल गया। बाधा यही है--समझने की आकांक्षा। यह बाधा ऐसी है, जैसे कोई आदमी कहे, पानी में मैं तब उतरूंगा, जब तैरना सीख लूंगा! बिना तैरे पानी में कैसे उतरूं? बात तर्कयुक्त है। तैरना सीखोगे कहां? अपने बिस्तर पर? गद्दी पर हाथ-पैर मारोगे? तैरना सीखोगे कहां? पानी में उतरना ही होगा। पानी में उतरोगे, तो ही तैरना सीखोगे।
यह खतरा लेना ही होगा। बिना तैरे ही पानी में उतरना सीखना होगा। चलो, किनारे पर ही सही, मगर थोड़े-थोड़े उतरो। उथले में सही, मत जाओ गहरे में अभी, मगर पानी में उतरना तो होगा ही। एक ही घूंट पीओ, मत पी जाओ पूरी सुराही। कोई सागर पीने को नहीं कह रहा हूं, एक ही बूंद पीओ। चलो, इतना काफी है। मगर जिसने एक बूंद पी ली, उसे पूरे सागर का राज समझ में आ जाएगा। जिसने उथले में भी हाथ-पैर तड़फड़ा लिए, उसे तैरने का राज समझ में आ जाएगा।
तैरना कोई ऐसी कला नहीं है, जो सीखनी होती है। ध्यान रखना, तैरने के संबंध में यह बात। इसीलिए तैरना एक दफा जान लिया, तो कोई भूल नहीं सकता; कोई भूल नहीं सकता। पचास साल बाद, साठ साल बाद भी तुम दुबारा पानी में उतरो, तुम पाओगे, तैरना वैसा का वैसा है; जरा भी नहीं भूले। भूल ही नहीं सकते। क्या बात है?
और सब बातें तो साठ साल में भूल जाएंगी। भूगोल पढ़ा था स्कूल में, इतिहास पढ़ा था स्कूल में, न मालूम किन-किन गधों के नाम याद किए थे? आज कुछ याद है? तारीखें क्या-क्या याद कर रखी थीं--नादिरशाह कब हुआ, और तैमूरलंग कब हुआ, और चंगेजखान कब हुआ! क्या-क्या पागलपन सीखा था! एक-एक तारीख याद

थी। आज कोई भी तारीख याद नहीं। और कितनी मेहनत से सीखी थी, कैसे रटा था।
मगर बात कुछ बनी नहीं, क्योंकि बात स्वाभाविक नहीं थी।
तैरना कोई नहीं भूलता। उसका कारण है। तैरना कुछ स्वाभाविक घटना है। बच्चा मां के पेट में पानी में ही तैरता है; नौ महीने पानी में ही तैरता है। जापान के एक मनोवैज्ञानिक ने छह महीने के बच्चों को तैरना सिखाने में सफलता पा ली। और अब वह तीन महीने के बच्चों को तैरना सिखाने में लगा हुआ है। और वह कहता है कि एक दिन का बच्चा भी तैर सकता है। अभी एक ही दिन की उम्र है उसकी, अभी पैदा ही हुआ है, और तैरना सीख सकता है। वह सिखा लेगा। जब छह महीने का बच्चा सीख लेता है, तीन महीने बच्चा सीखने लगा, तो क्या तकलीफ रही? शायद एक दिन का बच्चा और भी जल्दी सीख लेगा, क्योंकि अभी भूला ही नहीं होगा। वह अभी मां के पेट से आया ही है; अभी पानी में तैरता ही रहा है। फ्रांस का एक दूसरा मनोवैज्ञानिक मां के पेट से बच्चा पैदा होता है
तो उसको एकदम से टब में रखता है--गरम पानी में, कुनकुने। और चकित हुआ है यह जान कर कि बच्चा इतना प्रफुल्लित होता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं।
तुम यह जान कर हैरान होओगे कि इस मनोवैज्ञानिक ने--उस मनोवैज्ञानिक
का सहयोगी मेरा संन्यासी है, उस मनोवैज्ञानिक की बेटी मेरी संन्यासिनी है--पहली बार मनुष्य जाति के इतिहास में बच्चे पैदा किए हैं, जो रोते नहीं पैदा होते से, हंसते हैं। हजारों बच्चे पैदा करवाए हैं उसने। वह दाई का काम करता है। उसने बड़ी नई व्यवस्था की है।
पहला काम कि बच्चे को पैदा होते से ही वह यह करता है कि उसे मां के पेट
पर लिटा देता है, उसकी नाल नहीं काटता। साधारणतः पहला काम हम करते हैं कि बच्चे की नाल काटते हैं। वह पहले नाल नहीं काटता, वह पहने बच्चे को मां के पेट पर सुला देता है। क्योंकि वह पेट से ही अभी आया है, इतने जल्दी अभी मत तोड़ो। बाहर से भी मां के पेट पर लिटा देता है और बच्चा रोता नहीं। मां के पेट से उसका ऐसा अंतरंग संबंध है; अभी भीतर से था, अब बाहर से हुआ, मगर अभी मां से जुड़ा है। और नाल एकदम से नहीं काटता। जब तक बच्चा श्वास लेना शुरू नहीं कर देता, तब तक वह नाल नहीं काटता।
हमारी अब तक की आदत और व्यवस्था यह रही है कि तत्क्षण नाल काटो, फिर बच्चे को श्वास लेनी पड़ती है। श्वास उसे इतनी घबड़ाहट में लेनी पड़ती है, क्योंकि नाल से जब तक जुड़ा है, तब तक मां की श्वास से जुड़ा है, उसे अलग से श्वास लेनी की जरूरत भी नहीं है। और उसके पूरे नासापुट और नासापुट से फेफड़ों तक जुड़ी हुई नालियां सब कफ से भरी होती हैं, क्योंकि उसने श्वास तो ली नहीं कभी! तो एकदम से उसकी नाल काट देना, उसे घबड़ा देना है। कुछ क्षण के लिए उसको इतनी बेचैनी में छोड़ देना है। उस बेचैनी में बच्चे रोते हैं, चिल्लाते हैं, चीखते हैं। और हम सोचते हैं वे इसलिए चीख रहे हैं, चिल्ला रहे हैं कि यह श्वास लेने की प्रक्रिया है, नहीं तो वे श्वास कैसे लेंगे? और अगर नहीं चिल्लाता बच्चा, तो डाक्टर उसको उलटा लटकाता है कि किसी तरह चिल्ला दे। फिर भी नहीं चिल्लाता, तो उसे धौल जमाता है कि चिल्ला दे! चिल्लाना चाहिए ही बच्चे को। चिल्लाए-रोए, तो उसका कफ बह जाए, उसके नासापुट साफ हो जाएं, श्वास आ जाए।
मगर यह जबरदस्ती श्वास लिवाना है। यह झूठ शुरू हो गया, शुरू से ही शुरू हो गया! यह प्रारंभ से ही गलती शुरू हो गई। पाखंड शुरू हुआ। श्वास तक भी तुमने स्वाभाविक रूप से न लेने दी! श्वास तक तुमने कृत्रिम करवा दी, जबर्दस्ती करवा दी। घबड़ा दिया बच्चे को।
यह खूब स्वागत किया! यह खूब सौगात दी! यह खूब सम्मान किया। उलटा लटकाया, धौल जमाई, रोना सिखाया; अब जिंदगी भर धौलें पड़ेंगी, उलटा लटकेगा, शीर्षासन करेगा। यह उलट-खोपड़ी हो ही गया! और जिंदगी भर रोएगा--कभी इस बहाने, कभी उस बहाने। इसकी जिंदगी में मुस्कुराहट मुश्किल हो जाएगी। झूठी होगी, थोपेगा। मगर भीतर आंसू भरे होंगे।
इस मनोवैज्ञानिक ने अलग ही प्रक्रिया खोजी। वह मां के पेट पर बच्चे
को लिटा देता है। बच्चा धीरे-धीरे श्वास लेना शुरू करता है। जब बच्चा धीरे-धीरे श्वास लेने लगता है और मां के पेट की गर्मी उसे अहसास होती रहती

है और मां को भी अच्छा लगता है, क्योंकि पेट एकदम खाली हो गया, बच्चा ऊपर लेट जाता है तो पेट फिर भरा मालूम होता है। वह एकदम रिक्त नहीं हो जाती। फिर सब चीजें आहिस्ता। क्या जल्दी पड़ी है? नहीं तो जिंदगी भर फिर जल्दबाजी रहेगी, भाग-दौड़ रहेगी। जब बच्चा श्वास लेने लगता है, तब वह नाल काटता है। फिर बच्चे को टब में लिटा देता है ताकि उसे अभी भी गर्भ का जो रस था वह भूल न जाए; गर्भ की जो भाषा थी वह भूल न जाए। टब में वह ठीक उतने ही रासायनिक द्रव्य मिलाता है, जितने मां के पेट में होते हैं। वे ठीक उतने ही होते हैं, जितने सागर में होते हैं। सागर का पानी और मां के पेट का पानी बिल्कुल एक जैसा होता है।
इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने खोजा है कि मनुष्य का पहला जन्म सागर में
ही हुआ होगा, मछली की तरह ही हुआ होगा। इसलिए हिंदुओं की यह धारणा कि परमात्मा का एक अवतार मछली का अवतार था, अर्थपूर्ण है। शायद वह पहला अवतार--मत्स्य अवतार, मछली की तरह। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे नरसिंह अवतार-- आधा मनुष्य, आधा पशु। और शायद अभी भी आदमी आधा नर, आधा पशु ही है। अभी भी नरसिंह अवतार ही चल रहा है! अभी भी पूरा मनुष्य नहीं हो पाया। पूरा मनुष्य तो कोई बुद्ध होता है। सभी पूरे मनुष्य नहीं हो पाते।
तो उसे लिटा देता है मनोवैज्ञानिक अभी टब में। और चकित हुआ यह जान कर
कि अभी-अभी पैदा हुआ बच्चा टब में लेट कर बड़ा प्रफुल्लित होता है, मुस्कुराता है। एकदम से रोशनी नहीं करता कमरे में। यह सारी प्रक्रिया जन्म की बड़ी धीमी रोशनी में होती है, मोमबत्ती की रोशनी में--कि बच्चे की आंखों को चोट न पहुंचे।
हमारे अस्पतालों में बड़े तेज बल्ब लगे होते हैं, ट्यूबलाइट लगे होते हैं। जरा सोचो तो, नौ महीने जो मां के पेट में अंधकार में रहा है, उसे एकदम ट्यूबलाइट... ! चश्मे लगवा दोगे। आधी दुनिया चश्मे लगाई हुई है। छोटे-छोटे बच्चों को चश्मे लगाने पड़ रहे हैं। यह डाक्टरों की कृपा है! अंधे करवा दोगे न मालूम कितनों को! आंखों के तंतु अभी बच्चे के बहुत कोमल हैं। पहली बार आंख खोली है। जरा आहिस्ता से पहचान होने दो। क्रमशः पाठ सिखाओ। मोमबत्ती का दूर धीमा सा प्रकाश। फिर आहिस्ता-आहिस्ता प्रकाश को बढ़ाता है। धीरे-धीरे, ताकि बच्चे की आंखें राजी होती जाएं।
यह बच्चे को स्वाभाविक जन्म देने की प्रक्रिया है। इस बच्चे की जिंदगी कई अर्थों में और ढंग की होगी। यह कई बीमारियों से बच जाएगा। इसकी आंखें शायद सदा स्वस्थ रहेंगी और इसके जीवन में एक मुस्कुराहट होगी, जो स्वाभाविक होगी। और इस बच्चे को तैरना सिखाना बहुत आसान होगा, एकदम आसान होगा।
तैरना भूली भाषा को याद करना है। हम जानते थे मां के पेट में, फिर भूल
गए हैं। इसलिए जल्दी ही आ जाता है तैरना, कोई ज्यादा देर नहीं लगती। और एक बार आ गया, तो फिर कभी नहीं भूलता। फिर हम उसके प्रति सचेतन हो गए। लेकिन पानी में तो उतरना ही होगा।
तर्कशास्त्र कहेगा पहले तैरना सीख लो, फिर पानी में उतरना। शायद कार चलाना भी सिखाया जा सकता है बिना सड़क पर लाए, लेकिन तैरना तो नहीं सिखाया जा सकता।
अमरीका के एक विश्वविद्यालय में उन्होंने कार चलाना सिखाने की व्यवस्था की है बिना सड़क पर लाए, क्योंकि सड़क पर लाने में खतरा तो है ही। कार सीखने वाला आदमी कुछ भी खतरा कर सकता है--किसी की जान ले ले, किसी से टकरा दे; वह न टकराए, तो दूसरे कितने ही बेहोश चले जा रहे हैं भागे, वे उससे टकरा दें। इसलिए सिक्खड़ को "एल" अक्षर अपनी कार पर लटकाना पड़ता है-- लर्निंग। वह उसके लिए नहीं है, वह उनके लिए है जो चारों तरफ से भागे चले जा रहे हैं कि जरा सावधान रहना! इस बेचारे को बचाना! यह अभी नया-नया है; अभी सीख रहा है, सिक्खड़ है।
तो उन्होंने एक व्यवस्था की है। एक बड़े हाल में दीवालों पर सड़कें होती हैं। मतलब जैसे फिल्म चलती है। दीवालों पर फिल्म चलती है। एक फिल्म इस दीवाल पर चल रही है, एक फिल्म इस दीवाल पर चल रही है। एक फिल्म में कारें भागी जा रही है इस तरफ, दूसरी फिल्म में कारें भागी जा रही हैं उस तरफ। लोग

चल रहे हैं, लोग आ रहे हैं, लोग जा रहे हैं। सामने की दीवाल पर रास्ते पर चौरस्ते पर पुलिस वाला खड़ा है। वह भी फिल्म। आदमी गुजर रहे हैं और यह आदमी अपनी कार में बैठा हुआ है, और कार इसकी जमीन से ऊंचाई पर खड़ी हुई है। पहिए चल रहे हैं। ड्राइविंग कर रहा है। सब काम कर रहा है, मगर कहीं जा-आ नहीं रहा है। है कमरे में ही। कार भी खड़ी हुई है। मगर ये चारों तरफ से लोग गुजर रहे हैं और इससे दृश्य पूरा पैदा हो रहा है। कोई बिल्कुल सामने आ जाता है, तो उसको कार बचानी पड़ती है। वह फिल्म में ही चल रहा है सब। थ्री डायमेंशनल फिल्में हैं वे, तो बिल्कुल लगता है कि कोई आदमी सामने आ कर गुजर गया। यह आया कि टक्कर हुई जाती है! कोई न आ रहा है, न कोई जा रहा है। ड्राइविंग सिखाने का यह उपाय खोजा गया है। यह अच्छा उपाय है।
मगर मैं सोचता हूं कि यह उपाय तैरने के बाबत काम में नहीं आ सकता। कितनी ही तुम लहरें पानी की उठाओ दीवालों पर और यह आदमी कितना ही हाथ मारे कि अब डूबा तब डूबा, क्या तुम उसको धोखा दे पाओगे? थ्री-डाइमेंशनल ही फिल्म हो, कि बिल्कुल डुबकी ही मारने लगे, तो भी इसको पता रहेगा कि अरे, क्या डुबकी! लेटा हूं अपने तकिया-गद्दे पर। हालांकि पानी बहा जा रहा है चारों तरफ से; सागर ही सागर है, लहरें उठ रही हैं, अब डूबा तब डूबा; मगर इसे पता तो रहेगा कि कहां डूबा!
कार में तो सिखाया जा सकता है इस तरह से, क्योंकि कार कृत्रिम है, इसलिए कृत्रिम आयोजन किया जा सकता है। लेकिन तैरना स्वाभाविक है। इसलिए स्वाभाविक प्रक्रिया से ही सीखा जा सकता है।
और मैं तुम्हें जो सिखा रहा हूं, यह भी तैरने जैसा है--कार चलाने जैसा नहीं। यह भवसागर को पार करना है, यह तैरना है।
तुम पूछते होः "मैं आपको कब समझूंगा?"
समझने चलोगे तो कभी नहीं। पीने की तैयारी हो, तो अभी।
"समझने में बाधाएं क्या हैं?" बाधाएं नहीं हैं--बाधा है। एक--वह समझने
की आकांक्षा, बिना पीए। पीने के लिए जरा हिम्मत चाहिए, साहस चाहिए। और पहली दफा जब शराब पीओगे तो कड़वी भी लगती है। सत्य पीओगे, वह भी कड़वा लगता है। इसलिए सूफियों ने सत्य को और शराब से उपमा दी है, ठीक किया है।
तुम उमर खय्याम की रूबाइयां पढ़ कर यह मत समझना कि वह शराब की बातें कर रहा है। वह सत्य की बातें कर रहा है। सत्य भी जब पहली दफा पीओ, तो कड़वा लगता है। फिर आहिस्ता-आहिस्ता स्वाद सीखने में आता है, मगर पीने से ही सीखने में आता है।

सारा आलम झूम रहा इस मस्ती के पैमाने में
तुम भी पीओ शराब प्रेम की आकर इस मैखाने में

रिंदो की महफिल में बैठे हिला रहे हैं सिर हम भी
लुटने में मिल रहा मजा है, क्या रखा है पाने में

पिला रहा जो--दिलवाला है, पीने में क्या कंजूसी
क्या खूबी है? पी कर देखो, क्या रक्खा बतलाने में

यह बुद्धों के अंगूरों से ढली हुई है मय आला अगर तबीयत हो तो डुबकी खाओ इस पैमाने में

क्या केसर कस्तूरी भैया, इसमें हंसी-बहार घुली पीओ जरा सी, पर लग जाएं, गिनती हो परवानों में

ऐसा मिक्सचर प्यारे, तुमने कभी नहीं चक्खा होगा जाम छलकता देख अगर लो, डोल उठो मयखाने में

प्रेम-ध्यान से बनी हुई मय, पिला रहे भगवान हमें पीओ, तरन्नुम बन जाओगे, तुम जीवन के गाने में

योग प्रीतम ने यह कविता मुझे लिख कर भेजी है। भेजनी तुम्हें थी, भेज मुझे दी है! मैं तुम्हें दिए देता हूं। मैं तुम्हें अर्पित किए देता हूं।

आखिरी प्रश्नः ओशो,
हम तुम्हें चाहते हैं ऐसे, मरने वाला कोई जिंदगी चाहता है जैसे।
ये सुरीले शब्द आंखों को गीला कर जाते हैं।
प्रभु, अब तो तेरे चरणों में बिठा दे, तेरी शरण में ही महामृत्यु का स्वाद मिले--यही अभ्यर्थना।

तथास्तु, चितरंजन! ऐसा ही होगा!
यहीं जीओ, यहीं मरो। इस मस्ती में ही जीओ, इस मस्ती में ही मरो। फिर मृत्यु मृत्यु नहीं है; फिर मृत्यु महासमाधि है, महापरिनिर्वाण है।
यही मैं चाहता हूं कि मेरा एक भी संन्यासी मरे नहीं। मरना तो होगा, फिर भी मरे नहीं। जागता हुआ मरे, नाचता हुआ मरे, होशपूर्वक मरे। तो शरीर मिट जाएगा। मिट्टी मिट्टी में गिर जाएगी। थक जाती है, गिर ही जाना चाहिए, मिट्टी को विश्राम चाहिए। फिर उठेगी, किसी की और देह बनेगी। लेकिन तुम्हारे भीतर जो चैतन्य है, वह न तो कभी जन्मा है, न कभी मरता है।
पहले जीने की कला सीख लो--आनंदपूर्ण, रस भीगी। फिर उसी में से मृत्यु
की कला आ जाएगी। क्योंकि मृत्यु जीवन का अंत नहीं है, जीवन का शिखर है। जीवन की आखिरी ऊंचाई है मृत्यु। अंत नहीं है, जीवन की सुगंध है। जिन्होंने जीवन ही नहीं जाना, उनके लिए अंत है। और जिन्होंने जीवन जाना--उनके लिए एक नया प्रारंभ है--महाजीवन का।
चितरंजन, ऐसा ही होगा। ऐसा होना ही चाहिए। तुम्हें ही नहीं, प्रत्येक संन्यासी की यही अभ्यर्थना होनी चाहिए। यही अभ्यर्थना है।
और मेरी पूरी चेष्टा यही है कि तुम्हें पिला दूं; जो मुझे मिला है, वह तुम्हें दे दूं। तुम लेने में कंजूसी न करना। तुम झोली फैलाओ और भर लो। मैं देने में कंजूसी नहीं कर रहा हूं। तुम लेने में मत चूको।
और ध्यान रखना, अक्सर हम लेने में भी कंजूस हो गए हैं। हम देने में कंजूस हो गए हैं। हमने कंजूसी की भाषा सीख ली, हम लेने में भी कंजूस हो गए हैं। हम छांट-छांट कर लेते हैं--यह ले लें, यह छोड़ दें। नहीं, ऐसे नहीं चलेगा। यह परवानों का ढंग नहीं।
पूरा ले लो। पूरा ही लिया जा सकता है, क्योंकि मैं जो कह रहा हूं वह अखंड सत्य है। पनचानबे प्रतिशत से नहीं चलेगा--सौ प्रतिशत।

आज इतना ही।

ज्यूं था त्यूं ठहराया
तीसरा प्रवचन

आचार्यो मृत्युः

पहला प्रश्नः ओशो, संत सफियान, अब्दुल वहीद आमरी और हसन बसरी राबिया
को मिलने गए। उन्होंने कहा, "आप साहिबे-इल्म हैं। कृपा कर हमें कोई सीख दें।" राबिया ने सफियान को एक मोमबत्ती, अब्दुल वहीद आमरी को एक सुई और हसन को अपने सिर का एक बाल दिया और वे बोलीं, "लो, समझो!"
इस पर सूफी लोग अपना मंतव्य प्रकट करते हैं। प्रभुजी! आप इस पर कुछ कहें कि राबिया ने वे चीजें देकर उन तीनों को क्या सीख दी?

दिनेश भारती! राबिया बहुत इने-गिने रहस्यवादियों में एक है; गौरीशंकर
के शिखर की भांति। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट और लाओत्सु, जरथुस्त्र-- उस कोटि में थोड़ी सी ही स्त्रियों को रखा जा सकता है। राबिया उनमें अग्रगण्य है।
और राबिया की सबसे बड़ी खूबी की बात यह है कि उसने अंधेरे की घाटियों में भटकते हुए लोगों से किसी तल पर कोई समझौता नहीं किया। वह अपने शिखर से ही बोली; शिखर की भाषा में ही बोली। इसलिए उसका जीवन बड़ा बेबूझ है। बुद्धि और तर्क से पकड़ में आने वाला नहीं है।
ऐसी ही यह घटना है। कुछ बातें ख्याल में ले लो।
दो तरह के बुद्धपुरुष हुए हैं, बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति--फिर स्त्री हों या पुरुष। एक तो वे, जिन्होंने करुणावश आम आदमी की भाषा में कुछ कहा है। लेकिन तब अनिवार्यता उन्हें सत्य के शिखर से उतर कर नीचे आना पड़ा है। और जितना आम आदमी के करीब आओगे, उतना ही सत्य को न कह सकोगे।
आम आदमी की भाषा में सत्य को बिठाना अर्थात सत्य को काटना, सत्य के ऊपर झूठ की परतें चढ़ानी होंगी। जैसे कड़वी दवा की गोली पर हम शक्कर की पर्त चढ़ा देते हैं। कड़वी दवा शायद, कड़वी गोली शायद गटकी न जा सके। जरा सी शक्कर की पर्त! कंठ के नीचे उतर जाए, फिर तो कुछ स्वाद आता नहीं।
सत्य भी बहुत कड़वा है। बुद्ध ने कहा हैः "झूठ पहले मीठा, फिर कड़वा; सत्य पहले कड़वा, फिर मीठा।" सत्य कड़वा इसलिए है कि हम झूठ के आदी हो गए हैं।
झूठ की मिठास हमें भा गई। झूठ की माया हमें भा गई।
झूठ बड़ा सम्मोहक है--बड़ा सांत्वनादायी। सत्य झकझोर देता है, जैसे तूफान आए, अंधड़ आए। सत्य बहुत बेरहम है।
तो एक तो वे बुद्धपुरुष हुए, जिन्होंने शक्कर की पर्त चढ़ाई--करुणावश।
इस ढंग से बात कही कि तुम्हारे कंठ में उतर जाए। मगर उनके कहने के ढंग के कारण ही तुमने शक्कर-शक्कर तो चुन ली और वह जो कड़वा सत्य था, वह फेंक दिया। तुम भी बड़े होशियार हो! जब तक शक्कर रही, तब तक तुम गोली को मुंह में रखे रहे; कंठ के नीचे नहीं उतरने दिया। और जैसे ही कड़वाहट आई--थूक दिया। चढ़ाई थी शक्कर की पर्त समझदारों ने कि कंठ के नीचे उतर जाए। मगर तुम्हारी नासमझी कुछ उनसे कम नहीं। उनकी समझदारी होगी बड़ी; तुम्हारी नासमझी बड़ी है! उनका ज्ञान होगा अनंत, तुम्हारा अज्ञान अनंत है! तुम कुछ पीछे नहीं! तुम भी बड़े चालबाज हो।
तो तुम शक्कर शक्कर तो पी गए! "मीठा-मीठा गप्प, कड़वा कड़वा थू।" यह तुम्हारा तर्क है। सो उनकी मेहनत व्यर्थ गई। उनकी मेहनत को व्यर्थ जाता देख कुछ बुद्धों ने सत्य को वैसा ही कहा; बिना कोई पर्त चढ़ाए--कि पीना हो तो पी लो। यह रहा। कड़वा है। फिर मत कहना। थूकने का सवाल नहीं उठता। कड़वा है-- यह जान कर ही पी लो।
मैं भी ऐसी ही भाषा बोल रहा हूं, जो कड़वी है, कि पीछे तुम यह न कहो कि मिठास का धोखा दे दिया; कि पीछे कोई यह न कह सके कि हमें बातों में भरमा लिया। मैं सत्य को वैसा ही खालिस, बिना किसी मिठास के... कड़वा है, तो कड़वा; तुम्हें जगा कर कह देना चाहता हूं कि कड़वा है, पीना हो तो कड़वेपन से राजी हो जाओ। आग है। जलाएगी, भस्म कर देगी। तुम्हें सचेत कर के, सावधान कर के दे

रहा हूं। इसलिए जिन्हें लेना है, वही मेरे पास आएंगे। यहां भीड़भाड़ इकट्ठी नहीं हो सकती। यहां कोई प्रसाद नहीं बंट रहा है! यहां क्रांति बंट रही है। राबिया उन्हीं थोड़े से लोगों में से है, जिसने शक्कर की पर्त नहीं चढ़ाई।
एक दृष्टि से तो दिखाई पड़ेगा कि वे करुणावान हैं, जिन्होंने पर्त चढ़ाई। और वे करुणावान थे, इसलिए पर्त चढ़ाई। मगर तुमसे हार गए। मैं तो मानता हूं कि वे ही ज्यादा करुणावान सिद्ध हुए, जिन्होंने पर्त नहीं चढ़ाई। वे सत्य के प्रति भी झूठे न हुए; उन्होंने सत्य में कोई समझौता न किया। हालांकि उनके पास बहुत लोग नहीं आए; नहीं आ सकते।
यह बहुत लोगों के बस की बात नहीं। यह बहुत लोगों का साहस नहीं। छाती चाहिए। थोड़े लोग आए, लेकिन जो आए सो आए। जो डूबे सो डूबे। और जब जान कर ही आए कि कड़वा है सत्य, आग है, अंगारे निगलने हैं--जान कर निगले। थूकने का सवाल न उठा। ये थोड़े से लोग ही क्रांति को उपलब्ध हुए। ये थोड़े से ही लोग अहंकार को जला कर राख कर पाए।
मैं राबिया से राजी हूं। यह कहानी मधुर है; लेकिन मधुर तुम्हारे लिए, क्योंकि तुम्हारे लिए सिर्फ कहानी है। जिनको राबिया ने एक मोमबत्ती, एक सुई और सिर का बाल थमा दिया था, उनके लिए बड़ी कड़वी रही होगी। समझो। तो लो, तुम भी समझो! जैसा राबिया ने कहा कि "लो, समझो!" ऐसा ही मैं भी कहता हूं कि लो, समझो!
संत सफियान संत तो नहीं हो सकता। वही राबिया ने कह दिया। एक मोमबत्ती देकर कह दिया कि पंडित हो, अभी संत वगैरह की भ्रांति में न पड़ो। अभी भीतर का दीया जला ही नहीं और संत हो गए! संत हो गए, तो यह बात ही फिजूल है कि पूछो मुझसे कि "आप साहिबे-इल्म हैं। कृपा कर हमें कोई सीख दें!" संत को क्या बचा? संत वह जो सत्य को उपलब्ध हो गया, पी गया, पचा गया। सत्य जिसकी मांस-मज्जा बन गया... ।
संत सफियान ऐसे ही संत होंगे, जैसे तुम्हारे तथाकथित संत होते हैं। किन-किन को तुम संत कहते हो? किन आधारों पर संत कहते हो? तुम्हारी मान्यताएं जो पूरी कर देते हैं, वे संत। जैनों की जो मान्यताएं पूरी कर देते हैं, वे जैनों के संत। और मान्यताएं भी क्या-क्या मजे की हैं। कोई मुंह-पट्टी बांधे हुए है, तो वह संत हो गया! क्योंकि देखो, मुंह-पट्टी बांधे हुए हैं! कोई एक बार भोजन करता है, तो संत हो गया। क्योंकि देखो, एक बार भोजन करता है! कोई नग्न खड़ा है, तो संत हो गया!
मैंने सुना है, पता नहीं कहां तक सच है, कि टार्जन अफ्रीका के जंगलों में बहुत दिनों तक लंगूरों को पछाड़ता रहा; बंदरों को ठिकाने लगाता रहा। फिर किसी ने उसे खबर दी कि यहीं जिंदगी गंवा दोगे! अरे, भारत के जंगलों में इससे भी पहुंचे हुए लंगूर हैं। ये बंदर क्या--वहां हनुमान के शिष्य हैं; हनुमान की संतान हैं! वहां बंदर हैं, जिन्होंने रावण जैसे महाबली को हरा दिया। अगर टक्कर लेनी है, तो वहां जाओ। यहां क्या छोटे-मोटे बंदरों से उलझे हो! न इनकी कोई कथा, न कोई परंपरा; न कोई सभ्यता, न कोई संस्कृति। ऐसे-ऐसे बंदर हो गए हैं कि आदमी उनकी पूजा कर रहे हैं! हनुमान के जितने मंदिर हैं, किसके होंगे? और हनुमान के जितने भक्त हैं--किसके होंगे? जहां देखो, वहां हनुमान चालीसा पढ़ा जा रहा है! ऐसे-ऐसे बंदर हो गए हैं कि जिन्होंने लंका में आग लगा दी। रावण को पराजित कर दिया। राम जिनके सहारे जीते; जिनके कंधे पर रख कर राम ने अपनी बंदूक चला ली।
यहां क्या कर रहे हो?
टार्जन को जोश चढ़ा। उसने कहाः "फिर भारत जाऊंगा!" चोट खा गया उसका अहंकार। एक जहाज पर सवार हुआ। टिकट वगैरह लेना तो उसे कोई जरूरत थी नहीं। कैप्टेन भी घबड़ाया। पूरे जहाज के यात्री भी घबड़ाए। क्योंकि वह दहाड़ दे, तो प्राण निकल जाए! और जब कैप्टेन उसके पास टिकट की पूछने के लिए गया, तो उसने सिर्फ छाती खोल कर उसे दिखा दी! उसने कहा कि "बिल्कुल ठीक है। विराजिए, भोजन इत्यादि करिए। और जो भी सेवा हो--आज्ञा दीजिए।" ऐसा खतरनाक आदमी! उतरा, बंबई के बंदरगाह पर। और जब उसने सुना कि नाम बंदरगाह है, घबड़ाया
कि है बंदरों का देश! किससे पूछूं? कि तभी उसे दिखाई पड़ा कि चौपाटी पर मुनि

थोथूमल चले जा रहे हैं--मुंह पर पट्टी बांधे हुए, हाथ में पिच्छी लिए हुए! उसने सोचा कि यह अजीब किस्म का बंदर है! सुना था--ठीक ही सुना था--कि लंगूर एक से एक अदभुत भारत में हैं। अरे, पूंछ पीछे नहीं लगाई है, बगल में दबाए हुए हैं! अलग ही है पूंछ।
बंदर बहुत देखे थे, मगर यूं पूंछ (पिच्छी) बगल में दबाए हुए बंदर उसने नहीं देखा था। और मुंह पर पता नहीं क्यों पट्टी बांधे हुए है! डरते-डरते उसने सोचा कि अपनी पुरानी तरकीब आजमाई जाए, जो वह अफ्रीका के जंगलों में आजमाता रहा था। कमीज खोल कर उसने अपनी छाती दिखाई; भुजाएं फड़काईं; और कहा कि "मैं टार्जन हूं।" मुनि थोथूमल ने भी अपनी मुंह-पट्टी निकाली और कहा कि "मैं मुनि थोथूमल हूं!" उसने बंदर बहुत देखे थे, लेकिन बोलने वाला बंदर नहीं देखा था। कहते हैं, टार्जन उसी समय समुद्र में कूद पड़ा। वह पहला आदमी है, जिसने तैर कर भारत से अफ्रीका का सागर पार किया, चौबीस घंटे में! फिर उसने पीछे लौट कर भी नहीं देखा कि यहां टिकना ठीक नहीं, जहां बंदर बोलते हैं! और अभी तो यह पहला ही बंदर है। अभी जंगल में पहुंचे ही नहीं। बस्तियों में घूमते बंदर जहां बोल रहे हैं, वहां जंगलों में क्या हालत होगी?
कहते हैं, टार्जन अकेला आदमी है पूरे इतिहास में, जिसने चौबीस घंटे के भीतर... । घबड़ाहट देखते हो उसकी! भारत से अफ्रीका तक का समुद्र पार कर लिया। अरे, प्राण संकट में हों, तो आदमी क्या न कर ले!
संत तुम किस-किस को कहते हो? कैसे-कैसे थोथे लोग, कैसे-कैसे झूठे लोग, कैसे-कैसे नकली लोग!
अक्सर तो शास्त्रों को दोहराने वाले जो तोते हैं, उनको तुम संत कह देते हो! ये सब चोर हैं। ये बेईमान हैं। जो इनका नहीं है, ये उसे अपना बता कर कहते रहते हैं!
कल किसी मित्र ने पूछा था कि वह गुरु महाराजजी के बड़े भाई सतपालजी महाराज को सुनने गया था। वह चकित हुआ कि वे मेरी किताबों में से पन्नों के पन्ने दोहरा रहे हैं! फिर उसने उनका साहित्य देखा, तो और हैरान हुआ कि वहां तो पन्ने के पन्ने कहानियां, लतीफे--सब वैसे के वैसे। उनमें एक शब्द भी नहीं बदला है। तो उसने पूछा है कि यह मामला क्या है? और अब ये सतपाल महाराज इतना ही नहीं कर रहे हैं। अब वे लंदन में जमे हुए हैं और सक्रिय-ध्यान करवाने में सक्रिय हैं! यह लंदन से संन्यासियों ने खबर दी है कि एक सज्जन यहां सतपाल महाराज जमे हुए हैं। वे सक्रिय-ध्यान करवा रहे हैं और नाम आपका लेते नहीं! और लोग समझ रहे हैं कि सक्रिय-ध्यान इनकी खोज है!
मराठी में इसी तरह के एक तोताराम पंडित ने, शांताराम वी. थाते ने अभी- अभी एक किताब लिखी है अष्टावक्र गीता पर। उसमें अष्टावक्र गीता पर मेरा जो पहला प्रवचन है, पूरा का पूरा, शब्दशः एक मात्रा भी नहीं छोड़ी। पूरा का पूरा प्रवचन चुरा लिया है। उसकी भूमिका बना कर दे दी! नाम का उल्लेख नहीं है! और उनकी पुस्तक की मराठी पत्रों में बड़ी प्रशंसा की जा रही है कि अष्टावक्र गीता पर ऐसी कोई किताब नहीं लिखी गई!
लक्ष्मी ने उन्हें रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्र लिखा कि आप जवाब दें-- उसका भी डेढ़ महीना हो गया, कोई जवाब नहीं है! चोर! हर तरह के चोर!
करपात्री महाराज हिंदुओं के बड़े संत हैं। उन्होंने मेरी पुस्तक "संभोग से समाधि की ओर"--उसके खिलाफ एक पूरी किताब लिखी है। मेरे एक भी तर्क का जवाब नहीं है। शास्त्रों से उल्लेख है, और मुझसे पूछा है कि "शास्त्रों में मेरी बात का समर्थन कहां है?"
मैं कब कहता हूं कि शास्त्रों में मेरी बात का समर्थन होना चाहिए! शास्त्रों ने कोई ठेका लिया है? सत्य चुक गया शास्त्रों में! शास्त्रों में नहीं है उल्लेख मेरी बात का, इससे इतना ही सिद्ध होता है कि जो मैं कह रहा हूं, वह मौलिक है। क्योंकि हो शास्त्रों में उल्लेख? और तो कोई तर्क नहीं, बस, शास्त्रों का ही उल्लेख किया हुआ है कि इस शास्त्र में भी नहीं। इस शास्त्र में भी नहीं। इस शास्त्र में भी नहीं। और शास्त्रों में मेरे विपरीत उनको जो-जो वचन मिल गए हैं, वे सब उल्लेख कर दिए हैं। मेरे पास किताब पहुंचाई है कि मैं इसका जवाब दूं।

मैं जवाब क्या दूं! मेरी संन्यासिनी है--प्रज्ञा--उससे पूछो जवाब! वह संन्यासिनी नहीं थी, तब अहमदाबाद में करपात्री महाराज आए थे, तो वह दर्शन करने चली गई। एकांत पाकर बस, उन्होंने फिर अवसर नहीं खोया। एकदम से उसके स्तन पकड़ लिए! यह जवाब देगी--मैं क्या जवाब दूं! प्रज्ञा जवाब दे सकती है। वह इतनी घबड़ा गई... !
तब तो उसकी उम्र भी कम थी। इतनी बेचैन हो गई कि रोती हुई अपनी मां के पास आकर कहा कि क्या करना! मां-पिता भी घबड़ाए कि अब इतने बड़े संत के लिए क्या कहना! बूढ़े हैं, सत्तर साल के हैं और अभी यह खुजलाहट नहीं गई! "संभोग से समाधि की ओर" मेरी किताब को जवाब दे रहे हैं! अब मैं इनको क्या जवाब दूं?
थोथे लोग! मगर तुम किस-किस को संत कहते हो, कहना बड़ा मुश्किल है।
कोई चरखा चला रहा है, तो संत? महात्मा? तुम्हारी धारणाओं के अनुकूल हो जाना चाहिए, बस। और तुम्हारी धारणाएं तुम्हारी धारणाएं हैं--अज्ञान में पकड़ी गईं।
अब यह संत सफियान संत तो नहीं है। संत को क्या जरूरत है कि किसी से पूछे जा कर कि कोई सीख दें! उसे तो मिल गया सब। जिसे मिल गया, वही तो संत है। राबिया ने सीख दे दी। राबिया ने कहाः "यह लो मोमबत्ती।" राबिया ने इतना कहा कि "दूसरों की रोशनी से कब तक जीओगे! अरे, अपनी मोमबत्ती जला लो। वह दूसरों के सूरज से ज्यादा बेहतर है। अपनी है।" उसने साफ कह दिया कि तुम पंडित हो--थोथे पंडित। तुम्हें कुछ पता नहीं अभी और संत बने बैठे हो? और लोग तुम्हें संत की तरह पूजते हैं, तो इनकार भी नहीं करते। अभी भीतर का दीया जला भी नहीं।
यूं सचोट उत्तर दिया! मैं नहीं समझता कि सफियान समझ पाए होंगे। मोमबत्ती लेकर उन्होंने भी देखा होगा कि बात क्या है? मोमबत्ती में कोई राज तो नहीं? उलट-पलट कर देखा होगा। कुछ लिखावट तो नहीं? उनकी भी बुद्धि में आया होगा, यह मैं मानता नहीं। आ गया होता, तो वे कह गए होते। तो सूफियों को फिर सोचने-विचारने की जरूरत न रह जाती।
और अब्दुल वहीद दार्शनिक रहे होंगे, तर्कशास्त्री रहे होंगे, इसलिए उनको एक सुई थमा दी। सुई बड़ी प्रतीकात्मक है। राबिया के अपने बोलने के अनूठे ढंग थे। कहने के अपने इशारे थे। उसका एक-एक इशारा कीमती है।
इस संबंध में एक संत फकीर फरीद के जीवन में उल्लेख है, वह ख्याल में लो, तो सुई की बात समझ में आ जाएगी।
एक सम्राट फरीद को मिलने गया। सोचा, कुछ ले चलूं भेंट के लिए। क्या ले चलूं! किसी ने उसे सोने की एक कैंची हीरे-जवाहरातों से जड़ी हुई उसी दिन भेंट की थी। बड़ी सुंदर थी। बड़ी कलात्मक थी। उसने सोचा, यही ले चलूं। और उसने यह भी सुना था कि फरीद अक्सर कपड़े सीते रहते हैं; गरीबों के कपड़े सीते रहते हैं। तो उनके काम भी आ जाएगी।
सो वह कैंची लेकर फरीद के चरणों में गया। सिर झुकाया। कैंची फरीद को भेंट की। फरीद ने कहाः धन्यवाद! लेकिन कैंची मेरे क्या काम की? कैंची तो तुम ले जाओ। मेरा काम कैंची का नहीं है--सुई का है! सम्राट ने कहाः मैं समझा नहीं! फरीद ने कहाः मैं काटता नहीं--जोड़ता हूं।
तर्क काटता है। तर्क कैंची है। सुई जोड़ती है--सुई प्रेम है।
तुम पूछते हो दिनेश भारती कि "क्या है राज राबिया के इस अदभुत उत्तर का?"
अब्दुल वहीद आमरी तर्कशास्त्री थे, निश्चित रहे होंगे। सुई प्रतीक है
कि मियां, जोड़ो। कब तक काटोगे? काट कर किसने पाया? तर्क करता है विश्लेषण। वह काटता है। संश्लेषण करना तर्क को नहीं आता। तर्क कैंची है। तर्क का काम ही यह है कि चीजों को तोड़े। इसलिए विज्ञान जो तर्क पर आधारित है, आत्मा को नहीं पहचान पाता, न परमात्मा को जान पाता है। कभी नहीं पहचान पाएगा। कभी नहीं जान पाएगा। क्योंकि विज्ञान की सारी प्रक्रिया विश्लेषण है--काटो। आत्मा को जानने के लिए एक ही उपाय है उसके पास--पोस्टमार्टम। आदमी जब मर जाए, तो उसके शरीर को काटो। जिंदा को भी काटोगे, तो मर जाएगा।

मेडिकल कालेजों में मेढक काटे जाते, और पशु-पक्षी काटे जाते। काट-काट
कर समझने की कोशिश की जाती! निश्चित ही आत्मा हाथ नहीं लगती। क्योंकि जैसे ही तुमने काटा, प्राण उड़ जाते हैं! पिंजड़ा पड़ा रह जाता है; पक्षी उड़ जाता है। तो आत्मा मिले कैसे?
यह ऐसा ही पागलपन है, जैसे किसी फूल को तुम ले जाओ किसी वैज्ञानिक के पास और कहो कि यह सुंदर है--बहुत सुंदर है! गुलाब का फूल है! वह कहे, मुझे दो थोड़ा अवसर, मैं विश्लेषण कर के देखूंगा कि सौंदर्य है या नहीं! वह फूल को काटेगा। काटना उसकी प्रक्रिया है। वह फूल को काट कर, फूल को गला कर, फूल को जला कर राख कर देगा, और छांट कर रख देगा कि किन-किन रासायनिक द्रव्यों से मिल कर फूल बना है। मिट्टी यह रही, पानी यह रहा; रंग ये रहे; खुशबू यह रही। और तुमसे कहेगा कि भई, और सब तो मिला--रंग मिला, खुशबू मिली, पानी मिला, मिट्टी मिली, मगर सौंदर्य नहीं मिला! सौंदर्य था ही नहीं। तुम्हारी भ्रांति रही होगी!
सौंदर्य होता है समग्रता में। जैसे ही काटा, वैसे ही उड़ जाता है; सौंदर्य अदृश्य हो जाता है। तुमने काटा कि अदृश्य हुआ। फूल अपनी समग्रता में सुंदर है। खंड हुआ--कि सौंदर्य गया।
सौंदर्य अखंड में है। सत्य भी अखंड में है। इसलिए तर्क कभी सत्य को नहीं पा सकता। तर्क जो भी पाएगा, वह मरा हुआ होगा। सत्य जीवंत है। सत्य जीवन का ही दूसरा नाम है।
राबिया ने कहाः मियां, अब्दुल वहीद आमरी, कब तक कैंची की तरह काटते रहोगे! ऐसे कुछ पाओगे नहीं। यह लो सीख! सुई की तरह जोड़ो। जोड़ो--तोड़ो मत। जोड़ने से पा सकोगे।
विज्ञान तोड़ता है, धर्म जोड़ता है। और जो धर्म तोड़ता हो, वह धर्म नहीं।
और तुम्हारा तथाकथित धर्म तोड़ता है। हिंदू को मुसलमान से अलग कर देता है; मुसलमान को ईसाई से अलग कर देता है। ईसाई को जैन से अलग कर देता है। फिर जैन को भी काटता है। काटता ही चला जाता है! कैंची का काम काटना है। फिर श्वेतांबर को दिगंबर से अलग कर देता है। फिर शिया को सुन्नी से अलग कर देता है। ईसाइयों में प्रोटेस्टेंट को कैथेलिक से अलग कर देता है। काटता ही चला जाता है! खंड-खंड करता चला जाता है। यह धर्म नहीं है। यह जीवन का शाश्वत नियम नहीं, जिसको धर्म कहें।
धर्म तो वह है, जो सबको ही धारण किए हुए है। धर्म तो वह, जो सबके भीतर अनास्यूत है। जिस धागे में हम सब पिरोए हुए हैं; जो हमें एक करता है।
धर्म तो एक हो सकता है; अधर्म अनेक हो सकते हैं। ये सब अधर्म हैं-- हिंदू, ईसाई, मुसलमान, जैन, बौद्ध--ये सब अधर्म हैं। बुद्ध को धर्म का पता था; वे तोड़ते नहीं। जीसस को पता था; वे तोड़ते नहीं--वे जोड़ते हैं। मगर पोपों को, तुम्हारे तथाकथित शंकराचार्यों को--इनको धर्म का कुछ भी पता नहीं है। ये तो अधर्म को धर्म मान कर बैठे हुए हैं। और अधर्म यानी छिपी हुई राजनीति। अधर्म यानी छिपा हुआ तर्क। यह तर्कजाल है। इस तर्कजाल में जो उलझ गया, वह जंगल में भटक गया। उसे कूल-किनारा न मिलेगा।
राबिया ने कहा कि मियां, यह सुई सम्हालो। इशारा समझो। क्या अंदाज है! क्या अदा है उसकी! जरा सी सुई, मगर काफी है--तर्कशास्त्री के घमंड का जो गुब्बारा है, उसको फोड़ देने के लिए। कहा कि प्रेम सीखो--तर्क छोड़ो। कहा कि ध्यान सीखो--ज्ञान छोड़ो। ज्ञान तोड़ता है--ध्यान जोड़ता है। ध्यान मनुष्य और परमात्मा के बीच सेतु है, और ज्ञान बाधा है, दीवाल है।
और हसन को सिर का एक बाल दिया। बाल की एक खूबी है, तुमने ख्याल किया होगा, बाल काटते हो तुम, तो दर्द नहीं होता। शरीर का अंग है; काटते हो, लेकिन दर्द नहीं होता। नाखून काटते हो, लेकिन दर्द नहीं होता। तो नाखून और बाल माना कि तुम्हारे शरीर के अंग हैं; लेकिन जीवित नहीं हैं। जीवित होते, तो दर्द होता। जीवन होता, तो पीड़ा होती। मुर्दा हैं। मरे हुए हैं। इसलिए बाल को काटा जा सकता है। कोई पीड़ा नहीं, कोई दर्द नहीं। कोई और अंग तो काटो शरीर का! जहां जीवन है, वहां पीड़ा होगी। बालों का तो काटे जाने पर पता ही नहीं चलता।

जो व्यक्ति शरीर को ही सब कुछ माने बैठा है, उसने मुर्दे को ही जीवन समझ लिया है।
हसन बसरी को राबिया ने कहाः भीतर झांको। परिधि में मत उलझे रहो। परिधि तो मृत्यु की है, और भीतर अमृत बसा है। बालों में मत खो जाओ। ये तो सब मुर्दा हैं। जैसे ये मुर्दा हैं, ऐसे ही तुम्हारा पूरा शरीर भी सिर्फ आत्मा की आभा से मंडित होने के कारण जीवित दिखाई पड़ रहा है। लेकिन यह आभा अपनी नहीं है।
एक और सूफी कहानी है।
एक फकीर अंधेरी रात में लालटेन लिए एक रास्ते से गुजर रहा है। जंगल का रास्ता है। सन्नाटा है। एकांत है। बीहड़ वन है। जंगली जानवरों का खतरा है।
एक और आदमी को भी उसी रास्ते से यात्रा करनी है, वह भी फकीर के साथ हो लिया।
फकीर के हाथ में लालटेन है। रोशनी पड़ रही है। फकीर की रोशनी में वह आदमी भी चलने लगा।
निश्चित ही, लालटेन किसी के हाथ में हो, इससे क्या फर्क पड़ता है! रोशनी
तो रास्ते पर पड़ रही थी। फकीर को भी दिखाई पड़ रहा था, उस आदमी को भी दिखाई पड़ रहा था। दोनों आधी रात तक साथ चलते रहे। फिर विदा का क्षण आ गया। दोनों के रास्ते फिर अलग होने लगे।
जब रास्ते अलग हुए, तब उस आदमी को पता चला कि वह रोशनी भी अलग हो गई। वह रोशनी अपनी न थी। वह उस फकीर के हाथ की थी। उसके हाथ में थी लालटेन। आधी रात तक तो यह यात्री भूल ही गया था कि रोशनी अपनी नहीं है; रोशनी पराई है। ऐसी ही रोशनी हमारे शरीर की है। दो यात्री साथ-साथ चल रहे हैं--अमृत और मृत्यु। अमृत भीतर है। रोशनी उसकी है। जीवन उसका है। आनंद उसका है। रस उसका है। शरीर तो सिर्फ मंडित है--उसके रस से, उसके आलोक से। जब तक साथ रहेगा, तब तक शरीर को यह भ्रांति रहेगी कि मैं भी जिंदा हूं।
उस यात्री को जैसे भ्रांति रही। भूल ही गया था कि हाथ में मेरे लालटेन नहीं है। लालटेन किसी और की है। चलता रहा रोशनी में मस्त--गीत गुनगुनाता हुआ। और जब विदा होने का क्षण आया, और फकीर दूसरे रास्ते पर मुड़ा--घनघोर अंधेरा हो गया।
जिस दिन आत्मा छोड़ देती है शरीर को, उस दिन क्या रह जाता है? मिट्टी पड़ी रह जाती है। लाश पड़ी रह जाती है।
हसन को राबिया ने कहाः शरीर में मत उलझे रहो। जीवन शरीर का नहीं है। शरीर का मालूम पड़ता है, क्योंकि अभी चलता है, उठता है, बैठता है, बोलता है, खाता है, पीता है। मगर फिर भी याद रखो जीवन तो भीतर छिपी आत्मा का है। लेकिन आत्मा इतनी जीवंत है कि उसके साथ भी जो हो लेगा, वह भी जीवित हो जाएगा। मगर यह साथ ज्यादा देर चलने वाला नहीं है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, रास्ते अलग हो जाएंगे; आत्मा अपने रास्ते पर चल पड़ेगी; उसकी यात्रा और है--और शरीर पड़ा रह जाएगा। एक क्षण में क्या से क्या हो जाता है! मुट्ठियों में खाक लेकर दोस्त आए बादे दफ्न
जिंदगी भर की मोहब्बत का सिला देने लगे!
क्या सिला दिया! मुट्ठियों में खाक ले कर आए थे। मुर्दे को जब गड़ाते हैं, तो हर मित्र उस पर एक मुट्ठी खाक डाल देता है। यह सिला दिया! मुट्ठियों में खाक लेकर दोस्त आए बादे दफ्न
जिंदगी भर की मोहब्बत का सिला देने लगे!
क्या सिला दिया! दोस्ती का क्या परिणाम आया? ये सारे प्रेम का--जीवन
भर के प्रेम का--क्या निष्कर्ष, क्या निचोड़ निकला?
और किसी के मुंह से भी न निकला
कि इन पर खाक न डालो
ये हैं आज ही नहाए हुए!
मुर्दे को नहला कर ले जाते हैं; नये कपड़े पहना कर ले जाते हैं!
और किसी के मुंह से यह न निकला
कि आज ही बदले हैं इन्होंने कपड़े
और आज ही हैं ये नहाए हुए!

"जिंदगी भर की मोहब्बत का सिला देने लगे!" और यह सिला दिया कि खाक फेंकने लगे! इनसे यह आशा न थी! दोस्त? दुश्मन यह करते तो ठीक थे। लेकिन दोस्त भी क्या करें। मिट्टी मिट्टी में गिर गई; अब और क्या भेंट दें! मिट्टी ही भेंट देने को रही।
क्षण में क्या हो जाता है! क्षण में हो जाता है। अभी सब ठीक था। अभी क्षण में सब बिगड़ जाता है।
मैंने परसों ही श्री रेखचंद्र पारेख का नाम उल्लेख किया था। अभी कुछ दिन पहले चल बसे। "साधु" की दीक्षा ली थी उन्होंने, और कहते थेः जल्दी ही आता हूं! जल्दी आता हूं। अब गैरिक में दीक्षा लेनी है; संन्यासी होना है। और जल्दी-जल्दी में उन्होंने आठ साल बिता दिए! आठ साल हो गए उनको मुझसे नहीं मिले! आठ साल से खबरें आती रहीं कि "अब आया; अब आया! आता हूं। जरा काम-धाम सुलझ जाए। यह उलझन, वह उलझन!" और मरे भी तो क्या मरे! कैसे मरे!
खेत पर थे। रात सोए-सोए प्राण निकल गए! धनाड्य थे। उन्होंने मेरे काम
को बहुत सहायता दी। लेकिन खेत पर थे। बीस मील दूर थे चांदा से। सुबह मजदूर जब आए काम करने, तो देखा कि आज सेठ नहीं! तो जाकर जो उन्होंने खेत पर बंगला बना लिया था, दरवाजा खटखटाया। कोई खोलता नहीं; भीतर से बंद है। दरवाजा तोड़ा तो वहां तो सब मिट्टी थी। सांझ विदा ले कर गए थे, तब सब ठीक था। सुबह आए तो मिट्टी थी।
घर का कोई मौजूद भी न था वहां। और वर्षा इतनी तेज थी कि बीच में एक नाला आया हुआ था कि दो दिन तक लाश वहां पड़ी सड़ती रही! कोई खबर भी नहीं पहुंचा सका जा कर चांदा। क्योंकि वह नाला इतना भयंकर और पहाड़ी, कि उसको पार करना मुश्किल! और लाश को लाया तो जा नहीं सकता था। तो खबर करने का भी कोई प्रयोजन न था। दो दिन लाश सड़ती रही।
रेखचंद्र पारेख कीमती आदमी थे। मुझे पहचानने वाले उन थोड़े से लोगों में थे, जिन्होंने सबसे पहले मुझे पहचाना। मगर फिर भी देर कर दी! समझ न पाए कि यह जिंदगी हमेशा चलने वाली नहीं। कब रास्ता अलग हो जाएगा, कहां अलग हो जाएगा--कुछ पता नहीं! अभी है, अभी नहीं! एक क्षण में बात हो जाती।...
मुझे पहली दफा देखा, तो पहचान गए। और यूं पहचाना कि सारे चांदा के लोग चकित थे। क्योंकि रेखचंद्र पारेख चांदा में प्रसिद्ध थे कि उनसे बड़ा कंजूस वहां कोई नहीं है। उनके द्वार पर कोई भिखारी भीख नहीं मांगता था। रेखचंद्र पारेख का मकान है! वहां भीख मांगने से कोई सार नहीं। मिलने वाली नहीं। दुतकारे जाओगे। कोई भिखारी अगर मांगने खड़ा हो जाता, तो उसका मतलब यह था कि नया-नया है; गांव में पहली दफा आया है। गांव के लोग कह देते सड़क चलते, कि "भैया, तू बेकार खड़ा है! यह जगह नहीं है, जहां कुछ मिलेगा!" और जब मुझे देखा और पहचान गए... ।
उनकी पत्नी मुझे ले गई थीं। उनकी पत्नी और भी संतों के पास उन्हें ले जाती रहीं। क्योंकि पत्नी का ख्याल था कि पति को मार्ग पर लाया जाए। यह क्या धन-पैसे के पीछे ये पड़े हैं! ये धार्मिक नहीं हैं।
पत्नी को धर्म में रस था। साधु-संतों में रस था। मगर रेखचंद्र पारेख
को कोई साधु-संत जमा नहीं। आंख थी उस आदमी के पास पहचानने वाली। तो धोखा नहीं खाया। कोई संत सफियान जैसा आदमी धोखा नहीं दे सका। कोई करपात्री महाराज जैसा व्यक्ति धोखा नहीं दे सका। कोई पुरी के शंकराचार्य को रेखचंद्र मानने वाले नहीं थे।
उनकी पत्नी मुझे ले गई थीं अपने घर, इसी आशा में कि शायद और तो कोई जमा नहीं, मैं जम जाऊं! मुझे देख कर ही रेखचंद्र पारेख ने कहा कि अब मजा आ गया! मगर मैं कहे देता हूं, उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि यह मस्जिद मुसलमान पर गिरेगी; मुझ पर नहीं। तू दब कर मरेगी इस मस्जिद में। तू लाई है मुझे दबाने; तू मुझे बहुत जगह ले गई कि किसी को मेरे सिर पर चढ़ा दे। मगर यह मस्जिद तेरे सिर पर गिरेगी। मेरा तो तालमेल हो गया; मुश्किल तेरी होगी; तेरा धर्म अड़चन में पड़ेगा। मैं अधार्मिक हूं। मैं नास्तिक हूं। और यह पहला आदमी है, जो ऐसी भाषा बोलता है कि नास्तिक भी आस्तिक हो जाए! और सच ही उन्होंने मुझसे कभी तर्क न किया। जो सबसे तर्क करते रहे, कभी मेरे विरोध में एक शब्द न कहा।

मैं वर्षों तक उनके घर ठहरता रहा। वर्ष में कम से कम दो बार निश्चित रूप से चांदा उनके घर मेहमान होता रहा। तीन-चार दिन; वर्ष में दो बार। एक सप्ताह उन्हें हर वर्ष देता रहा।
और वे ऐसे डूबे कि सारे चांदा में लोग चकित थे, क्योंकि उन्होंने बुनियाद रखी मेरे काम की। और मैंने कभी उनसे तो कहा नहीं। लेकिन जब उन्हें लगा कि जो मुझे जरूरत है, उन्होंने तत्क्षण पूरी की। उन्हें लगा कि मुझे एक टाइपिस्ट की और टाइपराइटर की जरूरत है, तो एक टाइपिस्ट और टाइपराइटर भेज दिया। मैंने पूछाः तुम कैसे आए!" उन्होंने कहा कि रेखचंद्र पारेख ने भेजा। मैंने कहाः यह भी खूब हुआ। जरूरत मुझे थी। कब तक हाथ से पत्र लिखता रहूं! मुल्क में हजारों प्रेम करने वाले लोग हो गए, मुश्किल खड़ी हो गई।
वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने... । अब तो इस आश्रम में हजारों टाइपराइटर हैं। मगर पहला टाइपराइटर उनका था। वे बुनियाद रख गए। अब तो इस आश्रम में सैकड़ों टेप-रिकार्डर हैं। पहला टेप-रिकार्डर उनका था; वे बुनियाद रख गए! अब तो इस आश्रम में शायद भारत का सबसे सुंदर डार्करूम है। और सबसे कीमती और बहुमूल्य कैमरे हैं। मगर पहला कैमरा उनका था। अब तो इस आश्रम के पास दर्जनों कारें हैं। मगर पहली कार उन्होंने मुझे दी थी--पहली कार! वे सब मामले में पहले रहे।
चकित था चांदा कि यह आदमी, जिसने कभी किसी को एक पैसा भेंट नहीं किया, इसको हो क्या गया! इसका दिमाग खराब हो गया! और मैंने कभी उनसे एक पैसा मांगा नहीं। और उन्होंने हजारों रुपये बहाए!
मुझसे सिर्फ एक बात उन्होंने पूछी--सिर्फ एक--कि मैं कब काम-धंधा छोड़ दूं? मैंने कहाः आपकी उम्र कितनी हुई? उन्होंने कहाः पचास। तब वे पचास के थे। तो मैंने कहाः बस, छोड़ दें। उन्होंने कहाः छोड़ा। छोड़ ही दिया! बड़ा काम-धंधा था। सब यूं का यूं छोड़ दिया।
फिर फुरसत थी, इसलिए ये खेत... । अब कुछ काम न बचा, तो दूर जंगल में एक जमीन ले ली और बगीचा लगाने में लग गए कि अब काम-धंधा छोड़ दिया, अब कुछ पौधों के साथ जीना हो जाए।
आठ साल पहले माउंट आबू शिविर में साधु होकर गए। कह कर गए कि आता हूं जल्दी। संन्यस्त होना है। लेकिन आठ साल लग गए। टालते-टालते रहे। कल पर टालते रहे--और अब विदा हो गए। अब विदाई के इस क्षण में रोशनी खो जाएगी। वे जो सोचते थे, विचारते थे, वे जो सोचते थे--उन्हें दिखाई पड़ने लगा है, वह उन्हें नहीं दिखाई पड़ रहा था। वह मेरे हाथ की लालटेन थी। अब इस अंधेरे में उनको अकेले जाना पड़ा। रास्ते अलग हो गए। काश वे संन्यस्त हो जाते! काश वे समाधिस्थ हो जाते! तो रोशनी उनकी अपनी होती।
हसन को राबिया ने कहाः यह जैसे सिर का बाल मुर्दा है, माना कि शरीर का हिस्सा है--ऐसा ही पूरा शरीर मुर्दा है--पहचानो या न पहचानो। और जब तक तुम्हें यह समझ में न आ जाए कि पूरा शरीर मुर्दा है, तब तक तुम समझोगे नहीं; तब तक तुम तिलमिलाओगे नहीं; तब तक तुम्हारे जीवन में वह आंधी न आएगी, जो इस खोज पर ले जाए--अमृत की खोज पर।
अथर्ववेद का यह प्यारा सूत्र हैः "आरोह तमसो ज्योतिः--उठो अंधकार से, चढ़ो ज्योति-रथ पर।" "आहि रोहेन अमृतं सुखं रक्षं। अरे क्या देर कर रहे हो! सुख में अमृत-रथ पर आरूढ़ हो जाओ। वहीं सुरक्षा है।"
तुम्हारे भीतर अमृत है। तुम अमृत पुत्र हो। अमृतस्य पुत्राः! लेकिन मृत्यु में भटक गए हो। मृत्यु यानी अंधकार। अमृत अर्थात आलोक।
"उठो अंधकार से, चढ़ो ज्योति रथ पर। उठो मृत्यु से--अमृत में डूबो।" ऐसा इशारा किया राबिया ने। पता नहीं, जिनको इशारा किया था, वे समझ पाए या नहीं। और इतना तो निश्चित है कि सूफियों ने इस पर बहुत टीकाएं की हैं। मगर जिन्होंने टीकाएं की हैं, वे कोई भी नहीं समझते। मैंने टीकाएं देखी हैं।
लोग अनुमान लगाते हैं कि "शायद!" मैं "शायद" की बात नहीं कर रहा हूं। मैं अनुमान में भरोसा नहीं करता। राबिया मेरी बात से इनकार करे, तो झंझट हो जाए। मैं राबिया की गर्दन पकड़ लूं! क्योंकि मैं कुछ राबिया से भिन्न नहीं।

उसने सुई पकड़ा दी; मोमबत्ती पकड़ा दी; बाल पकड़ा दिए। मैं उसकी गर्दन दबा दूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि इनका क्या अर्थ है। यह मैं अपने अनुभव से जानता हूं।
मैं भी यही कर रहा हूं। रोज यही कर रहा हूं। तुम्हें दे क्या रहा हूं? यही इशारेः छोड़ो मृत्यु को। तुम पकड़े हो। जोर से पकड़े हो। मृत्यु ने तुम्हें नहीं पकड़ा है। छोड़ो मृत्यु को। जागो। नींद में हो।
और तुम तर्कजाल में पड़े हो! तुम व्यर्थ के ऊहापोह में उलझे हो। तुम कैंची बन गए हो। सुई बनो--जोड़ो।
यहां देखते होः कैसे लोग जुड़ गए हैं! किन-किन धर्मों के, किन-किन देशों के, किन-किन जातियों के, किन-किन रंगों के! करीब-करीब सारी दुनिया से लोग यहां आ गए हैं। सिर्फ रूस से नहीं आ पाए थे, तो दो व्यक्ति--पति और पत्नी-- जिन्होंने चुपके-चुपके यहां से संन्यास ले लिया है। संन्यास भी चोरी से भेजना पड़ा है! माला भेजता हूं किसी और देश। और वहां के राजदूत की डाक में वह माला पहुंचती है रूस। वह राजदूत मुझमें उत्सुक हैं। नाम तो नहीं बता सकूंगा उनका! और वहां से रूस के संन्यासी... ।
अब कोई रूस में पचास संन्यासी हैं। नहीं पहन सकते गैरिक वस्त्र। नहीं माला टांग सकते। छिप पर मिलते हैं। ध्यान करते हैं। रूसी में अनुवादित कर ली हैं उन्होंने किताबें। टाइप कर-कर के एक-दूसरे को बांटते हैं। कोई चार किताबें--न मालूम कितने लोग पढ़ रहे हैं! टेप रूसी में अनुवाद कर-कर के चुपचाप एक हाथ से दूसरे हाथ में जा रहे हैं!
लेकिन एक जोड़ा बड़ी मुश्किल से, बड़ी मेहनत के बाद निकल भागा है। वह लंदन पहुंच गया है। कल ही खबर आई है कि "हम खुश हैं कि हम रूस के बाहर आ गए हैं। निकलना तो बहुत मुश्किल था, मगर निकल आए। अब हम जल्दी ही पहुंच जाएंगे।"
लोग कहां-कहां से आ रहे हैं!
जो बर्लिन का हिस्सा रूसियों के हाथ में है पूर्वी बर्लिन--वहां से निकल भागना बहुत मुश्किल है। लेकिन एक संन्यासी वहां से भाग निकला। कार की डिग्गी में छिप कर आना पड़ा। खतरा मोल लिया। जीवन के लिए खतरा था। पकड़ जाता, अगर डिग्गी खोली जाती, जोखम उठाई... । डिग्गी खुल जाती, तो फंस जाता-- बुरी तरह फंसता। शायद दस-पच्चीस साल की सजा काटता। शायद सारी जिंदगी जेलखाने में बीतती। क्योंकि कम्युनिस्ट फिर कोई कंजूसी नहीं करते सजा देने में।
मगर जोखम उठा ली। कार की डिग्गी में बैठ कर भाग निकला। अकेला ही नहीं भागा। अपने बच्चे को, पत्नी को--तीनों एक बड़ी कार की डिग्गी में किस तरह समाए! किस तरह छिपे रहे! किस तरह यात्रा की! अनूठी कहानी है। रोमांचक है। आ गया यहां।
लोग आ रहे हैं दूर-दूर से। और यहां आकर अनास्यूत हो जाते हैं। यहां एक धागे में जुड़ जाते हैं। एक प्रेम का धागा!
लोग चकित होते हैं बाहर से आकर कि कैसे इस कम्यून का काम चलता है। क्योंकि मैं तो कभी देखता नहीं जाकर। मैं तो कुछ भी नहीं देखता जाकर। कहां क्या हो रहा है--मुझे पता नहीं। इस कम्यून के आफिस में मैं आज तक नहीं गया हूं। छह साल में एक बार भी नहीं गया हूं। आश्रम में भी कभी पूरा नहीं घूमा हूं। अपने कमरे से इस स्थल तक, और इस स्थल से अपने कमरे तक!
लेकिन प्रेम का एक धागा--और लोग काम में सक्रिय हैं। न कोई उनको काम में लगा रहा है, न कोई उनकी छाती पर बैठा हुआ है; न कोई उन्हें धक्के मार रहा है कि काम करो--लोग काम में लगे हैं, सृजन में लगे हैं। एक प्रेम ने सबको जोड़ दिया है।
कोई किसी से पूछता नहीं कि हिंदू हो, कि मुसलमान हो, कि ईसाई हो, कि जैन हो, कि बौद्ध हो--क्या हो कि क्या नहीं हो! नीग्रो हो, अमरीकन हो, भारतीय हो--किसी को चिंता नहीं पड़ी। किसी को लेना-देना नहीं है। सारा कचरा हो गया। ये सब व्यर्थ की बातें लोग बाहर कचरा-घर में फेंक आए।
इसे मैं कहता हूं--"सुई"। सुई जोड़ना जानती है--तोड़ना नहीं। और ध्यान में लीन हो रहे हैं। इसे मैं कहता हूं--"मोमबत्ती"। अपने भीतर की ज्योति

जलाने में लगे हैं। इसे मैं कहता हूं--अमृत की खोज। कैसे हम मृत्यु के जो पार है, उसे जान लें--इसका अन्वेषण चल रहा है। और तो यहां कोई दूसरा काम नहीं हो रहा है।
दिनेश भारती, ये तीनों काम यहां हो रहे हैं--मोमबत्ती का, सुई का... । और नेयह जो बाल दिया कि हसन कबेतक मुर्दे में उलझे रहोगे। अब जागो। सुबह हो गई--उठो।

दूसरा प्रश्नः ओशो,
हर ओर सुनाती अपना स्वर,
मैं ढूंढूं तुमको किधर किधर!
पाया न देख बैठी थक कर,
तुम गए जीत मैं गई हार!

वीणा भारती! प्रेम के रास्ते पर हार जाना जीत जाना है। प्रेम के रास्ते पर जिसने जीतने की कोशिश की, वह हारा। बुरी तरह हारा! प्रेम के रास्ते पर जो हारने को राजी हुआ, वह जीता।
यह प्रेम का विरोधाभास है। यह प्रेम का तर्क बड़ा बेबूझ है। यह प्रेम
का गणित बड़ा उलटा है!
साधारण बाहर के जगत में जो जीतने की कोशिश करता है, वह जीतता है। जो हारता है, वह हारता है। जो जीतता है, वह जीतता है। इस भीतर के लोक में, इस परलोक में जो हारता है, वह जीतता है। जो जीतता है, वह हार जाता है।
जिसने अहंकार रख दिया एक तरफ... । पहले तो लगता हैः हार गया। हारता है कोई, तभी अहंकार रखता है। थक जाता है।
तू कहती हैः "हर ओर सुनाती अपना स्वर... ।"
वह अपना स्वर जो था--अपना--वह जो "मैं" का भाव, वही बाधा। तो फिर तू सुनाती फिर। अपना स्वर जब तक सुनाएगी, तब तक तू मुझे न देख पाएगी। "हर ओर सुनाती अपना स्वर"--वह अपनापन पीछे छिपा रहेगा, तो बड़ी सूक्ष्म दीवाल बनी रहती है। तो तू कहती है, "मैं ढूंढूं तुमको किधर-किधर"; फिर! तू किधर-किधर भी ढूंढ, नहीं पाएगी; क्योंकि मैं इधर हूं--किधर-किधर नहीं। इधर देख। और इधर देखना हो, तो चुप हो, अपना स्वर बंद कर।
अब कहती है, "पाया न देख बैठी थक कर!" उस घड़ी ही पाया जाता है, जब कोई थक
कर बैठ जाता है। जब तक देखने की आकांक्षा भी बनी रहती है, तब तक आंखों में धुआं समाया रहता है। देखने की आकांक्षा भी आकांक्षा है। लोग कहते, "दीदार करना है परमात्मा का। परमात्मा को पाना है।" यह भी तृष्णा है, यह भी वासना है।
इसलिए तो बुद्ध ने कहाः छोड़ो परमात्मा को। है ही नहीं परमात्मा। इसीलिए कहा कि है ही नहीं परमात्मा, क्योंकि जब तक है, तब तक तुम तृष्णा करोगे; तब तक तुम्हारे मन में आकांक्षा जगेगी--सुगबुगाएगी। बुद्ध ने तोड़ ही दी जड़ से बात। है ही नहीं--क्या खोज रहे हो--खाक? छोड़ो। बैठ जाओ। आंख बंद करो।
जब तक दीदार की तमन्ना है, तब तक आंखें खोले देखोगे--किधर-किधर; सब तरफ खोजोगे। और वह भीतर विराजमान है। वह "इधर" विराजमान है। और तुम "उधर" देखो, तो कैसे पाओगे?
आंखें तो बाहर देखती हैं। आंखें भीतर नहीं देख सकतीं। आंखें बनी बाहर
को देखने के लिए हैं। आंखों का प्रयोजन बाहर है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात एकदम अपनी पत्नी को झकझोरा और कहाः मेरा चश्मा ले आ। जल्दी कर! पत्नी ने कहाः आधी रात चश्मे का क्या करना है?" पत्नियां भी कुछ ऐसे मान तो लेती नहीं जल्दी से! और आधी रात उसकी नींद खराब कर दी।
और क्या करना है तुमको चश्मे का आधी रात! कोई खाते-बही करनी है! कोई कुरान शरीफ पढ़नी है?

मुल्ला ने कहाः तू देर मत कर। बकवास मत कर। जल्दी चश्मा ले आ। अरे, एक बड़ा सुंदर सपना देख रहा था! मगर धुंधला-धुंधला था। सो मैंने सोचा, चश्मा चढ़ा लूं!
मगर सपने चश्मे चढ़ा कर नहीं देखे जाते। और चश्मा भी चढ़ा लो, तो भी धुंधलापन अगर है सपने में, तो मिट नहीं जाएगा। सपना तक नहीं देखा जा सकता चश्मे से! आंखें भी बाहर, चश्मा भी बाहर। आंख को कहते हैं "चश्म", और उस पर चढ़े हुए को कहते हैं "चश्मा।" दोनों बाहर।
भीतर जब कोई बिल्कुल हार जाता है, ढूंढ-ढूंढ के हार जाता है, थक जाता है, सर्वहारा हो जाता है, तब आंख बंद होती है।
कुछ है जो आंख बंद कर के दिखाई पड़ता है। लेकिन जब तक तृष्णा है, तब तक आंख बंद नहीं होती, खुल-खुल आती है। यह भी इच्छा बनी रहे कि देखना है सत्य को, परमात्मा को--यह भी महत्वाकांक्षा बनी रहे, तो पर्याप्त है भटकाने के लिए।
तू कहती हैः हर ओर सुनाती अपना स्वर, मैं ढूंढूं तुमको किधर-किधर। पाया न देख बैठी थक कर।
यह अच्छा हुआ कि नहीं देख पाई और थक गई। "पाया न देख बैठी थक कर। तुम गए जीत मैं गई हार।" बस, यहीं से शिष्यत्व शुरू होता है।
वीणा! यहीं से असली यात्रा का प्रारंभ है, जब शिष्य थक जाता, हार जाता,
और कह देता है कि लो, तुम सम्हालो। यह रही मेरी डोर। यह रही पतवार अब तुम्हीं मांझी। मैं तो थका। मैं तो हारा। मैं तो बैठ रहा। अब पार लगाओ तो ठीक। डुबाओ तो ठीक।
और यह रास्ता ऐसा अनूठा है कि यहां जो डूबते हैं, वही उबर पाते हैं।
यह मयकदा है, यहां रिंद हैं। यहां सबका साकी इमाम है। यह मयकदा है। पीने वाला तो जब डूब जाता है, बिल्कुल डूब जाता है, मदमस्त हो जाता है; भूल ही जाता है कि मैं कौन हूं; याद ही नहीं रहती कि मैं कौन हूं--तभी यह अपूर्व घटना घटती है।
मुझको तो होश नहीं तुमको शायद खबर हो
लोग कहते हैं कि तुमने मुझे बरबाद किया!
यहां होश वाले चूक जाएंगे। यहां समझदार चूक जाएंगे। यह रास्ता दीवानों का है। यह रास्ता परवानों का है। यहां मिटने वाले पा जाते हैं। यहां डूबने वाले उबर जाते हैं।
कोई समझाए यह क्या रंग है मैखाने का
आंख साकी की उठे नाम हो पैमाने का
गर्म ए शम्मा का अफसाना सुनाने वालो
रस्क देखा नहीं तुमने अभी परवाने का
किसको मालूम थी पहले से खिरद की कीमत आलमे होस पे अहसान है दीवाने का चश्मे साकी मुझे हर गाम पै याद आती है
रास्ता भूल न जाऊं कहीं मैखाने का
अब तो हर शाम गुजरती है उसी कूचे में
ए नतीजा हुआ नासेह तेरे समझाने का
मंजिले गम से तो गुजरना है आसां एक बार
इश्क है नाम अपने से गुजर जाने का
वीणा! तू अपना स्वर सुनाती रही, इसी से चूकती रही। जो भी यहां अपना स्वर सुनाने में लगा है, वह चूकता चला जाएगा। "मंजिले गम से तो गुजरना है आसां एक बार।"... दुख की मंजिल से गुजरना इतना कठिन नहीं। दुख की मंजिल से तो हम गुजरते ही रहे हैं। जन्मों-जन्मों गुजरते रहे हैं। उसके तो हम आदी हैं, परिचित हैं।
मंजिले गम से तो गुजरना है आसां एक बार
इश्क है नाम अपने से गुजर जाने का
जो अपने से पार हो जाता है, जो अपने के पार हो जाता है, जो मैं के पार हो जाता है, जो मैं के पार हो जाता है, मैं से आगे निकल जाता है... । मैं पर अटके हैं हम, तो फिर पहचान न हो पाएगी। "मैं" के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

परवाने का नाच देख शम्मा के पास! कौन समझदार राजी होगा। परवाने को पागल ही कहोगे। मरने चला है! मिटने चला है! शम्मा के पास जाकर मिलेगा क्या? --मौत मिलेगी।
पुराने शास्त्रों में सूत्र है, "आचार्यो मृत्युः।" गुरु के पास जाकर क्या मिलेगा? मौत मिलेगी। क्योंकि गुरु मृत्यु है। उसके पास अहंकार मरेगा। और अभी तो तुम यही जानते हो कि तुम यानी अहंकार। अहंकार मरते-मरते तक बचने की कोशिश करता है। कई तरह की तरकीबें खोजता है।
आनंद किरण ने यह प्रश्न पूछा है। इसमें देखो, तरकीब कहां से आ गई। किरण को पता भी न होगा कि तरकीब इसमें आ गई। प्रश्न बड़ा प्यारा है, भाव भरा है लेकिन कहीं पीछे से स्वर आ गया।
ये गर्व भरा मस्तक मेरा
प्रभु, चरण-धूल तक झुकने दे
झुकने का भाव है, प्यारा है। मगर मस्तक मेरा है!
ये गर्व भरा मस्तक मेरा
प्रभु चरण-धूल तक झुकने दे
मैं ज्ञान की बातों में खोया
और कर्महीन पड़ कर सोया
जब आंख खुली तो मन रोया
जग सोए, मुझको जगने दे
मैं मन के मैल को धो न सका ये जीवन तेरा हो न सका
मैं प्रेमी हूं, इतना न झुका
देखते हैं!
मैं प्रेमी हूं, इतना न झुका
गिर भी जो पडूं तो उठने दे
यह गर्व भरा मस्तक मेरा
प्रभु चरण-धूल तक झुकने दे।
बात प्यारी कही। फूल ही फूल हैं। मगर एक कांटा भी आ गया। और वह कांटा पर्याप्त है बाधा के लिए। जरा सा, इंच भर का फासला पर्याप्त है।
शायद किरण ने जब यह प्रश्न लिखा, तो सोचा भी नहीं होगा कि मैं प्रेमी हूं, इतना न झुका! उसमें भी शर्त है कि इतना मत झुकाओ; इतना मत मिटाओ। कुछ तो बचने दो! मैं प्रेमी हूं, कुछ तो बचने दो! बिल्कुल न डुबाओ। कम से कम सिर तो बचने दो। गले तक डुबाओ, आकंठ डुबाओ। मगर सिर तो मेरा बचने दो!
"मैं प्रेमी हूं, इतना न झुका। गिर भी जो पडूं तो उठने दे।" और अगर गिर जाऊं तो कम से कम उठने तो दो।
फिर-फिर उठ आता है मन। फिर-फिर उठ आता है अहंकार। झुक-झुक कर उठ आता है! अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। इधर से जाता है, उधर से आ जाता है। बाहर के दरवाजे से निकाल कर फेंक दो, वह पीछे के दरवाजे से लौट आता है। दरवाजे से न आने दो, खिड़कियों से आ जाता है। खिड़कियों से न आने दो, रंध्रों से आ जाएगा। कहीं न कहीं से रास्ता खोज लेगा। जरा सी भी रंध्र मिल जाएगी, खपड़ों में जरा सी संध मिल जाएगी--वह जो चाबी के लिए ताले में छेद होता है, उतना भी पर्याप्त है। उतने में से ही सरक आएगा। बड़ा सूक्ष्म है! नसरुद्दीन को एक शराबघर में शराबघर के मालिक को भी इतनी दया आ गई कि उसने धक्के दे कर निकाल दिया--इतना पी गया था, और फिर भी मांग रहा था। जाता ही न था। और दो--और दो। मांग चुकती ही न थी। मन मानता ही नहीं। और--और। शराबघर के मालिक तक को दया आ गई। उसकी तो शराब बिकती थी। मगर उसको भी दया आ गई कि अब यह इतनी पी चुका है कि घर भी न पहुंच सकेगा। धक्के देकर बाहर निकाल दिया। वह दूसरे दरवाजे से भीतर आ गया। शराबघर के कई दरवाजे थे। वह दूसरे दरवाजे से भीतर आ गया और फिर उसने आकर मांग की। मालिक ने उसे फिर धक्के देकर निकाला! वह तीसरे दरवाजे से भीतर आ गया। उसे फिर धक्के देकर निकाला! वह पीछे के दरवाजे से आ गया! और जब उसे धक्का दिया जाने लगा, तो वह बोला कि मामला क्या है! क्या तुमने गांव भर के सभी शराबखाने खरीद लिए हैं? जिस शराबघर में जाता हूं, वहीं से धक्के देकर निकालते हो। तुम ही सभी जगह

बैठे मिल जाते हो! मामला क्या है? वह सोच रहा है--अलग-अलग शराबघरों में जा रहा है। बेहोश! दरवाजे बदल लेता है। मगर बात वही होकर रहेगी। वही मिलेगा भीतर।
किरण! तुमने बात तो प्यारी पूछीः
"यह गर्व भरा मस्तक मेरा
प्रभु, चरण-धूल तक झुकने दे।"
मगर कहीं शर्त लगा रखी है। उतनी शर्त भी नहीं झुकने देगी।
तुम कहते होः मैं प्रेमी हूं, इतना न झुका! "इतना!" झुकने में भी शर्त लगाओगे? फिर चूक हो जाएगी!
"गिर भी जो पडूं तो उठने दे।" उठने की बात ही छोड़ो। गिरे तो गिरे। फिर उठना क्या। झुके तो झुके। फिर उठना क्या! फिर बार-बार क्या उठना। डूबे तो डूबे। फिर निकलना क्या! हारो। अब हारो। समर्पण संन्यास है।
वीणा! अच्छा हुआ। कहती है तू, "पाया न देख बैठी थक कर, तुम गए जीत मैं
गई हार।" बस, पहला कदम उठा। और पहला कदम ही कठिन है। फिर तो सब आसान हो जाता है।
परवाने की भाषा समझनी होती है संन्यासी को, शिष्य को।
गर्म ए शम्मा का अफसाना सुनाने वालो
रस्क देखा नहीं तुमने अभी परवाने का
जब नाचता है परवाना शमा के चारों तरफ, देखी उसकी मौज! देखी उसकी मस्ती! ऐसा नहीं कहता, "इतना न जला, मैं प्रेमी हूं।" जल ही जाता है। पूरा ही जल जाता है। दग्ध हो जाता है।
किसको मालूम थी पहले से खिरद की कीमत
आलमे होश पे अहसान है दीवाने का
यह जो परम सत्य है, किसको इसकी कीमत मालूम है? पहले से कीमत मालूम होती, तो समझदार भी खरीद लेते। मगर इसकी कोई कीमत नहीं है। कीमत की भाषा में यह आता नहीं है। नहीं तो सब समझदार, तथाकथित चालबाज, होशियार, तर्कशास्त्री, गणितज्ञ सत्य को पा लेते।
किसको मालूम थी पहले से खिरद की कीमत
आलमे होश पे अहसान है दीवाने का।
वह तो दीवानों ने बिना कीमत पूछे, बिना फिकर किए कि क्या होगा परिणाम, क्या होगा अंजाम--कूद पड़े आग में। जल गए--और पा लिया। मिट गए--और पा लिया! इसलिए जो तथाकथित समझदार हैं, उन पर बड़ा अहसान है दीवानों का।
पहला कदम है समर्पण और दूसरा कदम है उपलब्धि। दो कदम में यात्रा पूरी
हो जाती है। या यूं कहोः एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--समर्पण और उपलब्धि।
इधर खोया--इधर पाया। क्षण की भी देर नहीं होती।
वीणा! उठ मत आना। थक कर बैठ गई, अब फिर इधर-उधर मत देखने लगना। फिर किधर-किधर न भटकने लगना।
यह उपलब्धि कुछ ऐसी नहीं है, जो प्रयास से होती है। यह हार से होती है।
जब तक प्रयास है, तब तक अहंकार है। जब तक चेष्टा है, तब तक मन है।
यही धन्यभाग है कि एक दिन आदमी थक जाता है। मन थक जाता है। बैठ रहता है। बुद्ध ने छह वर्ष तक सतत चेष्टा की। किधर-किधर न खोजा। मगर किधर-किधर में भटके रहे। फिर जब थक गए और एक सांझ थक कर बैठ गए और कहा कि फिजूल है सब खोज। कुछ मिलना नहीं है। न संसार में कुछ है, न मोक्ष में कुछ है। है ही नहीं कुछ। सब व्यर्थ है।
स्वभावतः संसार भी देख चुके थे; सम्राट का जीवन भी देख चुके थे। और छह वर्षों में तपस्वी का, योगी का जीवन भी देख लिया। न भोग में कुछ है, न योग में कुछ है। न भोग से मिला, न योग से मिला। है ही नहीं। तो जब है ही नहीं, तो करना क्या! और उसी रात घटना घटी। उस रात गहन विश्राम में सो गए। अब कोई खोज न थी। कुछ पाना न था। विश्राम ही विश्राम था। कोई तनाव न था। कोई चिंता न थी।
सुबह जब उठे, और रात का आखिरी तारा डूबता हुआ देखा। बस, उस तारे को डूबते हुए देखना--उसकी आखिरी झिलमिलाहट! यह गया, यह गया, यह गया! ऐसे ही भीतर अहंकार चला गया। क्योंकि जब कुछ खोज ही न रही, जब कुछ पाने की

आकांक्षा न रही, जब कुछ पाने को ही न बचा; जब हार परिपूर्ण हो गई--तो यह गया, यह गया, यह गया! जैसे तारा डूबता है सुबह--आखिरी तारा। वह जो थोड़ी बहुत रेख भी रह गई होगी अहंकार की, वह चली गई। उसी क्षण बोध को उपलब्ध हो गए। खोज-खोज कर जो न मिला था, वह बिन खोजे मिला। प्रयास से जो न मिला था, वह विश्राम से मिला। चेष्टा से, श्रम से जो न मिला था, वह विराम से मिला। दौड़ कर जो न मिला था, वह बैठ कर मिला। आपाधापी से न मिला था। किधर-किधर न भटके थे! वह "इधर" मिला! वे जब सब छोड़ कर बैठ गए, तो होगा क्या? जीवन-चेतना, जीवन-ऊर्जा जो सब जगह बिखरी थी, सिमट आई। सब न्यस्त स्वार्थ गिर गए। संसार भी गिर गया। मोक्ष भी गिर गया। कोई आकांक्षा न रही--इस संसार की या उस संसार की। महत्वाकांक्षा मात्र समाप्त हो गई। तो अब जीवन-ऊर्जा कहां भटके! लौट आई अपने पर। बैठ रही भीतर। केंद्र पर समाहित हो गई। किरणें लौट आईं सूरज की वापस। विस्तार सिकुड़ आया। सब केंद्र पर बैठ रहा। वहीं उपलब्धि है। हार में जीत है।

आखिरी प्रश्नः ओशो!
सांसों की सरगम पे नाचूं मैं छमछम
मौजों की लहरों पे बरसूं मैं रिमझिम।
गाती हूं मैं गुनगुनाती हूं मैं
सब कुछ सुहाना लगता है
मधुबन मधुबन लगता है!
शाम और सबेरा, दीप और अंधेरा
उदासी का मेला, खुशियों का डेरा
बहती हूं मैं गुनगुनाती हूं मैं
सब कुछ प्यारा लगता है
यह जग न्यारा लगता है!
सन्नाटे में डूबना, हंसना और रोना
कभी महावीर को ध्याना, कभी मीरा को गाना
वहां तुम्हें पाती हूं मैं, खिलखिलाती हूं मैं
सब कुछ प्यारा लगता है
अपना अपना लगता है!
आपकी कृपा से आज मैं भाग्यवान हूं। हे करुणावान!

गुणा! जैसा तुझे हो रहा है, ऐसा ही सभी को हो--ऐसा ही आशीष देता हूं।

आज इतना ही।

ज्यूं था त्यूं ठहराया
चौथा प्रवचन

संन्यास, सत्य और पाखंड

पहला प्रश्नः ओशो, जीवन की शुरुआत से सभी को यही शिक्षा मिलती रहती है
कि सच बोलो। अच्छे काम करो। हिंसा न करो। पाप न करो। लेकिन हम संन्यासी तो इसी रास्ते पर जाने की कोशिश करते हैं, फिर हमारा विरोध क्यों? इस विरोधाभास को समझाने की कृपा करें।

रजनीकांत! मनुष्य-जाति आज तक विरोधाभास में ही जी रही है। इस विरोधाभास को ठीक से समझो, तो मुक्त भी हो सकते हो।
विरोधाभास यह है कि जो तुम से कहते हैं--"सत्य बोलो", वे भी सत्य नहीं बोल रहे हैं। उनका जीवन कुछ और कहता है। उनकी वाणी कुछ और कहती है। उनके व्यक्तित्व में पाखंड है। और बच्चों की नजरें बड़ी साफ होती हैं। बच्चों के पास दृष्टि बड़ी निखरी होती है। होगी ही? ताजी होती है। बच्चे शीघ्र ही देख लेते हैं कि कहना कुछ--करना कुछ!
बच्चों से कहा जाता हैः "ईश्वर में विश्वास करो।" एक तरफ कहा जाता है, "सत्य से डिगो मत।" दूसरी तरफ कहा जाता है, "विश्वास करो।" विश्वास का अर्थ ही होता है--असत्य। ईश्वर को जाना नहीं--और विश्वास करो! यह तो असत्य का आधार हो गया। यह तो स्रोत हो गया, जहां से बहुत असत्य जन्मेंगे।
कौन मां-बाप अपने बच्चों से कहता है, "ईश्वर को जानना--तब मानना।" हर मां-बाप अपने बच्चों को कहता है, "मानो--तो जानोगे।" और मानने का अर्थ झूठ होता है। मानने का अर्थ होता है--जिसे जाना नहीं उसे मान लेना। जिसे देखा नहीं, उसे मान लेना। जिसकी कोई प्रतीति नहीं--उसे मान लेना।
अंधा आदमी प्रकाश को मानता है--जानता नहीं। आंख वाला जानता है; मानने
की जरूरत नहीं।
आंखें तो नहीं दी जातीं--विश्वास दिया जाता है। और साथ ही शिक्षा चल रही है कि "सत्य का अनुसरण करो। सत्य ही परमात्मा है।" यह भी वे ही लोग कह रहे हैं, जो कहते हैं कि परमात्मा में विश्वास करो और विश्वास अर्थात झूठ। श्रद्धा तो अनुभव से पैदा होती है। विश्वास अज्ञान को छिपाने की चेष्ठा है। विश्वास बहुत सस्ता है, उधार है, बासा है। ये विश्वासियों की जमातों से तो जमीन भरी है। कोई हिंदू, कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई जैन--ये सब विश्वासी हैं, सब अंधे। किसी ने देखा नहीं। किसी ने जाना नहीं।
जो तुम्हें समझा रहे हैं, उन्होंने भी नहीं देखा, उन्होंने भी नहीं जाना, वे भी झूठ बोल रहे हैं। मगर इस ढंग से बोल रहे हैं कि जैसे जाना हो। इस बल से बोल रहे हैं, जैसे यह उनका आत्म-साक्षात्कार हो। बेझिझक बोल रहे हैं!
बाप बेटे से कहता है, "सच बोलो।" लेकिन बेटा देखता है कि बाप जीता तो झूठ है! कभी इसी बेटे को कह कर भेज देता है; द्वार पर कोई खड़ा है--कि कह दो कि "पिता जी घर में नहीं हैं?" बेटा देखता है कि "मामला क्या है? सच बोलूं कि पिता जो कहते हैं वह मानूं?"
यह भी सिखाया जा रहा है--"आज्ञाकारी रहो। आज्ञा मानो।" और यह भी सिखाया जा रहा है--"सच बोलो।" पर सवाल यह है कि कभी आज्ञा और सत्य विपरीत हो सकते हैं। फिर क्या करें? कभी आज्ञा ऐसी हो सकती है कि अगर मानें, तो झूठ होता है; सत्य का खंडन होता है। और अगर सत्य बोलें, तो आज्ञाकारिता नष्ट होती है। दुविधा खड़ी हो जाती है।
बच्चे को तुम उलझा रहे हो, सुलझा नहीं रहे हो। कहते तो होः हिंसा न करो। और बच्चा देखता है--तुम्हारे जीवन में हिंसा ही हिंसा है! तुम्हारी सारी कठोरता--उससे छिपाई नहीं जा सकती। माना कि तुम पानी छान कर पीते होओगे। पानी छान कर पीने में क्या हर्जा है! लाभ ही लाभ है। स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा है। हल्दी लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए! पानी छान कर पी लिया--और खून बिना छाने पी जाते हो!

जैनों की शिक्षा है--"अहिंसा परमोधर्मः।" और जितना शोषण जैन कर सकते हैं, कोई दूसरा नहीं कर सकता। तुमने जैन भिखारी देखा? और सब तरह के भिखारी देखे होंगे--हिंदू, मुसलमान। लेकिन तुमने जैन भिखारी देखा? "जैन भिखारी" होता ही नहीं।
जैनों की संख्या कितनी है भारत में? कुल पैंतीस लाख। सत्तर करोड़ लोगों में पैंतीस लाख कोई संख्या है! सागर में बूंद। लेकिन फिर भी जैन दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि धन है। धन कहां से आता है? धन कैसे आता है? कोई जैन उत्पादन तो करते नहीं। ब्याज खा सकते हैं। पानी छान कर पी लेते हैं। खूब बिना छाने पी जाते हैं! बेटा यह देखता है।...
तुमने नचिकेता की कथा तो जानी। कठोपनिषद उसी कथा से शुरू होता है। बूढ़ा बाप यज्ञ किया है और दान कर रहा है। नचिकेता, छोटा सा बच्चा, उसके पास ही बैठा है। बूढ़ा बाप समृद्ध है, सम्राट है, और दान क्या कर रहा है! जिन गायों ने दूध देना बंद कर दिया, वे दान कर रहा है; उन गायों को दान कर रहा है! तो बेटा देखता है कि यह क्या धोखा हो रहा है! यह कैसा दान? गाएं जो दूध देती ही नहीं--यह दान हुआ, कि जिसको दे रहे हो, उसकी फांसी लगा रहे हो?
तो वह पूछता है बाप को कि आप यह क्या कर रहे हैं? ये गाएं दूध तो देती नहीं, इनको दान देने से क्या फायदा?
बाप तिलमिला जाता है। बाप कभी बरदाश्त नहीं करता। बेटे की स्वच्छ दृष्टि देख पा रही है कि मामला क्या है यह! यह कैसा दान? क्रोध में बाप कहता है, ज्यादा बकवास मत कर, नहीं तो तुझे भी दान कर दूंगा!
नचिकेता सीधा सा बच्चा, वह यही पूछने लगा बार-बार कि मुझे कब दान करिएगा? अब तो यज्ञ भी समाप्त हुआ जा रहा है, मुझे कब दान करिएगा? मुझे किसको दान करिएगा? बाप ने क्रोध में कहाः तुझे मृत्यु को दान कर दूंगा। अब यह क्रोधी आदमी--यह दान कर रहा है; यज्ञ कर रहा है! और इसके खरीदे हुए ब्राह्मण, पंडित-पुरोहित यशगान कर रहे हैं! स्तुतियां गा रहे हैं--कि तुम महादानी हो!
वह बेटा देखता है--यह कैसा दान! उसकी समझ के बाहर है। क्योंकि अभी उसके पास देखने वाली दृष्टि है। बड़ों को जो नहीं दिखाई पड़ता, वह बच्चों को दिखाई पड़ जाता है।
बाप का क्रोध--ऐसा क्रोध कि बेटे को कहता है कि मृत्यु को दे दूंगा। प्रसिद्ध कथा है कि एक बहुत चालबाज आदमी ने एक सम्राट को कहा कि आपके पास सब है। सारी दुनिया की दौलत है। जो भी इस पृथ्वी पर सुंदरतम है, आप उसके मालिक हैं। लेकिन एक चीज की कमी रह गई। कहें तो पूरी कर दूं।
सम्राट उत्सुक हुआ। उसने कहाः किस चीज की कमी रह गई?" वह हमेशा उत्सुक
था इस बात में कि किसी चीज की कमी न रह जाए। कौन उत्सुक नहीं है! फिर वह तो सम्राट था--चक्रवर्ती सम्राट था। सारी पृथ्वी जीत चुका था। उसके भंडारों में हीरे-जवाहरात भरे थे। दुनिया में किसी के पास इतनी संपदा न थी। तो कोई चीज की कमी रह गई--यह बात उसे अखरी। उसके अहंकार को चोट पड़ी। उसने कहाः बोल, कौन सी चीज की कमी है? जो भी मूल्य हो, मैं चुकाने को राजी हूं।
उसने कहाः मूल्य तो बहुत लगेगा।
उसने कहाः उसकी फिकर ही मत कर। तू बोल, चीज कौन सी है, जिसकी कमी है?
उस चालबाज आदमी ने कहाः रहा होगा कोई राजनीतिज्ञ, कोई कूटनीतिज्ञ कोई बिल्कुल छंटा हुआ बदमाश--उसने कहा कि महाराज, यह शोभा नहीं देता कि आप साधारण मनुष्यों जैसे वस्त्र पहनें। ये वस्त्र तो कोई भी पहन रहा है। आपके लिए तो स्वर्ग से वस्त्र ला सकता हूं देवताओं के। वही आपके योग्य हैं।
सम्राट को थोड़ा तो शक हुआ। वह भी कुछ कम चालबाज तो न था। देवताओं के वस्त्र!
उस आदमी ने कहा कि आप सोचते होंगे कि यह बात सच नहीं। करके दिखा दे सकता हूं। ला सकता हूं। लेकिन खर्च बहुत है!
सम्राट ने कहा कि खर्च की कोई फिकर नहीं। लेकिन अगर धोखा देने की कोशिश की, तो गर्दन उतार लूंगा। तो यह पड़ोस का महल है मेरा, इसमें चला जा। क्या करना है? कितना खर्च है?

उसने कहाः खर्च काफी लगेगा। क्योंकि वहां भी रिश्वत चलती है।
द्वारपाल से लेकर पहुंचते-पहुंचते देवताओं के वस्त्रों तक बहुत खर्च हो जाएगा। करोड़ों का खर्च है। खर्च की बात करते हों, तो यह बात ही छोड़ दें।
खर्च की तो पूछें मत। जितना मांगूंगा, उतना देना पड़ेगा।
सम्राट ने कहाः ठीक है। लेकिन ध्यान रखनाः भागने की कोशिश मत करना।
इसी महल के भीतर रहना पड़ेगा। बाहर पहरे लगवा दिए, फौजों के घेरे डलवा दिए कि यह आदमी भाग न सके। और रोज वह आदमी कभी करोड़ मांगे, कभी दो करोड़ मांगे।
पता नहीं अंदर क्या करता था--द्वार-दरवाजे बंद कर के। पर सम्राट ने कहाः जाएगा कहां भाग कर! धन भी कहां ले जाएगा!
और पंद्रह दिन बाद उसने खबर भेजी कि वस्त्र ले आया हूं। दरबार भर गया।
वह आदमी एक बड़ी सुंदर मंजूषा में वस्त्र ले कर आया। उसने आकर मंजूषा रखी और सम्राट से कहाः वस्त्र तो ले आया। लेकिन देवताओं ने कहा कि एक शर्त है। ये साधारण वस्त्र नहीं--देवताओं के वस्त्र हैं। ये उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे, जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं!
सम्राट ने कहाः इसमें क्या अड़चन है। यह शर्त स्वीकार है।
उसने पेटी खोली। सम्राट को कुछ उसमें दिखाई न पड़ा। पेटी बिल्कुल खाली थी; दिखाई पड़ता भी कैसे? उसने कहाः महाराज, आपकी पगड़ी दें और यह देवताओं की पगड़ी लें। खाली हाथ! अब सम्राट अगर यह कहे कि मुझे दिखाई नहीं पड़ता कि इसमें कहां पगड़ी है--तो सिद्ध होगा कि अपने बाप से पैदा नहीं हुआ। बड़ा हैरान हुआ। और दरबारी एकदम से प्रशंसा करने लगे कि अहा! क्या पगड़ी है! किरणों का जाल! चांद-तारे जड़े हैं! ऐसी पगड़ी नहीं देखी। धन्य हो गए देख कर। सब दरबारियों को दिखाई पड़ रही है! सम्राट ने कहाः अब अगर मुझे दिखाई न पड़े, तो जाहिर है कि मैं अपने बाप से पैदा नहीं हुआ! सो देखनी पड़ी पगड़ी! जो पगड़ी दिखाई पड़ती थी, उसे बेईमान को दे दी। उसने उसे तो पेटी में डाल दिया। और जो पगड़ी थी ही नहीं, वह सम्राट के सिर पर रख दी और कहा कि महाराज, अब शोभा देखते बनती है! वर्णन नहीं हो सकता इस शोभा का!
तालियां पिट गईं, क्योंकि दरबारियों ने भी एक दूसरे से होड़ बांधी। किसी को दिखाई नहीं पड़ रही थी पगड़ी। और जो थोड़ा झिझके--झिझकने ही से साबित हो जाए। तो तालियां जोर से पिटीं और एक दूसरे से होड़ लग गई प्रशंसा में, क्योंकि जो जरा चुप रह जाए, कहीं शक हो जाए कि यह आदमी चुप क्यों खड़ा है! और सबको यह लगा--सबको भीतर यह लगा--कि मुझे ही भर नहीं दिखाई पड़ रही है! अब बेहतर यही है कि चुप रहो। इस संबंध में कि कहना कि मुझे नहीं दिखाई पड़ रही, क्यों अपनी बदनामी करनी! मरे बाप को बदनाम करना! मां को बदनाम करना! सारी प्रतिष्ठा खो जाएगी। दरबार भी खो जाएगा। दरबार से निकाल बाहर किया जाऊंगा।
फिर कमीज भी उतर गया। बनियान भी उतर गई। धोती भी उतर गई। अब सम्राट खड़ा है--सिर्फ अपने लंगोटी बांधे हुए! और क्या प्रशंसा हो रही है वस्त्रों की! और जब उसने कहा कि महाराज, लंगोटी भी दे दें! तब तो उसे बहुत घबड़ाहट हुई। पसीना भी आने लगा। मगर अब करे क्या! अब मजबूरी थी। लंगोटी भी गई! उसने पेटी में सब बंद कर लिया और कहा कि कुछ भेंट मिल जाए।... और देवताओं ने कहा कि पहली बार पृथ्वी पर ये वस्त्र जा रहे हैं। ऐसा कभी हुआ नहीं। फिर कभी होगा नहीं। यह अभूतपूर्व घटना है। इसलिए जुलूस निकलना चाहिए। रथ तैयार किया जाए!
और जनता बाहर इकट्ठी है और गांव भर में राजधानी में खबर पहुंच गई। दूर-दूर से लोग आ गए थे। राजधानी के राजपथ के दोनों तरफ करोड़ों लोग खड़े थे प्रतीक्षा में कि सम्राट बाहर आएं। आवाजें आ रही थीं कि सम्राट के दर्शन करने हैं! कौन नहीं देखना चाहता देवताओं के वस्त्र!
और वह चालबाज आदमी रथ पर चढ़ कर डुंडी पीटता गया कि ये वस्त्र उन्हीं
को दिखाई पड़ेंगे, जो अपने बाप से पैदा हुए हैं। निश्चित ही सभी अपने बाप से पैदा हुए हैं। सबको वस्त्र दिखाई पड़े। और क्या तालियां पिटीं! और सब देख रहे कि सम्राट बिल्कुल नंगा बैठा है। ठंड के दिन हैं; ठिठुर रहा है। दांत बज रहे हैं! मगर यह शोभायात्रा चल रही है!

मगर सब प्रशंसा कर रहे हैं। सिर्फ एक छोटा सा बच्चा अपने बाप के कंधे
पर बैठ कर आ गया था देखने। उसने अपने बाप से कहा कि दद्दू! सम्राट बिल्कुल नंगा है! उसके बाप ने कहाः चुप नालायक! उल्लू के पट्ठे! बिल्कुल चुप!"
मगर बेटा बोलाः चुप कैसे रहूं? और हैरानी मुझे इससे भी हो रही है कि सब लोग वस्त्रों की प्रशंसा कर रहे हैं। वस्त्र तो मुझे दिखाई नहीं पड़ते। आपको दिखाई पड़ते हैं? उसने कहाः हां, दिखाई पड़ते हैं? क्या सुंदर वस्त्र हैं। तुझको भी दिखाई पड़ेंगे, जरा उम्र बड़ी होनी चाहिए। अभी तू नालायक है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ते। अभी तू बच्चा है!
सिर्फ एक बच्चे ने कहा था उस भीड़ में कि सम्राट नंगा है। बच्चों के पास आंख होती है, क्योंकि अभी धोखाधड़ी नहीं सीखे; राजनीति नहीं सीखे; चालबाजी नहीं सीखे; गणित नहीं सीखे जिंदगी का। जिंदगी का गणित धोखे का गणित है।
रात तारों से बच के चलता हूं
गमगुसारों से बच के चलता हूं
मुझको धोखा दिया सहारों ने
अब सहारों से बच के चलता हूं
ये जो तुम्हें शिक्षा दे रहे हैं, ये जो तुम्हारे सहारे हैं, इनसे जरा सावधान! जरा सजग! इनकी शिक्षा में ही भ्रांति है। ये खुद पाखंडी हैं, और तुम्हें भी पाखंड में घसीट रहे हैं।
जरूर तुम्हें कहा गया है, सच बोलो। क्यों? क्यों सच बोलो? इसलिए सच बोलो कि सच बोलने से स्वर्ग मिलता है; पुण्य मिलता है! सत्य भी साधन है! वह भी लाभ के लिए है। सत्य भी अंत नहीं, साध्य नहीं--साधन है! और जब सत्य साधन होता है, तो अड़चन हो जाती है।
वहां तक तो आदमी सत्य बोलेगा, जहां तक लाभ होने की संभावना है। और जहां हानि होने लगेगी, वहां क्या करेगा? लाभ के लिए सत्य बोलता था। अब लाभ होता नहीं। अब झूठ से लाभ हो रहा है, तब आदमी क्या करे?
और यही मां-बाप, यही शिक्षक, यही गुरु, यही महात्मा--हमेशा सिखा रहे हैं कि हमेशा लाभ पर दृष्टि रखो। चाहे लौकिक लाभ हो, चाहे पारलौकिक लाभ हो--लाभ में फर्क नहीं। लाभ यानी लोभ का विस्तार।
क्या तुम सोचते होः तुम सत्य बोलोगे, अगर सत्य बोलने का परिणाम नरक में पड़ना हो? नहीं। तुम सत्य बोलते हो, क्योंकि सत्य बोलने से स्वर्ग मिलता है। स्वर्ग में क्या मिलेगा? अप्सराएं मिलेंगी। उर्वशियां मिलेंगी। मेनकाएं मिलेंगी।
क्या मजा है! यहां स्त्रियों से भागो, क्योंकि स्त्री नरक का द्वार है। और स्त्री से भाग कर स्वर्ग में और सुंदर स्त्रियां पाओगे! यह कैसा उलटा गणित है? यहां त्यागो इच्छाओं को--और स्वर्ग में क्या होगा? कल्पवृक्ष मिलेंगे! जिनके नीचे बैठ कर इच्छा करते ही पूरी हो जाती। यह क्या बेईमानी है!
मुसलमानों का स्वर्ग, हिंदुओं का स्वर्ग, ईसाइयों का स्वर्ग-- विचारणीय है--बड़ा विचारणीय है। सारे धर्मों का स्वर्ग विचारणीय है। क्योंकि उससे पता चलता है कि तुम्हारे संतों, महात्माओं की असली इच्छा क्या है! स्वर्ग का पता नहीं चलता; सिर्फ तुम्हारे महात्माओं के भीतर दबी हुई वासनाओं का पता चलता है।
कल्पवृक्ष हिंदुओं का! यहां तपश्चर्या कर रहे हैं। सिर के बल खड़े हैं। शरीर को गला रहे हैं। किस आशा में? इस आशा में कि आज नहीं कल सभी इच्छाओं की तृप्ति हो जाएगी। अरे, जिंदगी तो चार दिन की है; गुजर ही जाएगी। भूखे भी रहना पड़ा; नंगे भी रहना पड़ा; तप भी करना पड़ा--गुजर ही जाएगी। कोई बहुत लंबी नहीं है। और फिर अनंत काल तक--अनंतकाल तक--ख्याल रखना-- कल्पवृक्ष के नीचे मजा ही मजा है! जो इच्छा करोगे, तत्क्षण पूरी हो जाएगी! मुसलमानों के स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं। यहां शराब पर पाबंदी है और वहां शराब के झरने बह रहे हैं। डुबकी लो! तैरो! पीयो-पिलाओ। कुछ खर्च नहीं लगता। यहां स्त्रियों से तुम्हारा साधु-संन्यासी बच-बच कर चलता है और वहां पाएगा क्या? कांचन-देह, स्वर्ण जैसी देह जिनकी--ऐसी सुंदर

अप्सराएं, जो सदा युवा रहती हैं, जो कभी बूढ़ी नहीं होतीं। जिनके शरीर से पसीना नहीं निकलता। उस अभीप्सा से भरा है।
स्वर्ग यानी क्या? "स्वर्ग" शब्द तो कंबल की तरह है। उसके भीतर जरा झांककर देखो, क्या-क्या छिपा है। स्वर्ग तो पोटली है। पोटली खोलो, तब तुम समझोगे। स्वर्ग शब्द के धोखे में मत पड़ जाना। उसके भीतर क्या-क्या छिपा है!
मुसलमानों के स्वर्ग में, चूंकि मुसलमान देशों में समलैंगिकता, होमोसेक्सुअलिटी बहुत प्रचलित रही है, तो वहां सुंदर लड़कियां ही नहीं मिलेंगी, सुंदर लड़के भी मिलेंगे! हूरें ही नहीं--गिल्में भी! क्या गजब है! यहां जो समलैंगिकता में पड़ा है, उस जैसा पापी नहीं--विकृत। और स्वर्ग में देवता क्या कर रहे हैं? लड़कियां ही नहीं, लड़कों को भी भोग रहे हैं! शर्म भी नहीं आती!
पूछो ईसाइयों से कि उनके स्वर्ग में क्या है? सारे स्वर्गों को छान डालो और तुम वही पाओगे, जो तुम्हारे संतों-महात्माओं ने यहां दबाया है, उसको ही वहां उभारा है। जो यहां छोड़ा है, उसको हजार-करोड़ गुना कर के वहां पा लेना चाहा है।
हिंदू कहते हैं, यहां एक पैसे का दान करो; एक रुपए का दान करो--करोड़ गुना मिलेगा स्वर्ग में। यह सस्ता सौदा है। करने जैसा है। यह किसी भी व्यवसायी को जंचेगा। किस धंधे में ऐसा मिलता है--एक रुपया लगाओ और करोड़ रुपए! सिर्फ लाटरी में मिलते हैं। स्वर्ग न हुआ--लाटरी हो गई! और तुम्हारे महात्मा लाटरी में लगे हुए हैं।
ये कहते तो हैं, "सच बोलो", मगर सत्य से इन्हें प्रयोजन नहीं। इनसे पूछो, नरक देखा है? स्वर्ग देखा है? ईश्वर देखा है? छोड़ो--ईश्वर, स्वर्ग, नरक--बहुत दूर की बातें हो गईं। आत्मा देखी है? जो भीतर ही है; जो तुम स्वयं हो--उसको पहचाना है? और "सत्य बोलो!" और ये आत्मा का उपदेश दे रहे हैं लोगों को। और ईश्वर का उपदेश दे रहे हैं। और स्वर्ग-नरकों की बातें बता रहे हैं लोगों को।
मंदिरों में नक्शे टंगे हैं! जो जमीन का नक्शा नहीं बना सके, उन्होंने स्वर्ग-नरक के नक्शे बना लिए हैं! स्वर्ग-नरक का नक्शा बनाना आसान है। जमीन का नक्शा बनाना मुश्किल बात थी। यह क्या मजा है!
जैनों के पास नक्शे हैं स्वर्ग और नरक के। लेकिन पृथ्वी का कोई नक्शा नहीं था। क्योंकि पृथ्वी का नक्शा बनाने के लिए तो विज्ञान को आना पड़ा, तब पृथ्वी का नक्शा बना। पृथ्वी के नक्शे में झूठ नहीं चल सकता था। पकड़ जाते। स्वर्ग-नरक में तो मौज है। जिसका दिल आए, जिसका जी चाहे, जैसा चाहे!
एक छोटा सा बच्चा बड़ी तल्लीनता से तसवीर बना रहा था, फर्श पर फैलाए हुए सारे कागजात, रंग बिखेरे हुए। और बड़ा तल्लीन था। उसके पिता ने पूछाः बड़े तल्लीन हो, क्या कर रहे हो? उसने कहाः ईश्वर की तसवीर बना रहा हूं! बाप ने कहाः हद्द हो गई! आज तक कोई ईश्वर की तस्वीर नहीं बना पाया। ईश्वर कैसा है--यह भी पता नहीं। बेटे ने कहाः ठहरो। मेरी तसवीर पूरी हो जाए; पता चल जाएगा कि ईश्वर कैसा है। जरा तसवीर पूरी हो जाने दो; रंग भर लेने दो, फिर तुम देख लेना कि ईश्वर कैसा है!
ईश्वर की तसवीर कोई भी बना सकता है और विवाद हो नहीं सकता। क्या विवाद करोगे! मूल का ही पता नहीं है, तो तस्वीर को कैसे जांचोगे कि सही कि गलत? जैन कहते हैं--सात नरक हैं। हिंदू तो एक ही नरक से राजी हैं। जैन कहते हैं--सात नरक हैं! उस समय जब महावीर ने जन्म लिया, संजय वेलट्ठिपुत्त नाम का एक बहुत अदभुत विचारक था। जब उससे किसी ने जाकर कहा कि जैन कहते हैं कि सात नरक हैं! उसने कहा कि गलत। सात सौ नरक हैं, कैसे तय करोगे कि एक हैं कि सात हैं कि सात सौ हैं?
राधा स्वामी संप्रदाय के मानने वाले एक व्यक्ति ने मुझे आकर पूछा कि आपका क्या ख्याल है! हमारे गुरुओं का वचन है कि स्वर्ग चौदह खंडों में बंटा है। चौदह खंड हैं। अंतिम खंड--सत्य खंड--सच्च खंड--चौदहवां। और सिर्फ हमारे गुरु चौदहवें तक पहुंचे हैं। बाकी अच्छे लोग हुए। लेकिन कृष्ण भी

बस सातवें तक पहुंचे। राम भी बस छठवें तक पहुंचे। महावीर और बुद्ध पांचवें तक पहुंचे। मोहम्मद और जीसस तो चौथे ही तक पहुंचे।
सिर्फ इनके गुरु, जिनका नाम भी किसी को पता नहीं, वे भर चौदहवें तक पहुंचे!
मैंने कहा कि तुम्हारे गुरु बिल्कुल ठीक कहते हैं। वे चौदहवें ही में हैं। उन्होंने कहाः मतलब!
मैंने कहा कि पंद्रह हैं। मैं पंद्रहवें में बैठा हुआ हूं। उनको देख रहा हूं लटका हुआ--चौदहवें में! वे मुझसे पूछते हैं बार बार कि पंद्रहवें तक कैसे आऊं?
उन्होंने कहाः आप भी क्या बात कर रहे हैं! अरे, किसी ने पंद्रह पहले बताए नहीं!
मैंने कहाः बताते ही वे कैसे? जब पंद्रह तक कोई पहुंचेगा, तभी बताएगा
न। जैसे तुम्हारे गुरु ने चौदह बताए--जब चौदहवें तक पहुंचे। अब बेचारे महावीर कैसे बताएं! वे अगर पांचवें ही में अटके हैं... । कोई छठवें में अटका है। कोई सातवें में अटका है। कृष्ण से पूछोगे चौदहवें की, तो वे कैसे बताएंगे! सातवें की बता सकते हैं बहुत से बहुत। अब मैं पंद्रहवें तक पहुंचा, तो पंद्रहवें की बता रहा हूं। और तुम्हारे गुरु चौदहवें में ही अटके हैं। वे मुझसे पूछते हैं बार-बार कि पंद्रहवें तक कैसे आएं!"
वे तो बड़े नाराज हो गए। मैंने कहाः तुम थोड़ा सोचो, ये बच्चों जैसी बातों में उलझे हुए हो। बचकानी बातों में उलझे हुए हो। और इसको ज्ञान समझते हो! और बच्चों को समझा रहे हो कि सच बोलो। अच्छे काम करो।
कौन सा काम अच्छा है? किस काम को तुम अच्छा कहते हो? किस कसौटी पर कसते हो? गऊ-माता की सेवा करना अच्छा है? तो गऊ-भक्त हैं इस देश में! आदमी को जीना मुश्किल हो रहा है--गऊ की चिंता पड़ी है! और गऊएं मर रही हैं, सड़ रही हैं। जैसा इस देश में सड़ रही हैं--दुनिया में कहीं नहीं सड़ रही हैं! दुनिया भर में गाएं स्वस्थ हैं, सुंदर हैं। कितना दूध देती हैं दुनिया में गाएं! और ये गऊ-माता के भक्त--पुरी के शंकराचार्य से लेकर गुजरात के शंभू महाराज तक--ये सारे के सारे गऊ-माता के भक्त। और दूध गाय देती है आधा सेर! स्वीडन में देती है चालीस सेर। और कोई गऊ-भक्त नहीं। गऊएं भी खूब हैं! बेटों पर नाराज होती हैं। भक्तों पर बिल्कुल प्रसन्न ही नहीं हैं।
भक्ति से क्या खाक कुछ होगा? लेकिन किसी की दृष्टि में "जीवन भर गऊ सेवा"--यह अच्छा कार्य है।
कैसे-कैसे लोग हैं! किस बात को अच्छा कहते हो! इस दुनिया में ऐसी कोई बात नहीं, जिसको कहीं न कहीं अच्छा न माना जाता हो--और उसी बात को कहीं न कहीं बुरा न माना जाता हो।
अब जैसे जैन रात्रि को भोजन नहीं करते। वह महापाप है। और मुसलमान--जब
वे उपवास करते हैं, तो रात्रि को भोजन करते हैं। वह महापुण्य है। दिन भर भोजन न करेंगे। दिन भर उपवास--रोजा; रात भोजन करेंगे। तब रोजा तोड़ा जाता है, तब उपवास तोड़ा जाता है। और जैनों के लिए महापाप! रात्रि भोजन महापाप! सूरज डूबा कि बात खतम। फिर भोजन नहीं कर सकते।
किसको अच्छा कहते हो? क्या कसौटी है? अब तक कोई मानवीय कसौटी तुम्हारे सामने है?
कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जी भर कर मार, क्योंकि आत्मा न मरती है, न मारी जा सकती है। तू कहां भागा जा रहा है?
अर्जुन को लगता है--जैन शास्त्रों का प्रभाव पड़ गया था! उस समय जैनों
के बड़े तीर्थंकर नेमिनाथ मौजूद थे--उस काल में। वे कृष्ण के चचेरे भाई थे। लगता है नेमिनाथ की छाया पड़ गई अर्जुन पर भी। अर्जुन बड़ी ज्ञान की बातें बोलने लगा! उसने कहाः मैं जाता हूं। क्या करना मार कर इन सबको? क्या मिलेगा इतने लोगों को मार कर?
और थोड़े लोग नहीं मरे। अगर हम उनके हिसाब को मान कर चलें, तो कोई सवा अरब लोग मरे। हालांकि इतने लोग मर नहीं सकते। यह बात झूठ है। सवा अरब आदमी उस समय सारी दुनिया में नहीं थे। बुद्ध के समय में भारत की कुल आबादी दो

करोड़ थी। तो कृष्ण के समय में तो एक करोड़ से ज्यादा नहीं हो सकती--पूरी आबादी।
और जरा सोचो भीः कुरुक्षेत्र के मैदान में कितने आदमी खड़े कर सकते हो? फुटबाल या हाकी का मैच करना हो, तो मुश्किल पड़ जाए, कि अगर एक लाख आदमी देखने इकट्ठे हो जाएं, तो मुसीबत हो जाए। वहां एक अरब नहीं, सवा अरब आदमी मारे गए! जहां सवा अरब आदमी मारे गए हों, वहां कम से कम दस अरब आदमी लड़े होंगे--नहीं तो मारेगा कौन! कि इन्होंने खुद ही छाती में छुरा मार लिया और मर गए? आखिर हाथी-घोड़ों को भी खड़ा करने की जगह चाहिए। जहां सवा अरब आदमी मरे हों, वहां कितने रथ और कितने हाथी और कितने घोड़े रहे होंगे! ये कुरुक्षेत्र में बनेंगे? पूरा भारत भी अगर युद्ध-क्षेत्र बन जाए तो।... अभी भी भारत की आबादी कुल सत्तर करोड़ है। एक अरब होगी इस सदी के पूरे होते-होते। यह पूरे भारत को अगर हम युद्ध का मैदान बना लें, तो शायद सवा अरब आदमियों को मारा जा सके। तब भी बड़ी भीड़भाड़ हो जाएगी।
मगर अगर मान लो कि सवा अरब आदमी मारे गए, तो अर्जुन ठीक ही कह रहा है कि इतने आदमी मारना और राज्य के लिए, पद-प्रतिष्ठा के लिए! ... चार दिन की चांदनी फिर अंधेरी रात! इसके लिए क्या इतना उपद्रव करना? और इन सबको मार कर फायदा क्या होगा? राज्य ही मिलेगा न! और मौत आएगी--सब छिन जाएगा!
"और अपनों को मार कर... । ये सब अपने ही हैं", क्योंकि परिवार का ही झगड़ा था। उस तरफ भी अपने लोग हैं, इस तरफ भी अपने लोग हैं। दोनों तरफ रिश्तेदार ही खड़े हैं। कोई भाई है। कोई चचेरा भाई है। कोई ममेरा भाई है। कोई बहिन के रिश्तेदार हैं। कोई किसी और तरह से रिश्तेदार हैं। एक ही गुरु के शिष्य हैं ये सब, द्रोणाचार्य के। शिष्य इस तरफ लड़ रहे हैं, द्रोणाचार्य उस तरफ लड़ रहे हैं। कृष्ण इस तरफ खड़े हैं, उनकी फौजें उस तरफ खड़ी हैं! किसको मार रहे हो? क्या फायदा है?
लेकिन कृष्ण ने कहा कि "अर्जुन, अज्ञान की बातें न कर। आत्मा न तो मरती है, न मारी जा सकती है। न हन्यते हन्यमाने शरीरे! शरीर मरता है--आत्मा तो मरती नहीं। नैनं दहति पावकः! नैनं छिंदंति शस्त्राणि! न तो शस्त्र छेद सकते हैं और न आग जला सकती है। तू कैसी अज्ञान की बातें कर रहा है? जी भर कर मार। कोई पाप नहीं है।"
किसको मानें सच? महावीर कहते हैं--कदम भी सम्हाल-सम्हालकर रखो। कहीं चींटी न मर जाए। आदमी की तो बात छोड़ दो, महावीर के संबंध में कहा जाता है, वे रात करवट नहीं बदलते थे कि रात अंधेरे में करवट बदलें--नंगधड़ंग तो थे ही, जमीन पर सोते, कोई बिस्तर वगैरह तो था नहीं; पलंग वगैरह का उपयोग तो कर नहीं सकते थे--यह सब तो पाप है!
ध्यान रखना, पलंग पर मरे तो नरक जाओगे। और अक्सर लोग पलंग पर ही मरते हैं। कुछ सौभाग्यशाली लोगों को छोड़ कर--जो हवाई जहाज में मर जाते हैं; कि कोई रेलगाड़ी में मर जाते हैं; कोई कार के एक्सीडेंट में मर जाते हैं। कुछ थोड़े से सौभाग्यशाली लोगों को छोड़ दो... । जिसको तुम दुर्घटना कहते हो। और जिसको तुम कहते हो ठीक-ठीक मरना, वह तो खाट पर ही होता है। निन्यानबे प्रतिशत आदमी तो खाट पर ही मरते हैं! खाट से जरा सावधान रहना।
मैं जबलपुर बीस साल रहा। वहां एक गाली चलती है, जो और मुल्क में कहीं नहीं चलती। वह गाली है--"तेरी खाट खड़ी कर दूंगा!" मैं भी बहुत चौंका, जब पहली दफा सुनी--कि "खाट खड़ी कर दूंगा"--इसका मतलब! उन्होंने कहाः इसका मतलब कि खाट की अरथी बना देंगे। खाट खड़ी कर देंगे!
खाट पर ही लोग मरते हैं। वह मरने की गाली है। वे मरने का अभिशाप दे रहे हैं कि खाट को तेरी अरथी बना देंगे! जब कोई मरता है, तो कहते हैं, "उसकी खाट खड़ी हो गई!" वे तो लेट गए; उनकी खाट खड़ी हो गई! वे क्या लेटे--अरथी उठ गई! महावीर कोई खाट पर नहीं सोते थे। होशियार आदमी रहे होंगे! अरे, खाट पर मरना हो जाता है! ऐसी झंझट ही क्यों लेना। जमीन पर ही सोते। और जमीन पर चींटे-मकोड़े-कीड़ा... ! और भारत में क्या-क्या जीव-जंतु पलते हैं! जब तो चौरासी करोड़ योनियों का ख्याल आया। किसी को नहीं आया दुनिया में यह ख्याल। हमको आया ख्याल! क्या-क्या मच्छड़! क्या-क्या खटमल! अरे, खाट भी छोड़ दोगे, तो भी खटमल नहीं छूटेंगे।

तो महावीर बेचारे करवट नहीं बदलते रात में, कि कहीं करवट बदलने में कोई खटमल दब जाए; कि कोई मच्छड़ दब जाए! और नंग-धड़ंग महावीर को खटमल और मच्छड़ सताते तो बहुत होंगे, इसमें कोई शक नहीं। महावीर ने कहा भी है अपने शिष्यों को कि ध्यान में मच्छड़ बाधा डालेंगे। फिकर न करना। यह परीक्षा है। मच्छड़ सदा से दुश्मन हैं ध्यानियों के!
मैंने तो एक मच्छड़ को अपने बच्चों से कहते सुना है कि बेटा, अगर आज ठीक
से व्यवहार किया, तो सुबह ही बुद्धाहॉल में ले चलेंगे प्रवचन सुनवाने! मगर अगर ठीक से व्यवहार किया तो! अगर गड़बड़झाला किए, फिर नहीं ले जाएंगे!
मच्छड़ पुराने दुश्मन हैं। महावीर ने कहा है कि मच्छड़ सताएंगे, ये व्यवधान खड़ा करेंगे ध्यान में। तपस्वी इन पर ध्यान नहीं देता। तपस्वी तो अपने ध्यान में ही लगा रहता है। काटे जाओ--कोई फिकर नहीं। हिलता ही नहीं; डुलता ही नहीं।
और महावीर को तो और भी मच्छड़ सताते रहे होंगे, क्योंकि जैनी कहते हैं
कि जब सांप ने उनको काटा, तो खून नहीं--दूध निकला! अब मच्छड़ छोड़ेंगे दूध पीना! ऐसा सस्ता मिलता हो दूध--बिना डेरी गए--कि महावीर को चूसा--और दूध पीया! पी-पी कर फूले न समाते होंगे!
तो वह तो महावीर कहते हैं, करवट भी सम्हल कर लेना। रात लेना ही मत। एक
ही करवट सोते रहे बेचारे। और इधर एक कृष्ण हैं, जो कहते हैं कि जी भर कर मार। कोई हर्जा नहीं। कौन सा अच्छा काम है?
जीसस शराब पीते थे। शराब पीना अच्छा काम है या बुरा? मोरारजी भाई स्वमूत्र पीते हैं। अब स्वमूत्र पीना अच्छा काम है या बुरा? किसको कहोगे? किसको तय करोगे? कैसे तय करोगे?
रामकृष्ण परमहंस मछली खाते थे। बंगाली और मछली न खाएं बहुत मुश्किल! मछली और चावल--इसके बिना बंगाली बनता ही नहीं! इसलिए तो बिल्कुल फुसफुसा होता है! इसलिए कहते हैं--"बंगाली बाबू।" बाबू तो बंगाली ही होता है। पंजाबी को बाबू नहीं कह सकते तुम। वह बाबू होता ही नहीं। वह बिल्कुल ठोस होता है।
बंगाली "बाबू" होता है। बंगाल की हवा में थोड़ा--बिहारी बाबू होता है। मगर थोड़ा। पचास प्रतिशत। फिर वहीं खत्म हो जाते हैं। असली बाबू वहीं खतम हो जाते हैं।
पंजाबी को बाबू कहोगे? ये विनोद बैठे हैं--इनको बाबू कहोगे! ये हमारे संत महाराज बैठे हैं--इनको बाबू कहोगे! ये लट्ठ लेकर खड़े हो जाएंगे। ये समझेंगे--गाली दे रहे हो। बाबू का मतलब भी गाली ही होता है। बाबू का मतलब होता हैः "बू-सहित; जिसमें बास आती हो।"
असल में अंग्रेजों ने बंगालियों के लिए यह गाली खोजी थी। क्योंकि बंगालियों में मछली की बास आती है।
पहली राजधानी अंग्रेजों ने कलकत्ता में बनाई और बंगालियों से पाला पड़ा। और बंगालियों में बास आती है--आएगी ही। मछली खाओगे, तो बास नहीं आएगी, तो क्या होगा! झर-झर के रोएं-रोएं से मछली की गंध उठेगी।
तो अंग्रेजों को बास आने के कारण उन्होंने यह शब्द खोजवाया कि इनको नाम क्या देना--बा-बू--बू-सहित! और क्या मजा है! जो गाली की तरह उपयोग किया गया, वह सम्मान बन गया! जब सत्ताधिकारी गाली भी देते हैं, तो वह सम्मानजनक हो जाता है। क्योंकि बाबू वे उन्हीं को कहते थे, जो उनके पास थे। पास थे मतलब--ऊंचे पदों पर थे। गवर्नर के पास जो था, वह गवर्नर की कौंसिल का सदस्य था।
तो "बाब"ू सम्मानित शब्द हो गया। बाबू कोई ही हो सकता था; सभी नहीं हो सकते थे। कलेक्टर, डिप्टी कलेक्टर--ये बाबू थे। तो फिर सम्मान का शब्द हो गया। फिर हम जिनको भी सम्मान देना चाहते हैं, उनको कहते हैं--बाबू--बाबू जगजीवन राम! उनको भी शरम नहीं आती कि कह दें कि क्या गाली दे रहे हो! शायद पता भी न हो। जग्गू भैया--बेहतर! बाबू राजेंद्र प्रसाद! नाम के पहले ही गाली लगी है!

रामकृष्ण तो मछली खाते थे। अब मछली खाने को अच्छा काम कहोगे कि बुरा? विवेकानंद भी मछली खाते थे। कश्मीर के ब्राह्मण भी मांसाहारी हैं। इसलिए तो नेहरू मांसाहारी हैं। क्योंकि वे कश्मीरी ब्राह्मण।
किसको अच्छा कहते हो। क्या कसौटी है अच्छे की? बाहर के जगत में कोई कसौटी नहीं है। कसौटी तो सिर्फ एक है और वह ध्यान है।
तुम जब ध्यान को उपलब्ध होओ, तो तुम्हें पता चलता हैः क्या मेरे लिए ठीक है, और क्या मेरे लिए गलत। और जो तुम्हारे लिए ठीक है, जरूरी नहीं सबके लिए ठीक हो। और जो तुम्हारे लिए गलत है--जरूरी नहीं, सबके लिए गलत हो। जो तुम्हारे लिए अमृत है, वह किसी के लिए जहर हो सकता है। और जो तुम्हारे लिए जहर है, वह किसी के लिए औषधि हो सकती है। लेकिन यह व्यक्तिगत निर्णय होगा। इसकी कोई सामूहिक धारणा नहीं हो सकती।
मगर हर मां-बाप अपने बच्चों के ऊपर, रजनीकांत! थोप देता है कि "यह अच्छा काम है। इसको करो।" जो उसकी धारणा है अच्छे काम की। इसका कुल परिणाम इतना होता है कि वह अच्छा काम करे या न करे... । क्योंकि हो सकता है, वह अच्छा काम उसको रुचे ही न। वह उसको प्रीतिकर ही न पड़े। लेकिन इसका एक परिणाम जरूर होगा--और वह यह होगा कि वह पाखंडी हो जाएगा। ऊपर-ऊपर से दिखाएगा अच्छा काम कर रहा है, और भीतर-भीतर से जो उसे करना है, वह करेगा। इसलिए उसके दोहरे चेहरे हो जाएंगे। उसकी जिंदगी दो खंडों में बंट जाएगी। मैं एक जैन ब्रह्मचारी के साथ यात्रा को निकला। बड़ी इंपाला कार! और जब जैन ब्रह्मचारी उसमें आ कर बैठे, तो उनके पहले उनके शिष्य ने इंपाला गाड़ी की गद्दी पर चटाई लाकर रख दी! फिर उस पर चटाई पर ब्रह्मचारी जी विराजमान हो गए।
मैं तो बड़ा हैरान हुआ। मैंने कहा कि मैं कुछ समझा नहीं--यह चटाई का राज। गद्दी काफी सुखद है, अब और इस पर चटाई किसलिए रखनी?
उन्होंने कहाः हम तो चटाई पर ही बैठते हैं। हमें गद्दी से क्या लेना- देना!
इंपाला कार की गद्दी पर बैठे हुए हैं, मगर बीच में चटाई! वे अपनी चटाई
पर बैठे हुए हैं!
मैंने कहाः तुम्हारी चटाई आकाश में उड़ रही है? यह इंपाला कार चल रही
है कि तुम्हारी चटाई चल रही है?
उन्होंने कहाः हमें क्या मतलब!
मैं आचार्य तुलसी के एक अणुव्रत सम्मेलन में बोला, तो उनको बड़ी अड़चन हुई। अड़चन यह हुई कि कोई बीस हजार लोग इकट्ठे हुए थे। वे सब मेरी बात सुन सके, समझ सके। वे खुद बोले, तो बिना माइक के बोले। तो कितने लोग समझें! सौ दो सौ लोग सुन पाए। उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। दूसरे दिन देखा कि माइक लग गया! मैंने उनसे पूछा कि "जैन मुनि तो माइक का उपयोग नहीं करते, क्योंकि जैन शास्त्रों में उल्लेख नहीं है। हो भी कैसे? माइक था भी नहीं उन दिनों। तो आप माइक का उपयोग कैसे कर रहे हैं?"
उन्होंने कहाः मैं उपयोग नहीं कर रहा। मैं तो बोल रहा हूं। अब किसी ने माइक ला कर रख दिया, तो मैं क्या करूं!
और तब से बीस साल हो गए, कोई न कोई माइक लाकर रख देता है--रोज! अब बेचारे आचार्य तुलसी क्या करें। वे तो अपना बोल रहे हैं; उनको तो अपना बोलना है। वे नहीं कहते किसी से कि माइक रखो, कि न रखो।
अब क्या दोहरे झूठ चलते हैं! यह उनके ही इशारे पर माइक रखा गया है। इसके पहले क्यों नहीं रखा गया था? उस दिन जो उन्होंने देखा कि उनकी बात का कोई परिणाम नहीं हुआ, तो उनको धक्का लगा। अहंकार को चोट लग गई। तो उस दिन से माइक रखा जाने लगा। इशारा उन्होंने ही किया होगा--मगर पीछे के दरवाजे से।
तो मैंने कहाः ठीक है। अगर कोई माइक उठा ले--फिर? उन्होंने कहाः मतलब! मैंने कहाः कल मैं माइक उठा कर बता दूंगा।
उस दिन से जो मेरी उनसे खटपट हो गई, वह चलती है। मैंने माइक उठाया नहीं; सिर्फ कहा था कि कल मैं उठा कर बता दूंगा। मगर तब से उनके मन में एक दुश्मनी छिड़ गई।

दूसरे दिन तो मेरा जो प्रवचन होना था, वह उन्होंने रद्द ही कर दिया। क्योंकि उनका ही सम्मेलन था। प्रवचन ही रद्द नहीं किया कि कहीं मैं माइक न उठा लूं, मुझे लेने जो आने वाले थे, जहां मुझे ठहराया गया था--वे लेने ही नहीं आए वक्त पर। अब यह भी इशारा किया होगा क्योंकि यह मैंने उनसे निजी तौर से कहा था, किसी और से तो कहा नहीं था। यह कैसे प्रवचन रद्द हुआ? मुझे कोई लेने नहीं आया--यह कैसे हुआ?
और मैंने उनसे कहा कि कोई आकर, आप खाना खा रहे हैं और गौ-माता का गोबर
रख दे, तो आप खा लेंगे--कि मैं क्या करूं; अब इसने थाली में परोस दिया? तो वे कहने लगे, क्या बातें करते हैं!
मैं सिर्फ यह पूछ रहा हूं कि यह माइक जो रखा गया है, साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि माइक से बोलना है! बोलो माइक से, मुझे कोई एतराज नहीं। मैं तो कहता हूं कि बोलना ही चाहिए।
एक जैन साध्वी मुझे मिलने आई। देखा, उसने पैर पर कपड़े की पट्टियां बांध रखी हैं। मैंने पूछाः क्या हुआ! तो वह बोली कि अब धूप है और पैर में छाले हो गए हैं।
तो मैंने कहाः कपड़े का जूता मिलता है। नाहक ये चिंदियां बांधना! इससे जूता क्यों नहीं पहन लेती?
जूते का शास्त्रों में विरोध है!
तो चप्पल पहन ले। चप्पल तो थी नहीं उस समय, तो चप्पल का कोई विरोध है
भी नहीं। मैंने कहाः शास्त्र में तो मैं रास्ता निकाल सकता हूं। चप्पल का उल्लेख ही नहीं है। चप्पल पहन ले। देख, मैं चप्पल पहनता हूं कि नहीं! शास्त्र सम्मत एक ही बात करता हूं बस। कि जूता नहीं पहनता। जूता मुझे रास नहीं आता। तू चप्पल पहन ले।
और चप्पल तो अब प्लास्टिक की बन सकती है; रबर की बन सकती है। चमड़े का जूता बनता था उन दिनों, इसलिए महावीर ने कहा कि चमड़े का जूता मत पहनना। कपड़े का जूता बनता नहीं था। रबर का जूता बनता नहीं था। नहीं तो मना नहीं करते। क्योंकि चमड़े का मतलब है कि हिंसा होगी। किसी न किसी जानवर को मारा जाएगा। उसकी खाल उधेड़ी जाएगी। मत करना इतनी हिंसा। मगर अब तो कोई सवाल नहीं है। अब तो प्लास्टिक की भी चप्पल हैं, जिसमें किसी की कोई मृत्यु नहीं होती। और फिर ये इतनी पट्टियां बांधना और गंदी पट्टियां, क्योंकि वह रास्ते पर चलेगी पट्टियां बांध कर। सारा पैर बंधा हुआ है कपड़े से! ...
तो उसने कहा कि वह ठीक है। लेकिन मैंने अपने गुरुदेव को पूछा। तो उन्होंने कहा कि इतना कर सकती है कि पट्टियां बांध सकती है। वे भी बांधते हैं पट्टियां--गर्मी के दिन में।
स्वभावतः महावीर चलते थे, तो मिट्टी थी रास्ते पर; अब सीमेंट है। सीमेंट ही नहीं, कोलतार की सड़कें हैं। और गर्मी में कोलतार पिघलता है, उस पर जैन मुनि और साध्वियों को चलवाना! नरक होगा कहीं आगे--इनको नाहक यहीं नरक में डाल दिया! कोलतार गर्म हो जाता है, पिघल जाता है--उस पर इनके पैर जले जाते हैं। अब ये न पहनें जूते, तो कपड़े बांध लेते हैं।
मगर कपड़ा बांधना--यह बेहूदा ढंग हुआ! जूता है क्या आखिर? कपड़ा बांधने
का ही ठीक-ठीक, समुचित, वैज्ञानिक रास्ता है। लेकिन इस तरह का पाखंड पैदा हो जाता है।
अच्छे काम की धारणा तुम अगर दूसरे से लोगे रजनीकांत, तो इससे पाखंड पैदा होने वाला है। हिंसा न करो--समझाया जाता है। मगर तुम्हें कुछ बोध नहीं है, आत्मबोध नहीं है। तुम जो भी करो, उसमें हिंसा हो जाएगी। कैसे बचोगे हिंसा से?
जैनों के हिसाब से तो फल भी खाना हिंसा है--क्योंकि उसमें भी जीवन है-- वृक्ष में। फल में भी जीवन है। फल तोड़ना हिंसा है; जब तक कि फल पक कर अपने आप न गिर जाए। और तब तक तोते, और कौए, और जमाने भर के पशु-पक्षी, वे नहीं छोड़ेंगे। वे तुम्हारे पहले खा जाएंगे। पकने के पहले उनको पता चल जाता है। तुम तक बचने देंगे वे! गिरने के पहले खा जाएंगे।
पका फल जब गिरे अपने आप, तो हिंसा नहीं है। तुमने तोड़ा तो हिंसा है।
सब्जी खाओगे--हिंसा है। इसलिए जैनों ने खेतीबाड़ी बंद कर दी। क्योंकि

खेतीबाड़ी में तो वृक्ष काटने पड़ेंगे, पौधे काटने पड़ेंगे; और हिंसा होगी-- महान हिंसा होगी! मगर गेहूं तुम खा रहे हो। कोई दूसरा काट रहा है। लेकिन काट तुम्हारे लिए रहा है।
तुमने किसी को पैसे देकर किसी की हत्या करवा दी। क्या तुम सोचते हो, तुम हत्या के भागीदार नहीं? क्या तुम सोचते हो, जिसने हत्या की, वही भागीदार है? ज्यादा तो तुम्हीं भागीदार हो। तुमने ही पैसा दे कर हत्या करवा दी।
तो माली बगीचे में काम कर रहा है पैसे ले कर। खेत में किसान काम कर रहा है, क्योंकि पैसा मिलेगा। करवा तो तुम रहे हो। कटवा तुम रहे हो। मगर तुम निश्चिंत हो कि हिंसा मैं नहीं कर रहा; हिंसा कोई और कर रहा है! हमें क्या लेना-देना! हम तो अलग खड़े हैं। हम तो दूर खड़े हैं।
हिंसा तो श्वास लेने में भी हो रही है। एक बार जब तुम श्वास लेते हो,
तो कम से कम एक लाख जीवाणु मरते हैं। कैसे बचोगे हिंसा से?
आत्मबोध हो, तो तुम जो भी करोगे, उसमें प्रेम होगा।
मैं हिंसा से बचने को नहीं कहता। नहीं कह सकता। क्योंकि जीवन ही हिंसा है। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि जितना तुम्हारा प्रेम प्रगाढ़ हो जाए, उतनी कम हिंसा। और प्रेम अगर परिपूर्ण हो जाए, तो अभी वैज्ञानिकों ने खोज की है कि अगर वृक्षों को भी प्रेम से काटा जाए, तो हिंसा नहीं है। इसके अब तो वैज्ञानिक सबूत उपलब्ध हैं। क्योंकि इस तरह के यंत्र बन गए हैं, जैसे तुमने कार्डियोग्राम देखा, जिसमें तुम्हारे हृदय की धड़कनों की जांच-परख की जाती है। जैसे नब्ज तुम्हारी देखता है चिकित्सक, या तुम्हारा रक्तचाप देखता है, वैसे ही सूक्ष्म यंत्र बन गए हैं, जो वृक्षों की संवेदनशीलता को आंकते हैं।
जब वृक्ष दुखी होता है, तो यंत्र में से चीख की आवाज आती है। और जब वृक्ष आनंदित होता है, तो यंत्र में से दूसरी आवाज आती है--सुमधुर--जैसे गीत गा रहा हो! इशारे यंत्र में आ जाते हैं। ग्राफ बन जाता है, कि वृक्ष दुखी है या सुखी है।
जब कोई आकर वृक्ष को क्रूरता से काटने लगता है, तो चीख उठ आती है यंत्र में। ग्राफ एकदम बिगड़ जाता है; एकदम अस्तव्यस्त हो जाता है। लेकिन अगर तुम प्रेम से वृक्ष को कहो कि एक फल मुझे चाहिए। तुम चकित होओगे। वृक्ष यूं बोलते नहीं, लेकिन तुम्हारे प्रेम को समझेंगे, तुम्हारी भाषा को समझते हैं। तुम अगर प्रेम से कहो, मुझे एक फल चाहिए; मैं भूखा हूं। तुम्हारी बड़ी कृपा होगी--मुझे एक फल दे दो। और तुम एक फल प्रेम से तोड़ लो, तो यंत्र में ग्राफ बनता है, जिसमें कोई चीख-पुकार नहीं--कोई चीख-पुकार नहीं! ग्राफ संगीतपूर्ण बना रहता है। अस्तव्यस्त नहीं होता; असंगत नहीं होता; विसंगत नहीं होता। रेखाएं एकदम अराजक नहीं हो जातीं। वही पूर्ण लयबद्धता बनी रहती है।
और चकित होओगे तुम यह जान कर कि एक वृक्ष को तुम जब काटते हो, तो आसपास
के खड़े वृक्ष भी दुखी होते हैं। वही वृक्ष दुखी नहीं होता। उन वृक्षों की संवेदनशीलता भी जांची गई है। पाया गया है कि वे सब दुखी हो जाते हैं। और यूं ही नहीं कि एक वृक्ष को काटने पर दुखी होते हैं। तुम एक पक्षी को मारो, तो भी वृक्ष दुखी होते हैं।
तो महावीर ने ठीक कहा कि वृक्षों में जीवन है। महावीर पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा कि वृक्षों में परिपूर्ण जीवन है--उतना ही, जितना तुम में।
बात तो सही कही। ध्यान के अनुभव से कही। लेकिन परिणाम जैनों में क्या हुआ! कुल इतना हुआ कि उन्होंने खेतीबाड़ी बंद कर दी। परिणाम यह होना चाहिए था कि उन्हें खेतीबाड़ी का कोई नया सृजनात्मक, प्रेमपूर्ण मार्ग खोजना था। कनाडा के एक विश्वविद्यालय में उन्होंने एक ही तरह के पौधे लगाए--दो पंक्तियों में, थोड़े से फासले पर। उनको एक सी खाद दी। एक सा पानी दिया। कोई और भेद नहीं। बराबर उम्र के पौधे लगाए। लेकिन एक पंक्ति में पौधों को माली ने प्रेम दिया। थपथपाए। दो बात करे। उनसे कहे कि जल्दी बड़े हो जाओ! प्रतीक्षा कर रहा हूं। खिलो। फूल बने। और दूसरों की बिल्कुल उपेक्षा करे।

उनसे कोई बात नहीं। उनकी तरफ से पीठ कर के चला आए। उनको सुविधा उतनी ही दे, जितनी पहले को, लेकिन प्रेम बिल्कुल नहीं।
और चकित हुए वैज्ञानिक यह जान कर कि जिन पौधों को प्रेम दिया गया, वे दुगुने बड़े हुए। उनके फूल दुगुने बड़े हुए। उनके फूलों की शान और। उनकी गंध और। और जिन पौधों को कोई प्रेम नहीं दिया गया, वे अधूरे ही बढ़े। उनके फूल भी छोटे आए। उनकी गंध भी वैसी प्रगाढ़ न थी। उनका सौंदर्य और निखार भी वैसा न था।
अगर मैं तुमसे कहूंगा, तो यह नहीं कहूंगा कि खेतीबाड़ी बंद कर दो। मैं तुम्हें खेतीबाड़ी का नया ढंग सिखाऊंगा। क्योंकि खेतीबाड़ी कैसे बंद हो सकती है? कोई तो करेगा। तुम बिना भोजन के तो नहीं रह सकते। महावीर भी नहीं रह सकते। कोई जैन नहीं रह सकता। तो कोई खेतीबाड़ी करेगा।
तो फिर खेतीबाड़ी करने का कोई प्रेमपूर्ण ढंग खोजना चाहिए। जब खेतीबाड़ी करनी ही है, जब बगीचा लगाना ही होगा, तो कोई नया ढंग खोजना होगा। ऐसे भगोड़ेपन से काम नहीं चलेगा। हिंसा मत करो--इतने से काम नहीं चलेगा। प्रेम करो। विधायकता देनी होगी। हिंसा मत करो--यह नकारात्मक बात है। नकार से जीवन नहीं जीया जाता। विधेय से जीवन जीया जाता है। लेकिन विधेय पैदा होता है ध्यान से। और नकार पैदा होता है विचार से।
तुम सिर्फ विचार के अनुसार चल रहे हो। कोई सिखाता है उधार, तुम सीख लेते हो और चल पड़ते हो। तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति नहीं होती।
तुमसे कहा जाता है, पाप न करो। यह ऐसे ही है, जैसे कोई अंधे से कहे कि देखो, फर्नीचर से मत टकराना। और अंधा निकलेगा, तो टकराएगा। दीवाल से टकराएगा, फर्नीचर से टकराएगा। उसकी लकड़ी खट-खट कर के चारों तरफ ठोंक-पीट कर जांच करेगा, तब चलेगा। नहीं तो वह हाथ-पैर तोड़ लेगा अपने। लेकिन जिसके पास आंख हैं, उससे तुम नहीं कहते कि फर्नीचर से मत टकराना। तुम जानते हो, उसके पास आंख हैं; उसे दरवाजा दिखाई पड़ता है, वह दरवाजे से निकल जाएगा। ध्यान भीतर की आंख को खोल देता है। बाहर की शिक्षा, अंधे को दी गई शिक्षा है।
"पाप न करो।" अभी तुम्हें पता ही नहीं कि पाप क्या है। पाप जानोगे कैसे? आंख कहां? अभी पुण्य क्या है? पाप क्या है? इसलिए बड़ा उलटा काम चलता रहता है।
पुण्य के नाम से तीर्थयात्रा कर आते हो। गंगा नहा आए। हज यात्रा कर आए। "सौ-सौ चूहे खाए के बिल्ली चली हज को!" और फिर लौटती है, तो हाजी हो जाती है! हाजी मस्तान! छोटी-मोटी हाजी नहीं। "मुंह में राम बगल में छुरी!" दोनों साथ-साथ चलेंगे। राम-राम भी करते रहोगे, और जेबें भी काटते रहोगे। क्योंकि खुद की कोई दृष्टि तो नहीं है।
और मजा यह कि खुद की दृष्टि न हो, तो एक अदभुत घटना घटती है। तुम थोथा पाखंड जीते हो; उसको समझते हो पुण्य। और हरेक आदमी का पाप तुम्हें दिखाई पड़ता है--हरेक पापी! इससे अहंकार और मजबूत होता है।
यहां दूसरे की भूलें देखना बहुत आसान है। दूसरे की छोटी सी भूल पहाड़ जैसी मालूम पड़ती है। तिल का ताड़ हो जाता है। अपनी भूल दिखाई ही नहीं पड़ती। क्योंकि अपने भूल देखने के लिए जागरूकता चाहिए, ध्यान चाहिए।
मैंने सुना है, एक सेनापति अपनी फौज का निरीक्षण कर रहा था। सारे फौजी सज-बज कर आए थे। बड़ा सेनापति आ रहा था। और फौजियों का अधिकतर काम सजना ही बजना है। और तो काम कभी-कभी आता है। तो कपड़े--लोहा--कलफ! जूतों पर पालिश रगड़-रगड़ कर--घंटों इस पर मेहनत करते हैं। संगीनों पर मालिश। संगीनों को चमकाना। तलवारों को चमकाना। सजे-बजे खड़े थे सब। और सेनापति बड़ा प्रसन्न था। तभी उसने देखा कि एक जवान के पैंट के बटन ही खुले हैं! भनभना गया।
फिर फौजी भाषा तो तुम जानते ही हो! एकदम चिल्लायाः अरे कुत्ते के पिल्ले! अरे उल्लू के पट्ठे! पैंट के बटन बंद कर। शर्म नहीं आती! इसी वक्त बंद कर।
वह जवान बोला... । घबड़ा गया। सकपका गया। उसने कहाः हुजूर, अभी यहीं!
उसने कहाःअभी--यहीं। पूछता क्या है! बंद कर।

और उस जवान ने सेनापति के पैंट के बटन बंद कर दिए। खुले हुए थे। मगर कौन कहे। वह तो जब उसने बंद किए, तब सेनापति को पता चला!
जिंदगी बड़ी अजीब है यहां। यहां दूसरे के दोष दिखाई पड़ जाते हैं; अपने दोष दिखाई नहीं पड़ते। दिखाई भी कैसे पड़ें। अपने दोष को देखने के लिए भीतर की आंख चाहिए।
"पाप न करो। हिंसा न करो। अच्छे काम करो। सच बोलो।" तुम कहते हो रजनीकांतः "हम संन्यासी इसी रास्ते पर जाने की कोशिश करते हैं, तो हमारा विरोध क्यों?"
विरोध इसीलिए कि तुम सच में ही इस रास्ते पर जा रहे हो। कोई नहीं चाहता कि सच में ही तुम इस रास्ते पर जाओ। बस, बातें अच्छी-अच्छी करो। करते रहो बेईमानी--और ईमानदारी की तख्ती लगाए रखो। राम-राम जपते रहो; माला फेरते रहो--और जब मौका लग जाए, तो चूको मत; अवसर चूको मत। जब हाथ लग जाए कोई मौका, "मत चूक चौहान!" मार दो हाथ। फिर राम-राम जप लेना। फिर गंगाजल पी लेना। क्या बिगड़ता है!
यहां जिंदगी पाखंड सिखा रही है।
जो तुमसे कहते हैं, अच्छे काम करो, सच बोलो, हिंसा न करो, पाप न करो--वे
ही तुमसे कह रहे हैं कि बेटा, संसार में कुछ करके दिखा जाना। नाम छोड़ जाना। प्रधानमंत्री हो जाना कम से कम। राष्ट्रपति हो जाना। अरे, कुछ तो हो जाना! वे ही सिखा रहे हैं--महत्वाकांक्षा। वे कहते हैं, "कक्षा में प्रथम आना। आगे खड़े होना दुनिया में। धन कमाना। नाम कमाना। यश कमाना। समय की रेत पर कोई चिह्न छोड़ जाना। इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों में तुम्हारा नाम लिखा जाए। कुल की मर्यादा रखना!" अब ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं हो सकतीं। अगर महत्वाकांक्षी होओगे, तो झूठ भी बोलना पड़ेगा। राजनीतिज्ञ और झूठ न बोले-- असंभव।
मुल्ला नसरुद्दीन एक कब्रिस्तान से निकल रहा था। उसने एक कब्र पर देखा कि लिखा है, "यहां एक ईमानदार राजनीतिज्ञ विश्राम कर रहा है!" मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः एक-एक कब्र में दो-दो आदमी कैसे हो सकते हैं?
ईमानदार और राजनीतिज्ञ? ईमानदार हो, तो उसकी कब्र ही न बनेगी। बेईमान हो, तो शिखर पर चढ़ सकता है यहां दुनिया के। जितना कुशल हो, जितना बेईमान हो, जितना चालबाज हो, जितना चतुर हो, जितना कपटी हो--कहे कुछ, बोले कुछ, करे कुछ! जिसको पहचान ही न पाओ कि आ रहा है कि जा रहा है।...
मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र है राजनेता। एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन
ने उससे कहा कि मैं बड़ा परेशान रहता हूं। लोग आ जाते हैं, बैठ जाते हैं मोहल्ले के। और घंटों सिर खाते हैं। जाते ही नहीं।
राजनेता ने कहाः इसकी भी तरकीब है। मुझको देखो, मैं क्या करता हूं! तुम्हारे पास इतने लोग नहीं आते, जितने मेरे पास आते हैं। मगर जैसे ही कोई आता है, मैं तत्क्षण उठ कर खड़ा हो जाता हूं। जूते पहन लेता हूं। छतरी उठा लेता हूं। टोपी लगा लेता हूं। वह आदमी पूछता है कि आप आ रहे हैं कहीं से कि कहीं जा रहे हैं? तो जैसा आदमी होता है... । अगर कोई आदमी जिसको मुझे खिसकाना है, तो मैं कहता हूं--मैं जरा बाहर जा रहा हूं भाई! अगर बिठालना है; काम का आदमी है, जिससे कुछ मतलब है, तो कहता हूं--अभी-अभी आया। बड़े मौके पर आ गए!
अब देखते हो इस आदमी की होशियारी! छाता उठा लिया। टोपी लगा ली। जूते पहन लिए। एकदम खड़ा हो गया। जो भी आदमी आएगा पूछेगा कि "आप आ रहे हैं कि जा रहे हैं!" राजनेता का कुछ पक्का नहीं कि आ रहा है कि जा रहा है!
एक मां अपने बेटे को समझा रही थी कि बेटा, आदमी तो मिट्टी है। मिट्टी
से आया--मिट्टी में जाता।
दूसरे दिन बेटा भागा हुआ आया। उसने कहा कि मां, जल्दी आओ।
उसने कहाः क्या काम ऐसा जल्दी आ पड़ा?
उसने कहाः जल्दी आ। बिस्तर के नीचे या तो कोई आ रहा है या कोई जा रहा है!
मिट्टी पड़ी थी। और मां ने कहा था कि मिट्टी में से ही हम आते हैं, और मिट्टी में ही जाते हैं! तो बेटा बेचारा समझा कि ठीक है। या तो कोई आ रहा है

या कोई जा रहा है! कुछ गड़बड़ हो रही है--बिस्तर के नीचे--मेरे ही बिस्तर के नीचे हो रही है। अपनी आंखों से देखा!
राजनेता भी यूं चलता है कि तुम पहचान न पाओ--उत्तर जा रहा कि दक्षिण जा रहा, कि पूरब जा रहा कि पश्चिम जा रहा!
जिन लोगों ने भगवान के चतुर्मुखी होने की कल्पना की है, बड़े होशियार रहे होंगे। चारों मुख! राजनेता के इतने ही होते हैं। चारों दिशाओं में! तुम पहचान ही नहीं सकते कि पूरब जा रहे हो, कि पश्चिम जा रहे, कि दक्षिण जा रहे कि उत्तर जा रहे! कहीं से आ रहे कि जा रहे--कुछ पक्का नहीं। देख लेता है कि जो काम की बात हो; जो जिस समय काम आ जाए--वही बोलने लगता है, वही कहने लगता है, वैसा ही करने लगता है!
मैं ढेर राजनेताओं को जानता हूं, जो चरखा रखे बैठे रहते हैं! कभी कातते-वातते नहीं। बस, कोई मिलने आया--कि जल्दी से चरखा कातने लगे!
एक राजनेता के घर मैं मेहमान था। मैं बड़ा हैरान हुआ, क्योंकि अब मुझसे
कब तक धोखा देते! मैं घर में ही था। सो चरखा चले ही नहीं उनका! और जब भी कोई बाहर से आए, तत्क्षण वे अपना चरखा ठीक करने लगें। धागा निकालने लगें! मैंने उनसे पूछाः यह मामला क्या है? ऐसे कब तक आप कात पाओगे सूत! क्योंकि वह आदमी आ जाता है, तो आप फिर रख देते हो कि अब वह आदमी आ गया। और आदमी जब दरवाजे के भीतर आता है, तभी आप धागा उठाते हो। ऐसे कब तक सूत कतेगा?
उसने कहाः सूत कातना किसको है! अरे, इन मूर्खों को दिखलाना पड़ता है।
और सूत कातना क्या मुझे आता है--टूट टूट जाता है।
मगर होशियार राजनेता छोटे-छोटे चर्खे बना कर रखे हुए हैं! हवाई जहाज में भी ले कर चलते हैं। काम के कुछ नहीं हैं वे चरखे। खादी तो वे खरीदते हैं--महीन से महीन कि ढाका की मलमल मात हो। वह कुछ खुद की काती हुई खादी नहीं है। शुद्ध हो, यह भी जरूरी नहीं है। जहां-जहां तुम देखो कि "यह शुद्ध खादी भंडार"--समझ लेना कि अशुद्ध खादी बिकती है। नहीं तो "शुद्ध" किसलिए लिखा है?
तुम जानते हो कि जहां-जहां लिखा होता है, "शुद्ध घी की मिठाई बिकती है", पक्का समझ लेना कि अशुद्ध घी की बिकती है। जब शुद्ध ही घी की बिकती थी, तो कहीं कोई तख्ती नहीं लगी होती थीः शुद्ध घी की मिठाई बिकती है!" वह तो अशुद्ध जब शुरू होता है, तो शुद्ध की भाषा शुरू हो जाती है।
तुम्हारे समझाने वाले, सिखाने वाले, रजनीकांत, चाहते नहीं कि तुम सच में ही सच बोलो। वे भी यही चाहते हैं कि तुम भी अपने बेटों को सिखा जाना कि सच बोलो बेटा। अच्छे काम करो बेटा। हिंसा न करो। पाप न करो। और जी भर कर यही सब करना, क्योंकि इसके बिना कहीं पहुंच न सकोगे। दो कौड़ी के हो जाओगे। मेरी यही झंझट रही अपने अध्यापकों से, अपने परिवार में। क्योंकि अगर मुझसे उन्होंने कहाः सच बोलो। तो मैं सच ही बोला। फिर उन्हें ही मुझे समझाना पड़ा कि "ऐसा सच नहीं बोलते! तुम बिल्कुल ही सच बोल देते हो!
तो मैंने कहाः आपने कहा कि सच बोलो। तो सच बोल दिया। आप कहते हैं कि घर में नहीं हैं। तो मैंने जा कर कह दिया कि वे हैं तो घर में ही, लेकिन कहते हैं कि कह दो घर में नहीं हैं! आप ही कहते हैं, सच बोलो। अब मैं क्या करूं? या तो साफ-साफ कहो कि झूठ बोलो। या साफ-साफ कहो कि सच बोलो। या यूं कहो कि जब जैसा मौका हो, तब तैसा बोलो। मगर कुछ स्पष्ट तो करो बात।
पति पत्नी झगड़ते रहेंगे और जैसे ही कोई मेहमान आया कि देखो मुस्कुरा रहे हैं एक दूसरे की तरफ देख कर। सुखी दांपत्य जीवन! और ऐसे एक दूसरे की जान खा रहे हैं!
चंदूलाल एक होटल में गए और बैरा से कहा कि भैया, जली-भुंजी रोटी ले आ। सब्जी में या तो नमक ज्यादा डाल या बिल्कुल न डाल। सूप ऐसा बना कि जैसे जीवन-जल का स्वाद!
बैरा भी बहुत हैरान हुआ कि आप कह क्या रहे हैं!
तू मेरी मान, चंदूलाल ने कहा, और फिर सामने बैठ कर मेरी खोपड़ी खा। उसने कहाः क्यों? उसने कहाः मुझे घर की बहुत याद आ रही है। पत्नी से बिछुड़े तीन

महीने हो गए। गुलाबो की बहुत याद आ रही है। सामने बैठ जा और खोपड़ी खा। पचा, जितनी पचा सकता हो। सुखी दांपत्य जीवन चल रहा है सब जगह! वह सब धोखा है। मैंने सब तरह के दंपति देखे--सुख वगैरह कहीं भी नहीं। इसलिए हर कहानी खतम हो जाती है विवाह पर। फिल्में भी खतम हो जाती हैं। शहनाई बजने लगती है बिस्मिल्ला खान की। और भांवर पड़ रही है। और फूल फेंके जा रहे हैं। और खेल खतम! क्योंकि फिर! फिर जो होता है, वह कहना ठीक नहीं। फिर तो दोनों "सुख" से रहने लगे! अब कहने को क्या बचा। जब दोनों सुख से ही रहने लगे, तो कहानी कहां बची! फिर तो दांपत्य जीवन का स्वर्गीय सुख लूटते हैं लोग। और बच्चे देखते हैं कि कैसा दांपत्य जीवन! क्योंकि बच्चों से कैसे छिपाओगे? देखते हैं कि मां बाप के पीछे पड़ी है चौबीस घंटे! बाप पिटाई कर रहा है मां की। मां पिटाई कर रही है, बाप की। यह सब चल रहा है!
चंदूलाल अपने बेटे झुम्मन के साथ फिल्म देखने गया था। फिल्म में चुंबन लेने की तो मनाही है। मगर और चीजों की मनाही नहीं है। असली चीजों की मनाही नहीं है। एक पत्नी ने अपने पति को चांटा रसीद कर दिया। इसकी मनाही नहीं है। यह बड़ा मजा है!
जब पत्नी ने पति को चांटा रसीद कर दिया, तो पति बिल्कुल खड़ा ही रह गया। झुम्मन अपने बाप से बोला, "पिताजी, बिल्कुल आप जैसा है!" चंदूलाल ने कहा, "चुप रह बे। बेवक्त बातें नहीं करते। खेल देख।" घर में यही चल रहा है!
एक सेल्समैन दरवाजा खटखटा रहा था। कोई दरवाजा नहीं खोल रहा था। तभी खिड़की से एक आदमी बाहर आ कर गिरा--धड़ाम से! खिड़की से ही आया था। सो उसने पूछा कि "भैया, क्या बता सकते हो कि घर में घर का मालिक है या नहीं? आपको तो पता ही होगा, भीतर से ही आ रहे हो!"
उसने कहा कि "है घर का मालिक भीतर ही है। अभी यही तो तय हुआ कि घर का मालिक कौन है। हम नहीं हैं, इतना तो पक्का हो गया। घर का मालिक भीतर है।" इसलिए तो हिंदुस्तान में पत्नी को "घरवाली" कहते हैं। पति को "घरवाला" नहीं कहते। घर खरीदे पति--और घरवाली पत्नी। पति तो खिड़की से फेंक दिए जाते हैं!
मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने पूछा कि घर के हालात कैसे चल रहे हैं? सब ठीक-ठाक?
उन्होंने कहाः बिल्कुल ठीक-ठीक। फिफ्टी-फिफ्टी!
मैंने कहाः मतलब!
उन्होंने कहा कि पत्नी चीजें फेंक-फेंक कर मारती है। जब मुझे चोट लग जाती है, तो वह खुश होती है। यानी फिफ्टी! जब नहीं लगती, तो मैं खुश होता हूं--यानी फिफ्टी। फिफ्टी-फिफ्टी चल रहा है। और अभी कल ही निपटारा हो गया है, फिफ्टी-फिफ्टी वह भी। उसने घर का भीतरी हिस्सा सम्हाल लिया है; मैंने घर का बाहरी। अब हम बाहर ही रह रहे हैं! मगर शांति बड़ी चीज है!
ये मां-बाप तुम्हें क्या सिखाएंगे! कैसे सिखाएंगे? इनका जीवन कुछ और है; ये बातें कुछ और कर रहे हैं! ये शिक्षक तुम्हें कैसे सिखाएंगे? ये पंडित-पुरोहित तुम्हें क्या सिखाएंगे?
मनुष्य-जाति पाखंड में जीयी है। और इसलिए चूंकि मेरा संन्यासी प्रामाणिक रूप से जीना चाहता है--और प्रामाणिक का मेरे लिए अर्थ शास्त्र-सम्मत रूप से नहीं। प्रामाणिक का अर्थ है--अपने बोध से। और यह बोध उसका निजी होगा, स्वतंत्र होगा; यह किसी के द्वारा आरोपित नहीं होगा। इसलिए मेरे संन्यासी का विरोध होने ही वाला है। इसमें कुछ आश्चर्यचकित करने वाली बात नहीं है।
अगर तुम प्रामाणिक होकर जीओगे, तो पाखंडी समाज में तुम्हारा विरोध होगा ही। क्योंकि तुम उन सबके पाखंड के लिए एक प्रश्नचिह्न बन जाओगे। मैं कहता हूं कि जैसा सत्य तुम्हारे भीतर हो, वैसा ही जीना है। उससे अन्यथा जीने की कोई जरूरत नहीं है। मुखौटे लगाने की कोई जरूरत नहीं है।
फिर चाहे अपमान मिले--तो अपमान। फिर चाहे नरक भी जाना पड़े, तो तैयार रहना; कोई फिकर मत करना।

मेरी अपनी प्रतीति यह है कि जो प्रामाणिक रूप से जीता है, वह नरक को भी स्वर्ग बना लेगा। और जो पाखंडी है, वह अगर स्वर्ग भी चला गया, तो वह भी नरक हो जाएगा।
एक यहूदी धर्मगुरु मरा। स्वर्ग पहुंचा। देख कर बहुत हैरान हुआ कि वहां कुल-जमा तीन आदमी हैं! कुल तीन! बड़ा चकित हुआ। वे भी तीन क्या कर रहे हैं--बड़ा हैरान हुआ! एक तो हैं मगरूर जी भाई मोरार जी भाई देसाई। वे मेरी किताब "संभोग से समाधि की ओर" पढ़ रहे हैं! दूसरे हैं अयातुल्ला खोमैनियाक, वे "प्ले-बॉय" पढ़ रहे हैं! तीसरा है पोप वेटिकन का, पोलक; वे "प्ले-गर्ल" पढ़ रहे हैं। और वे भी पुराने न मालूम कब के संस्करण, जो किसी तरह स्मगल कर लाए होंगे स्वर्ग में। क्योंकि स्वर्ग में ये सब पत्रिकाएं नहीं मिलतीं। और न किताबें मिलतीं!
उस यहूदी फकीर ने जाकर परमात्मा से कहा कि यह मैं क्या देख रहा हूं! कुल तीन आदमी! और वे भी गजब की चीजें पढ़ रहे हैं। और बड़े धार्मिक भाव से पढ़ रहे हैं! तो मैं एक बार इसके पहले कि तय करूं कि मुझे कहां बसना है--नरक भी देख लेना चाहता हूं।
परमात्मा ने कहाः तुम्हारी मर्जी। नरक भी देख आओ।
तो चौबीस घंटे वह नरक गया। देखा तो बड़ा दंग हुआ। वहां न तो कोई आग के कड़ाहे जल रहे हैं; न कोई आग के कड़ाहों में भूना जा रहा है। न किन्हीं की गर्दनें काटी जा रही हैं; न कोई सूली पर लटकाया जा रहा है! न कोई कोड़े चल रहे हैं। वहां तो बड़ा सन्नाटा है; बड़ी शांति है। संगीत बज रहा है। बांसुरी बज रही है। कृष्ण वहां बांसुरी बजा रहे हैं। महावीर वहां ध्यान कर रहे हैं। बुद्ध वहां मौन से बैठे हैं। लोग नाच रहे हैं! लोग समारोह मना रहे हैं। उसने सोचा--हद्द हो गई! और बड़े बैंड-बाजे हैं।
वह लौट कर आया। उसने कहा कि यह मामला क्या है? यह सब उलट हालत हो गई है!
यह स्वर्ग है आपका! सब उदास पड़ा है। धूल जमी है। और ये तीन खूसट--ये बैठे हैं यहां! इनको देख कर आदमी को घबड़ाहट लगे। इनका कौन सत्संग करे! और नरक में बड़ी मौज चल रही है। आनंद ही आनंद है। कम से कम आप एक बैंडबाजा तो खरीद लो।
तो ईश्वर ने गुर्रा कर कहा कि इन तीन खूसटों के लिए बैंड-बाजा खरीदने
के लिए पैसा कहां!
तो उस यहूदी फकीर ने कहाः मैं तो नरक चला। आप क्षमा करें। नाराज न हों। मैं नरक चला।
ईश्वर ने कहाः ठहरो। मैं भी आता हूं। ये तीन मेरी भी जान खाए जा रहे हैं!
जहां बुद्ध होंगे, वहां स्वर्ग होगा। स्वर्ग में बुद्ध नहीं जाते; जहां जाते हैं, वहां स्वर्ग बन जाता है।
तुमसे कहा गया है कि बुद्धपुरुष स्वर्ग जाते हैं। मैं तुमसे कहता हूं--बुद्धपुरुष जहां जाते हैं, वहां स्वर्ग बन जाता है। तुमसे कहा गया है कि जो अबुद्ध हैं, वे नरक जाते हैं। नहीं। वे जहां जाएं--स्वर्ग में भी चले जाएं--वहां नरक बन जाएगा। आदमी अपने साथ अपना स्वर्ग और नरक ले कर चलता है। पाखंडियों की जमात जहां इकट्ठी हो जाएगी, वहां नरक होगा।
मत फिकर करना अपमान की। प्रामाणिक रूप से जी कर अपमान मिले, तो भी जीवन में एक सुगंध होती है, एक रस होता है, एक अहोभाव होता है। गर्दन भी कट जाए... । जीसस की कटी, मगर ओंठों पर प्रार्थना रही। मंसूर की कटी, मगर ओंठों पर मुस्कुराहट रही। सुकरात की कटी, मगर चारों तरफ धन्यता बरस रही थी। प्रामाणिक व्यक्ति को दुख दिया नहीं जा सकता। हालांकि दुख देने की बहुत कोशिश की जाएगी। जिसने भीतर अपने को खंडों में नहीं तोड़ा है, उसने स्वर्ग बसा ही लिया है। अखंड जो हो गया, वह स्वर्ग हो गया। और जो खंडों में बंटा है, नरक है।ेनरक और स्वर्ग भौगोलिक नहीं हैं; आंतरिक अवस्थाएं हैं। मेरी एक ही शिक्षा है--अखंड बनो; सहज बनो--और अपनी सहजता को समग्रता से जीओ। इसकी फिकर ही मत करो कि किसी शास्त्र के अनुकूल बैठती है कि नहीं। क्योंकि जिसने शास्त्र रचा, वह और ढंग का आदमी रहा होगा। उसने शास्त्र अपने हिसाब से रचा है। लेकिन लोग उलटी स्थिति में पड़े हुए हैं।

कोई मनु के हिसाब से जी रहा है। कोई महावीर के हिसाब से जी रहा है। कोई बुद्ध के हिसाब से जी रहा है। कोई कृष्ण के हिसाब से जी रहा है। लेकिन ध्यान रखो, तुम्हें अगर कृष्ण के कपड़े नहीं बनते हैं, तो फिर क्या करोगे! हाथ-पैर काटोगे अपने!
यहूदी कथा हैः एक बिल्कुल पागल सम्राट था, उसके पास एक सोने का बिस्तर था; हीरे-जवाहरात जड़ा। उसके घर जब भी कोई मेहमान होता... । भूल-चूक से ही लोग होते थे मेहमान। क्योंकि धीरे-धीरे खबर पहुंच गई थी। मगर फिर भी कभी-कभी कोई मेहमान हो जाता। तो वह उसको बिस्तर पर लिटाता। वह पागल आदमी था। अगर वह बिस्तर से लंबा साबित होता, तो वह उसके हाथ-पैर कटवा देता। बिस्तर के बराबर कर के रहता! और अगर छोटा होता, तो उसने पहलवान रख छोड़े थे, वे उसके हाथ-पैर खींच कर उसको लंबा करते! उसमें हाथ-पैर उखड़ जाते। मगर बिस्तर के अनुकूल होना चाहिए! आदमी को बिस्तर के अनुकूल होना चाहिए। आदमी के लिए बिस्तर नहीं है; आदमी बिस्तर के लिए हैं! वह बिल्कुल शास्त्रीय बात कह रहा था। ऐसे धार्मिक आदमी था।
यही तो सारे धर्म कर रहे हैं--तुम्हें शास्त्रों के अनुसार होना चाहिए! फिर अगर तुम थोड़े लंबे हो, तो काटो। अगर थोड़े छोटे हो, तो खींचो। तुम्हारी जिंदगी मुश्किल में पड़ जाएगी।
तुम्हें सिर्फ अपने अनुसार होना है। परमात्मा ने तुम जैसा कोई दूसरा नहीं बनाया। तुम्हें अनूठा बनाया है। इस सौभाग्य को तो समझो। कुछ तो देखो। कुछ तो समझो। कुछ तो पहचानो। परमात्मा ने तुम जैसा कोई आदमी न पहले बनाया है और न फिर बनाएगा। वह दोहराता नहीं। वह प्रत्येक व्यक्ति को अनूठा बनाता है। इसीलिए तुम किसी के अनुसार, किसी ढांचे के अनुसार, जी नहीं सकते हो। जीओगे--मुश्किल में पड़ोगे। जीओगे--कष्ट पाओगे। अपनी ज्योति से जीओ।
बुद्ध ने अंतिम क्षण में यही कहा था--"अप्प दीपो भव--अपने दीये खुद बनो।" मत पूछो... ।
तो मैं किसी को आचरण नहीं देता। मेरे ऊपर यही सबसे बड़ा लांछन है; सबसे बड़ी आलोचना है--कि मैं अपने संन्यासियों को आचरण नहीं सिखाता। मैं कैसे सिखाऊं?
मैं उन्हें अपने कपड़े नहीं दे सकता। क्योंकि किसी को छोटे पड़ेंगे, किसी को लंबे पड़ेंगे। किसी को ढीले पड़ेंगे। किसी को चुस्त पड़ेंगे। मैं उन्हें कैसे आचरण दूं! मैं सिर्फ उन्हें भीतर का दीया जलाने की कला सिखाता हूं। फिर वे अपने कपड़े खुद काटें; बनाएं। अपना आचरण खुद निर्मित करें। अपनी रोशनी में जीएं।
आचरण नहीं देता मैं--अंतस देता हूं। और तुम अब तक आचरण ही के अनुसार जीए हो। तुम्हारे सब गुरुओं ने तुम्हें अंतस नहीं दिया--आचरण देने की कोशिश की है। वे तुम्हें एक ढर्रा दे देते हैं कि बस, ऐसा करो। चाहे तुम्हें रुचे, चाहे न रुचे।
शास्त्र लिखते हैं अक्सर बूढ़े लोग। स्वभावतः उन दिनों में बुढ़ापे की बड़ी कीमत थी। अब भी हमारे देश में तो बुढ़ापे की बड़ी कीमत है। बूढ़ा कहे, तो सच ही कहता होगा!
अक्सर यह होता है कि बूढ़ा बहुत बेईमान हो जाता है। बूढ़ा होते-होते-- जीवन भर का अनुभव... !
बच्चे सरल होते हैं; बूढ़े कपटी हो जाते हैं। शास्त्र बूढ़ों ने रचे; वे कपटपूर्ण हैं। उनमें बेईमानी है। उनमें होशियारी है। और फिर कब रचे! किसने रचे! जमाने बीत गए। वह वक्त न रहा। वे लोग न रहे। सब बदल गया। अब तुम उनके अनुसार जीओगे, तो कष्ट पाओगे।
मंजिल का पता मालूम नहीं, रहबर भी नहीं, साथी भी नहीं
जब रह गई मंजिल चार कदम, हम पांव उठाना भूल गए!
तुम जब तक उधार जीओगे, ऐसी ही झंझट में पड़ोगे। ईश्वर भी सामने खड़ा होगा, पहचान न सकोगे। चूंकि तुम एक तस्वीर टांगे चल रहे हो। उस तसवीर से मेल खाना चाहिए। और तुम्हारी बात क्या; तुम्हारे बड़े से बड़े तथाकथित श्रद्धेय और पूज्य लोगों की भी यह दशा है।

बाबा तुलसीदास के संबंध में यह कहानी है कि जब उनको कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया वृंदावन में, तो उन्होंने झुकने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, "मैं तो सिर्फ धनुर्धारी राम के सामने झुकता हूं। मैं और किसी के सामने नहीं झुक सकता! मैं तो एक राम को ही जानता हूं।" उन्होंने कहा कि "जब तक धनुषबाण नहीं लेऊ हाथ--तुलसी झुके न माथ।" मेरा माथा तो तब झुकेगा, जब धनुषबाण हाथ में लोगे।
एक तस्वीर टांगे हुए हैं, जैसे धनुषबाण की कोई बड़ी खूबी हो! जैसे धनुषबाण का कोई बड़ा राज हो! धनुषबाण तो सिर्फ हिंसा के प्रतीक हैं। यह बांसुरी कहीं ज्यादा प्रेम का प्रतीक है। और ये बाबा तुलसीदास अंधे मालूम होते हैं! ये बाबा तुलसीदास नहीं हैं--बाबा सूरदास मालूम होते हैं! आंखें हैं इनके पास?
ये बांसुरी के सामने नहीं झुक सकते--धनुषबाण के सामने झुकेंगे। ये कृष्ण को नहीं पहचान सकते। राम को ही पहचानते हैं! एक बांध ली जकड़।
और परमात्मा अनंत रूपों में प्रकट होता है। और तुम कोई एक रूप पकड़ कर बैठ रहे, तो चूकोगे--चूकते ही जाओगे। "जब रह गई मंजिल चार कदम, हम पांव उठाना भूल गए!" उधार चलोगे, तो यह हालत होगी। मंजिल सामने खड़ी होगी और तुम पांव उठाना भूल जाओगे। पांव तुमने कभी उठाए नहीं। धक्कम-धुक्की में आ गए। भीड़भाड़ चल रही थी, तुम भी चले आए।
मंजिल का पता मालूम नहीं, रहबर भी नहीं, साथी भी नहीं
जब रह गई मंजिल चार कदम, हम पांव उठाना भूल गए!
उधार जीना पाखंड है। उदघोषणा करो अपनी निजता की। परमात्मा तुम्हारे भीतर भी है उतना, जितना कृष्ण के भीतर था। तुम्हारे भीतर से भी श्रीमद्भगवतगीता पैदा हो सकती है। होनी चाहिए। वह झरने का स्रोत तुम्हारे भीतर भी है। तुम्हारे भीतर से भी बुद्धत्व की ज्योति जल सकती है। तुम उतने ही सक्षम हो, जितने सिद्धार्थ गौतम। तुम्हारी क्षमता कम नहीं।
परमात्मा किसी को कम और ज्यादा देकर नहीं भेजता। सबको बराबर संभावना देता है। फिर हमारे ऊपर है--हम उस संभावना को वास्तविक बनाते हैं या नहीं। और जो आदमी और कुछ होने की कोशिश में लगा है, किसी दूसरे की नकल में पड़ा है, वह कभी स्वयं तो हो नहीं पाएगा; और दूसरा हो नहीं सकता। बिबूचन में पड़ा रह जाएगा। विडंबना में उलझा रह जाएगा। उसका जीवन सुलझेगा नहीं; उलझन ही उलझन से भर जाएगा। उसका जीवन एक पहेली हो जाएगा। कांटे ही कांटे--फूल उसमें नहीं खिलेंगे।
जरा सोचो, अगर गुलाब जुही होना चाहे, तो बस पागल हो जाए! गुलाब भी न हो सकेगा, जुही भी न हो सकेगा। गुलाब को गुलाब ही होना है। जुही को जुही होना है। जुही जुही होकर अर्पित होगी परमात्मा को। गुलाब गुलाब होकर अर्पित होगा परमात्मा को। न तो गुलाब का शास्त्र जुही के लिए लागू हो सकता; और न जुही का आदेश गुलाब के लिए लागू हो सकता।
अपनी अद्वितीयता पहचानो।
इसलिए मेरे संन्यासी का रजनीकांत, विरोध होगा, क्योंकि मैं कुछ बात
कह रहा हूं, जो परंपरा की नहीं है; जो परंपरा-मुक्त है।
मैं तुम्हें स्वतंत्रता का पाठ दे रहा हूं--और स्वतंत्रता के पक्ष में कोई भी नहीं है। हम सदियों से गुलाम हैं। हम पहले आध्यात्मिक रूप से गुलाम हुए, इसीलिए हम राजनीतिक रूप से गुलाम हुए। हमारी राजनीतिक गुलामी हमारी आध्यात्मिक गुलामी का तार्किक निष्कर्ष थी। और हम अभी भी गुलाम हैं आध्यात्मिक रूप से। इसलिए हम किसी भी दिन राजनीतिक रूप से गुलाम बनाए जा सकते हैं; इसमें कुछ अड़चन नहीं है।
हमें स्वतंत्रता का पाठ ही भूल गया; हम भाषा ही भूल गए। और पंडित-पुरोहितों ने तुम्हारे जीवन को विषाक्त कर दिया है। मैं चाहता हूंः मुक्त हो जाओ उन सबसे।
छोटी सी जिंदगी है, इतना कर लो कि अपने भीतर ध्यान जल जाए, ध्यान की ज्योति उठ आए, शेष सब अपने आप हो जाएगा। फिर कितना ही कष्ट झेलना पड़े, हर

कष्ट एक चुनौती होगी। और हर कष्ट तुम्हारे लिए एक विकास का अवसर होगा, एक मौका होगा।
विरोध होगा। गालियां पड़ेंगी। अपमान होगा। मगर भीतर तुम्हारे शांति होगी, आनंद होगा, उत्सव होगा। भीतर तुम्हारे परमात्मा के साथ मिलन चलता रहेगा।
परमात्मा से मिलना है, तो समाज की चिंता न करना। और समाज की चिंता करना है, तो फिर परमात्मा की बात ही उठाना उचित नहीं है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मेरे माता-पिता तुहाडी शरण आए हैं--मैंनूं मिलण दे बहाने। सदगुरु साहिब, किरपा करो कि इन्हां नूं वी तुहाडा रंग लग जाए।

संत महाराज! जल्दी न करो, लगेगा। मगर जल्दी की, तो गड़बड़ हो सकती है।
संत की इच्छा तो प्यारी है, क्योंकि कौन अपने मां-बाप को वह आनंद न देना चाहेगा, जो उसे स्वयं मिल रहा हो! तुम चाहोगे कि तुम्हारे मां-बाप भी इस मस्ती के आलम में डूब जाएं। अब आ गए हैं इस महफिल में, तो कहीं खाली न चले जाएं! किसी बहाने आ गए। तुम्हीं को मिलने के बहाने आ गए, क्या फर्क पड़ता है! कोई बहाना चाहिए आने के लिए। आ गए--यह बहुत।
और तुम्हारे माता-पिता सीधे-सादे आदमी हैं। सरल आदमी हैं। लेकिन सरलता की एक झंझट है, और वह झंझट यह है कि सरलता अतीत के साथ बंधी होती है; परंपरा के साथ बंधी होती है। सरलता आज्ञाकारी होती है।
तो वे भी स्वभावतः एक रंग में ढले हैं। मेरा रंग थोड़ी बगावत चाहता है; थोड़ा विद्रोह चाहता है। संन्यास है ही विद्रोह समाज से। यह समाज का त्याग नहीं है--यह समाज से विद्रोह है। यह समाज से भाग जाना नहीं है--समाज में जीना है और क्रांति के रंग को ले कर जीना है।
लेकिन सरलता का एक लाभ भी है कि अगर वे यहां आ गए हैं, तो जरूर मेरी बात
उन तक पहुंच जाएगी; उतर जाएगी उनके हृदय में। मगर तुम जल्दी मत करना। तुम जल्दी किए, तो वे बंद हो जाएंगे। तुमने कोशिश की, तो कठिनाई हो जाएगी।
कभी भूल कर भी कोई कोशिश न करे कि संन्यासी बन जाए--मेरा पिता, मेरी मां, मेरी पत्नी, मेरा पति, मेरा बेटा, मेरी बेटी। कोई कोशिश न करे। क्योंकि तुम्हारी कोशिश जबरदस्ती मालूम पड़ेगी। तुम तो प्यार से कर रहे हो। तुम तो बांटना चाहते हो। तुम्हारी नीयत तो ठीक। तुम्हारा भाव तो सुंदर। लेकिन दूसरे की स्वतंत्रता पर भी ख्याल रखना।
मेरा रंग जबरदस्ती नहीं थोपा जा सकता। यह तो फिर वही भूल हो जाएगी!
समझ में आएगी उनके बात। उनके बात, समझ में आनी शुरू हुई है।
और जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, वैसे-वैसे दो घटनाएं घटती हैं। एक तो यह कि बदलना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि लगता है आदमी को कि अब इतनी जिंदगी तो एक ढंग से जी लिए, अब कैसे बदलें! आदतें मजबूत हो गई होती हैं।
लेकिन एक फायदा भी है। और फायदा यह है कि मौत करीब आ रही होती है। मौत दरवाजे पर दस्तक देने लगती है। तो यह भी सवाल उठना शुरू हो जाता है कि जिंदगी भर इस ढंग से जीए तो जरूर, मगर पाया क्या? हाथ क्या लगा? और मौत करीब आई जा रही है। अब देर करने का समय नहीं है। अब समय गंवाने का मौका नहीं है। अब कल पर नहीं टाला जा सकता। पता नहीं कल हो या न हो। और एक क्षण में मौत आ जाती है। और एक क्षण में सब बदल जाता है।
दबा के कब्र में सब चल दिए, दुआ न सलाम
जरा सी देर में क्या हो गया जमाने को!
एक क्षण में जो अपने थे--अपने नहीं रह जाते। बेगाने हो जाते हैं। क्षण में जीवन तिरोहित हो जाता है।
"दबा के कब्र में सब चल दिए, दुआ न सलाम!" और कोई सलाम भी नहीं करता; दुआ
भी नहीं करता। यह भी नहीं कहता कि अलविदा! जल्दी पड़ती है। आदमी मरा कि कैसे छुटकारा हो अब इस लाश से! क्योंकि पक्षी तो उड़ आया, अब तो पिंजड़ा पड़ा रह गया। अब इस पिंजड़े को क्या दुआ करो, क्या सलाम करो!
दबा के कब्र में सब चल दिए, दुआ न सलाम
जरा सी देर में क्या हो गया जमाने को!

वही हैं हम कभी जो रात-दिन फूलों में तुलते थे
वही हम हैं कि तुरबत चार फूलों को तरसती है।
तो जैसे मौत करीब आती है, वैसे एक लाभ भी है कि मौत जगाने लगती है। मौत पूछने लगती है, "कमाया कि गंवाया? तैयार हो चलने को उस अनंत यात्रा पर कि यूं ही व्यर्थ के उलझनों में उलझे रहे? व्यर्थ के धोखे खाते रहे? आत्मवंचनाओं में पड़े रहे?"
तो तुम्हारे माता-पिता संत, अब बूढ़े हो रहे हैं। तो यूं तो मुश्किल होगा बदलना, क्योंकि पुरानी आदतें। मगर मौत भी दरवाजे पर दस्तक देगी अब। इसलिए बदलना आसान भी हो सकता है। इस पर निर्भर करता है कि किस बात पर ज्यादा ध्यान देते हैं। अगर पुरानी आदतों पर ही आंखें गड़ाए रहे, तो मौत को नकारते रहेंगे। लेकिन तुम जैसा बेटा जिनके घर में पैदा हुआ है, वे देखेंगे आगे।
संत से मुझे प्रेम है, इसलिए तो "संत महाराज" कहता हूं। ऐसे आदमी संत नहीं हैं--अंट-शंट हैं! मगर उनको मैं "संत महाराज" कहता हूं। मुझे प्रेम है, लगाव है। सरल है संत। बहुत सरल है। बहुत सीधा-सादा है। छोटे बच्चे जैसा है। तो जिसमें इतना सरल फूल खिला हो, उन मां-बाप के जीवन में भी क्रांति होनी की संभावना पूरी है।
जाने कितना जीवन पीछे
छूट गया अनजाने में
अब तो कुछ कतरे हैं बाकी
सांसों के पैमाने में।
जज्बों की, तिस्मार इमारत सांसों की बेजार खंडहर
जाने क्यों बैठे हैं तन्हा हम ऐसे वीराने में।
क्या-क्या रूप लिए रिश्तों ने जाने क्या-क्या रंग भरे
अब तो फर्क नहीं लगता है
अपने और बेगानों में।
इस दुनिया में आकर हमने।
कुछ ऐसा दस्तूर सुना
अक्ल की बातें करने वाले
होंगे पागलखाने में।
यहां तो बातें अक्ल की हो रही हैं। यहां तो बातें साधारण जीवन की नहीं हैं; परम जीवन की हैं। सरल चित्त व्यक्ति--साहस कर सकते हैं, हिम्मत कर सकते हैं, छलांग लगा सकते हैं। इस पर निर्भर करता है सब, कि पुरानी आदतों को ही तो नजर में नहीं रखेंगे। जो बीत गया वह बीत गया!
जाने कितना जीवन पीछे
छूट गया अनजाने में!
तो जो भूलें हो गईं--हो गईं। जो गया--गया। और सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए, तो भूला नहीं कहा जाता।
अब तो कुछ कतरे हैं बाकी
सांसों के पैमाने में!
तो जब कुछ कतरे ही बाकी रह जाते हैं, सांसों के पैमाने में, तो अगर मौत
पर नजर आ जाए, अगर मृत्यु का ख्याल आ जाए, तो क्रांति हो जाती है। मगर तुम जल्दी मत करना। तुम्हारी जल्दी बाधा बन सकती है। आए हैं यहां, अपने आनंद में उन्हें भागीदार बनाओ। यहां जो नृत्य चल रहा है, उसमें उन्हें निमंत्रित करो। यहां जो शराब ढल रही है, उसे उन्हें पीने दो। फिर अपने से घट जाती है बात।
लग जाएगा रंग। यहां से वही नहीं जाएंगे, जैसे आए थे। अब यह बात और है
कि इस बार डूबें कि अगली बार डूबें। यह उन पर छोड़ दो। जरा भी खींचतान मत करना। क्योंकि बड़ी कठिनाई है।

नाते-रिश्ते बड़ी नाजुक बातें हैं। अगर पति कोशिश करे कि पत्नी संन्यासिनी हो जाए, तो वह अकड़ जाती है, क्योंकि उसके अहंकार को चोट लगती है। अगर पत्नी कोशिश करे कि पति संन्यासी हो जाए--पति अकड़ जाता है; उसके अहंकार को चोट लगती है। और बेटा अगर कोशिश करे कि बाप और मां संन्यासी हो जाएं, तब तो और भी अड़चन आ जाती है, क्योंकि मां-बाप--तुम्हारी कितनी ही उम्र हो, तुम्हारी कितनी ही समझ हो, कितना ही ध्यान हो--उनके सामने तो तुम बच्चे हो। उनके अहंकार को बहुत चोट लग जाती है। बहुत चोट लग जाती है--कि मेरा बेटा और अपने ढंग से मुझे चलाना चाहे! कभी नहीं। बहुत अड़चन आ जाती है। यहां मेरी एक संन्यासिनी है अमरीका से--शून्यो। उसकी उम्र होगी कोई सत्तर वर्ष। उसकी मां की उम्र है नब्बे वर्ष। मां अभी जिंदा है। उसकी मां के पत्र आते हैं। वे देख कर मैं दंग हुआ। सत्तर वर्ष की लड़की! अब तो खुद भी सत्तर वर्ष की लड़की बूढ़ी हो गई--शून्यो। शून्यो यहां आकर संन्यस्त हो गई। और फिर उसने अमरीका का ख्याल ही विस्मरण कर दिया। यहां डूब गई पूरी तरह। उसकी मां उसे लिखती है कि "अरी मूरख, तुझमें अकल न आई! तू बच्ची ही रही!" सत्तर साल की बेटी को लिखती है कि "तू बच्ची ही रही। घर वापस आ। किस उलझन में पड़ गई! किस चक्कर में उलझ गई! किसके सम्मोहन में आ गई!"
सत्तर वर्ष की बेटी भी नब्बे वर्ष की मां को बेटी ही मालूम पड़ती है, क्योंकि मां और बेटी के बीच जो बीस साल का फासला है, वह तो उतना का ही उतना है। जब शून्यो पांच साल की थी, तब भी फासला इतना ही था--बीस साल का। अब सत्तर साल की है, तो भी फासला तो बीस ही साल का है। इसलिए मां-बाप की नजरों में बच्चे कभी बड़े नहीं होते।
मैं बीस साल तक यात्रा करता रहा। जितनी यात्रा मैंने की, इस देश में शायद ही किसी व्यक्ति ने की होगी। महीने में कम से कम चौबीस दिन या तो कार में या हवाई जहाज में या ट्रेन में चलता ही रहा--चलता ही रहा।
लेकिन जब भी मैं अपने गांव जाता, मेरी नानी मुझसे एक बात हमेशा कहती। क्योंकि उनको हमेशा दो बातों की चिंता लगी रहती थी। तो वह मुझे याद दिला देती थी कि "एक तो चलती गाड़ी में कभी मत चढ़ना!"
मैं उनको कहता कि "चलती गाड़ी में मैं चढूंगा ही क्यों!"
वे कहती कि "नहीं; चलती गाड़ी में चढ़ना ही मत। न चलती गाड़ी में उतरना। गिर-गिरा जाओ, कुछ हो जाए! और यह तुम्हें क्या सनक सवार है कि बस, घूमते ही रहते हो! अब थिर हो कर बैठो--एक जगह बैठो।"
और दूसरी बात कि "किसी से विवाद नहीं करना!"
इसकी उन्हें हमेशा चिंता लगी रहती थी। वह जानती थी मुझे बचपन से--कि किसी से भी मेरा विवाद हो जाता था। घर में कोई मेहमान आए, उससे विवाद हो जाए। कोई पंडित पूजा-पत्री के लिए आए, उससे विवाद हो जाए। स्कूल में शिक्षकों से विवाद हो जाए। शिकायतों पर शिकायतें! मोहल्ले में जिससे भी आए शिकायत ही आए!
तो उनको हमेशा चिंता बनी रहती कि देखो, किसी से ट्रेन में अनजान अजनबी आदमियों से कोई विवाद नहीं करना नाहक! तुम्हें क्या मतलब दुनिया से? जाने दो भाड़ में, जिसको जाना है। नाहक झंझट-झगड़ा खड़ा नहीं करना कहीं!
ये दो उपदेश वे देती ही रहीं--अंतिम समय तक! उनकी नजरों में स्वभावतः मैं सदा बच्चा ही रहा। और यह स्वाभाविक भी है। इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं।
तो तुम्हारे मां-बाप को यहां सुविधा दो। यहां ध्यान में लाओ। यहां धीरे से उनको छोड़ दो। और हट गए छोड़ कर। तुम खड़े रहोगे, तो वे ध्यान भी न करेंगे--कि बेटा देख रहा है--कैसे नाचें! बेटा देख रहा है--कैसे गाएं! क्या कहेगा यह--कि हमारे मां-बाप को क्या हुआ! सो ये भी होने लगे! ये भी पगलाने लगे! अब यह तो पगला ही गया है!
तुम उनको छोड़ दिए ध्यान में। तुम हट गए--बिल्कुल हट गए वहां से, ताकि
वे मुक्त भाव से, सरलता से सम्मिलित हो सकें।
सीधे-सादे लोग हैं--यह मेरे ख्याल में है। और जब यहां आ गए हैं, तो मुझ
पर छोड़ दे। यहां रंग लग ही जाएगा।

यहां आकर और बच जाना मुश्किल है। यहां होली हो रही है। यहां गुलाल उड़ रही है। यहां दीये जल रहे हैं। दीवाली है। दिन होली--रात दीवाली! कैसे जाएंगे बच कर!
मगर अगर तुमने जोर डाला, तो द्वार बंद हो जाएंगे। तुम द्वार से हट जाओ। मैं निपट लूंगा। मैं जानता हूं--किस में कैसे प्रवेश करना। डेढ़ लाख संन्यासी ऐसे ही नहीं हो गए हैं! उसकी भी कला होती है।
कोई बुद्ध हुआ क्या जैसे, मुझमें कुछ संबुद्ध हो गया
कोई मुक्त हुआ क्या जैसे, मुझमें ही कुछ मुक्त हो गया
जब किसी बुद्ध के पास बैठोगे, तुम्हारे भीतर कुछ होने ही लगेगा। कोई घंटियां बजने लगेंगी हृदय में। कोई गीत उठने लगेगा। कोई गंध फैलने लगेगी। कोई बुद्ध हुआ क्या जैसे, मुझमें कुछ संबुद्ध हो गया
कोई मुक्त हुआ क्या जैसे, मुझमें ही कुछ मुक्त हो गया
मैं अपनी सीमित बाहों में, बांधे हूं आकाश असीमित
मैं अपनी नन्हीं चाहों में, साधे हुए विराट अपरिमित
कोई शुभ संकल्प जगे तो, मेरे प्राण चहक उठते हैं
मेरा अणु व्यक्तित्व, मगर लगता मुझमें अस्तित्व समाहित कोई पंछी उड़े गगन में, जैसे मैं ही उडूं अबाधित
कहीं मिले जीवन को उत्सव, वह मुझसे संयुक्त हो गया
इस व्यापक संसृति-सागर में, अलग-थलग है लहर न कोई
इस फैले चेतन-कानन में पादप कोई नहीं अकेला
सुख-दुख के ताने-बाने में सब सबसे अंतर्गुम्फित हैं मुझमें ही होती सब हलचल, मुझमें ही लगता सब मेला
हर पनघट मेरा पनघट है, हर गागर मेरी गागर है
ले कोई भी स्वाद अमृत का, समझो मैं संयुक्त हो गया कोई खुशी नहीं अपनी भर, कोई पीड़ा नहीं पराई
चाहे मरघट का मातम हो, चाहे कहीं बजे शहनाई
हर घटना मुझमें घटती है, सब मेरा मानस-मंथन है सात सुरों की बंसुरिया में, कभी हंसी है कभी रुलाई मैं सब भावों का संगम हूं, मुझमें जग हंसता-गाता है चाहे कोई जगे योग में, समझो मैं ही युक्त हो गया कोई मुक्त रहे या बंदी, कोई सुमिरे या बिसरा दे
कोई हो जाए संन्यासी, या कोई संसार बसा दे
चाहे कोई अलख जगाए, या कालिख से पुते चदरिया
मुझसे दूर कहां जाएगा, चाहे सुप्त रहे या जागे
मेरे इस चैतन्य-जलधि का, दिखा न कोई कूल-किनारा
देखो, यह संगीत उठा तो, मेरे लिए निरुक्त हो गया
कोई बुद्ध हुआ क्या जैसे, मुझमें कुछ सम्बुद्ध हो गया
कोई मुक्त हुआ क्या जैसे, मुझमें ही कुछ मुक्त हो गया
उनको डूबने दो। एक सागर यहां मौजूद है। दिखाई नहीं पड़ता; अदृश्य है।
और इसमें जो डूबा, वह भीगेगा; अनभीगा नहीं जा सकेगा।
मगर तुम हट जाओ। संत! तुम किनारे पर मत खड़े रहना। तुम हट ही जाओ। तुम बात ही मत उठाना। वे कहें भी, तो भी उत्सुकता मत दिखाना। अपनी उत्सुकता भीतर ही भीतर रखना। बोलना भी मत। कहना भी मत। हां, तुम्हारे आनंद को उन्हें देखने दो। तुम्हारे भीतर जो रूपांतरण हुआ है, उसे पहचानने दो। बस, वही उन्हें भी ले आएगा। आ जाएं, तो शुभ है। आ जाएं, तो मंगल है, क्योंकि कल का कोई भरोसा नहीं है।

आज इतना ही।

ज्यूं था त्यूं ठहराया
पांचवां प्रवचन

जागो-डूबो

पहला प्रश्नः ओशो, अहमक अहमदाबादी मिल गया। वही मारवाड़ी चंदूलाल का पिता और ढब्बूजी का चाचा! लेकिन है बहुरूपी। देखती हूं--अदृश्य हो जाता है। अचानक दूसरे रूप में प्रकट होता है। इसकी लीला विचित्र है। जन्मों- जन्मों से स्वामी बन कर बैठा है। अब तो मैं थकी। बूढ़ा, कुरूप, गंदा--पीछा नहीं छोड़ता। आपके सामने होते हुए भी आपसे मिलने नहीं देता। आपके प्रेम-सागर में डूबने नहीं देता। जीवन सौंदर्य की उड़ान नहीं लेने देता। इसी के कारण मैं विरह अग्नि में जली जा रही हूं। मैं असहाय, असमर्थ हूं।
ओशो! मेरे भगवान!
मेहर करो मेहरबान
जुगत करो जोगेश्वर
चरण पड़ी दासी तोरी
भाव-भक्ति दो अविनाशी
ताकि मैं--
आपके स्तुति गान जन्मों-जन्मों तक
गाती रहूं, गाती रहूं, गाती रहूं!

योग मंजु! अहमक अहमदाबादी यानी अहंकार। अहंकार एक भ्रांति है, इसलिए छुटना एक अर्थ में कठिन, दूसरे अर्थ में बड़ा सरल। जरा सी समझने की बात है। अगर अहंकार से छुटने की कोशिश की, तो फिर मुश्किल हो जाएगी, क्योंकि जो नहीं है, उसे कैसे छोड़ोगी? जो नहीं है, उससे कैसे लड़ोगी? जो नहीं है, उससे कैसे भागोगी?
जो है ही नहीं, उसे छोड़ने के प्रयास में ही भ्रांति हो जाएगी, भूल हो जाएगी। जो नहीं है, उसे जानना ही पर्याप्त है कि नहीं है। छोड़ने की जरूरत नहीं उठती। छोड़ने का तो अर्थ हुआ--मान लिया कि है।
अहंकार से बहुत लोग छूटने की चेष्टा करते हैं; उसी चेष्टा में अटक जाते हैं। अहंकार नहीं अटका रहा--छूटने की चेष्टा अटका रही है। जैसे कोई अंधकार से लड़े--जीतेगा क्या? लाख करे उपाय। और कितना ही बलवान हो--हारेगा-- सुनिश्चित हारेगा। और जब बार-बार हारेगा, तो स्वभावतः सोचेगा--कितना असहाय हूं! कितना बेबस! कितना शक्तिहीन!
तर्क कहेगाः "हारते हो, क्योंकि अंधकार सबल है।" और हारते इसलिए नहीं
हो कि अंधकार सबल है। हारते इसलिए हो कि अंधकार है नहीं। जो नहीं है, उससे लड़ोगे, तो हारोगे ही--मिटोगे ही--टूटोगे ही। अहंकार होता, तो जीत भी संभव थी।
"अहंकार स्वामी बना बैठा है"--ऐसा तुझे समझ में आया मंजु! यह समझ न हुई। अगर अहंकार स्वामी बना बैठा है--ऐसा समझ में आया, तो फिर एक चेष्टा उठेगी कि कैसे मैं अहंकार को दबा कर उसकी मालकिन बन जाऊं। संघर्ष शुरू होगा। और संघर्ष में पराजय है।
और यह बहुत आधारभूत बात है, जो ख्याल में रखना। कभी अभाव से मत लड़ना, नहीं तो जिंदगी यूं ही व्यर्थ हो जाएगी। और इसलिए फिर लीला विचित्र मालूम होगी। क्योंकि इधर से हटाया--हटा भी नहीं पाए कि वह दूसरे द्वार से प्रवेश कर जाएगा। फिर लगेगा कि बड़ी सूक्ष्म है यह प्रक्रिया! जितना छूटने की चेष्टा--उतना उलझाव सघन होता जाएगा।
जो नहीं है उसे जानना काफी है। इसलिए मेरा त्याग पर जोर नहीं है। त्याग का अर्थ है--छोड़ना। मेरा जोर है--बोध पर। जागना--भागना नहीं। जो भागा, वह मुश्किल में पड़ेगा। जिससे भागा--वही उसका पीछा करेगा! छाया तुम्हारे पीछे ही जाएगी। कुछ होती--तुम भागते, तो छूट जाती। मगर कुछ है नहीं; तुम जितनी तेजी से भागोगे, छाया भी उतनी ही तेजी से भागेगी। और तब घबड़ाहट व्याप्त हो जाएगी--कि हे प्रभु, अब क्या होगा! कितना ही तेज दौडूं,

यह छाया है कि पीछा नहीं छोड़ती! फिर जन्मों-जन्मों दौड़ो, तो भी यह पीछा नहीं छोड़ेगी।
रुको--और गौर से देखो। जाग कर देखोः इस अहमक अहमदाबादी का कोई अस्तित्व नहीं है। न तो यह चंदूलाल का पिता है--और न ढब्बूजी का चाचा।
यह है ही नहीं। बहुरूपी कैसे होगा? हम लड़ते हैं, तो बहुरूपी हो जाता है। एक रूप हराते हैं, तो भ्रांति दूसरे रूप में खड़ी हो जाती है। भ्रांति के स्रोत को नहीं पहचानते। तो पत्ते काटते रहो, जड़ तो बनी है।
और मजा ऐसा है कि जड़ को हम पानी देते हैं--और पत्तों को हम काटते हैं!
एक हाथ से पानी देते हैं, एक हाथ से काटते हैं। इधर पत्ते कटते जाते हैं, नए पत्ते निकलते आते हैं। एक पत्ता तोड़ते हो, तीन पत्ते निकल आते हैं! ऐसे आदमी तीन से तेरह हो जाता है। टूटता ही जाता है। खंड-खंड हो जाता है। फिर स्वभावतः निर्बलता लगेगी। निर्बलता लगेगी--और संताप होगा। एक हार, हताशा जीवन को घेर लेगी। विजय की संभावना मिट जाएगी।
तू कहती है मंजु, "बहुरूपी है। देखती हूं, अदृश्य हो जाता है।" देखने
से जो चीज अदृश्य हो जाए, वह है ही नहीं। न एकरूपी--न बहुरूपी। जो नजर के सामने न टिके, जो अदृश्य हो जाए--जैसे ही देखो वैसे ही अदृश्य हो जाए, और जैसे ही पीठ मोड़ो, फिर खड़ी हो जाए--तो समझना कि भ्रांति है, अज्ञान है, बोध का अभाव है। जलाओ दीया ध्यान का और क्रांति अपने से हो जाती है।
इसलिए मेरे संन्यासी को मैं ध्यान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दे रहा हूं। न तो कहता हूं छोड़ो। न कहता हूं त्याग करो। न कहता हूं तपश्चर्या। न कहता हूं विनम्र बनो। क्योंकि विनम्रता अहंकार का ही रूप है। इतना ही कहता हूं--होश। बेहोशी तोड़ो। यह नींद तोड़ो। ये सपने हैं--इनसे जागो। जाग कर सपनों का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। जागते ही सपने समाप्त हो जाते हैं। सेठ चंदूलाल मारवाड़ी का मुनीम पोपटलाल वर्षों से आकांक्षा करता था कि कुछ तो तनख्वाह में बढ़ती हो जाए! मगर चंदूलाल मारवाड़ी को देखता कि हिम्मत ही न उठती मांग करने की। चंदूलाल की कंजूसी ऐसी कि उससे मांग करना खतरनाक। नौकरी खतम हो सकती है। जो मिलता है, वह भी बंद हो सकता है। सो पोपटलाल चुप रहा, चुप रहा--मौके की तलाश में रहा। मौका चंदूलाल मिलने ही न दे। चंदूलाल कभी मुस्कुराए भी न। चंदूलाल कभी पोपटलाल की तरफ ठीक से देखे भी न। कहो--तो कैसे कहो ऐसे आदमी से। पत्थर की दीवाल बना है। फिर उसने एक तरकीब खोज निकाली।
एक सुबह आकर कहा कि "सेठ जी, रात एक सपना देखा कि आपने मेरी तनख्वाह पच्चीस रुपए महीना बढ़ा दी है!" चंदूलाल ने कहा, "अकड़ मत। अगले महीने काट लूंगा। सपने में भूल हो गई होगी।" सपने में बढ़ी तनख्वाह असली में काटने की तैयारी है!
सपना तो जागे कि नष्ट हुआ।
चंदूलाल की पत्नी गुलाबो अपनी एक सहेली से कह रही थी कि "मुझे तो इस चंदूलाल पर शक होता है--बहुत होता है। यह बेईमान जरूर किसी स्त्री के चक्कर में फंसा है। अब कल की ही बातः मैंने सपना देखा कि एक स्त्री की तरफ बड़ी गौर से देख रहा था और पास ही सरकता जा रहा था!"
उस सहेली ने कहा, "तू भी पागल हुई! अरे, यह तो सपना था!"
गुलाबो ने कहा, "जब मेरे सपने में ऐसी हरकतें कर रहा है, तो अपने सपने में क्या नहीं करता होगा! जब मेरे सपने तक में इतनी हिम्मत कर रहा है, तो जरा सोच तो कि अपने सपने में क्या नहीं करता होगा! मैं मौजूद--और मेरे सामने सरकता था उसकी तरफ! मुझे तो शक होता है। मुझे तो इस पर भरोसा नहीं आता। यह जरूर किसी के पीछे पड़ा है। इसकी चाल-ढाल! जब से यह सपना देखा है, तब से हर बात में मुझे शक होता है। चोर की तरह घर में घुसता है। चारों तरफ देखता है!"
शादीशुदा आदमी घुसता ही चोर की तरह है। इसमें कोई करेगा क्या!
एक बच्चा अपने साथी को कह रहा था, "मेरे पिता सिंह की तरह दहाड़ते हैं। हाथी की तरह मस्त चाल से चलते हैं। हिरणों की भांति दौड़ सकते हैं!"
उस दूसरे लड़के ने कहा, "अरे, छोड़ भी। और जब पत्नी के साथ चलते हैं--तेरी मम्मी के साथ--तो बिल्कुल भीगी बिल्ली की भांति! यह सब हाथी की चाल, और शेर

की तरह दहाड़ना, और हिरण की तरह दौड़ना--असलियत नहीं है। असलियत तो वह है जो पत्नी के सामने... !"
एक बेटे ने अपने बाप से आकर पूछा कि "हमारी भाषा को मातृभाषा क्यों कहा जाता है?"
बाप ने चारों तरफ देखा। बेटे ने कहा, "क्या देख रहे हैं?"
कहा कि "तेरी मम्मी को देख रहा हूं!" फिर कान में फुसफुसा कर कहा! ... हालांकि मम्मी कहीं दूर-दूर तक दिखाई नहीं पड़ रही थी। कान में फुसफुसा कर कहा कि "बेटा, सुन। भाषा को मातृभाषा इसलिए कहा जाता है कि पिता को तो बोलने का अवसर ही कहां मिलता है! माता के रहते पिता बोल सकता है? इसलिए मातृभाषा! पितृभाषा तो कह ही नहीं सकते!"
तो चंदूलाल बेचारा अगर डरा-डरा घर में घुसता हो, चारों तरफ देख-देख कर
घर में घुसता हो--इससे सिर्फ शादीशुदा है, इतना ही पता चलता है। मगर पत्नी ने जब से सपना देखा, तब से उसे शक हो रहा है।
हम सपनों पर भरोसा कर लेते हैं! हम सपनों में जीने लगते हैं। और यूं मत समझना कि गुलाबो की ही यह गलती है। मंजु! यह सबकी गलती है। जाग कर भी हम सपनों में जी रहे हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि "मैं लोबसांग राम्पा की किताबें पढ़ रहा हूं। बड़ी प्रभावित करती है। लेकिन आपको सुनता हूं, तो कभी-कभी शक होता है कि पता नहीं ये बातें सच्ची हैं या नहीं!"
लोबसांग राम्पा की जो किताबें हैं, वे उपन्यास हैं। इससे ज्यादा कुछ
भी नहीं। सिर्फ बुद्धू उनसे प्रभावित हो सकते हैं। उपन्यास का मजा लेना हो, तो बात और। और उपन्यास की दृष्टि से भी तृतीय कोटि के उपन्यास हैं। उपन्यास की दृष्टि से बिल्कुल आखिरी श्रेणी के हैं। मगर अध्यात्म की तरह समझोगे, तो समझोगे कि बड़ी राज की बातें लोबसांग राम्पा कह रहा है!
सब कपोल-कल्पनाएं हैं। सब सपने हैं। मगर कई लोगों को प्रभावित करता है। क्योंकि सपनों से भरे लोग सपनों से ही प्रभावित होते हैं। सपने की ही भाषा जानते हैं। और तो कोई दूसरी भाषा आती नहीं।
उपन्यास का मजा लेना हो, तो टाल्सटाय को पढ़ो, तो दोस्तोवस्की को पढ़ो, चेखोव को पढ़ो, गोर्की को पढ़ो। उपन्यास का मजा लेना हो, तो महान कलाकार हुए हैं--क्या सड़े-सड़ाए लोबसांग राम्पा को पढ़ रहे हो! जिसमें कुछ भी नहीं--कचरा है। मगर अगर अध्यात्म समझो, तो फिर तुम्हारी मर्जी। फिर प्रभावित हो जाओगे।
अध्यात्म के नाम से जितना कूड़ा-करकट दुनिया में चलता है, किसी और चीज
के नाम से नहीं चलता। लेकिन चलता क्यों है? क्योंकि लोग उसी भाषा को समझते हैं। लोग मूढ़ हैं और जो उनकी मूढ़ता को प्रभावित करता है, उन्हें जान लेना चाहिए कि उस बात में भी कुछ छिपी हुई मूढ़ता होगी, तभी तो तालमेल बैठ रहा है।
बुद्धपुरुषों की भाषा तो चौंकाती है, झकझोरती है। बुद्धपुरुष तो यूं आते हैं, जैसे कि तलवार आए! यूं कि जैसे कोई गर्दन काट जाए। बुद्धपुरुष तो अग्नि की तरह हैं--आग्नेय होते हैं। भस्मीभूत कर देंगे। निश्चित ही उसको, जो नहीं है। जो है--वह तो निखर कर उभर आएगा। बुद्धपुरुष तो यूं आते हैं, जैसे हवा का झोंका आए। राख को उड़ा ले जाते हैं। मगर तुम राख को पकड़ते हो। तुम समझते हो--यह तुम्हारी संपदा है!
दिल को संवार गई
जीवन निखार गई
जाने कहूं वो क्या है
खुशियां बौछार गई!

मैं खुद रहा न अपना
टूट गया सब सपना
कोई हवा इस मन का
दरपन बुहार गई!

जीवन भया उजयारा
खो ही गया अंधियारा
प्रेम अग्नि मंदिर में
दियरा-सा बार गई!

हाथों में उसके छोड़ा
तैरा, न भागा-दौड़ा
नदिया ही देखो मेरी
नैया को तार गई!
हाथों में उसके छोड़ा! संन्यास का अर्थ है--समर्पण। मंजु! छोड़! अब लड़ने
की जरूरत नहीं। यह नदी जा ही रही है सागर की तरफ। यह जो गैरिक सरिता है, यह सागर की तरफ जा ही रही है। अब तैरने की भी जरूरत नहीं। भागने-दौड़ने की भी जरूरत नहीं।
हाथों में उसके छोड़ा
तैरा, न भागा-दौड़ा
नदिया ही देखो मेरी
नैया को तार गई!

जीवन भया उजयारा
खो ही गया अंधियारा
प्रेम अग्नि मंदिर में
दियरा-सा बार गई!

मैं खुद रहा न अपना
टूट गया सब सपना
कोई हवा इस मन का
दरपन बुहार गई!

दिल को संवार गई
जीवन निखार गई
जाने कहूं वो क्या है
खुशियां बौछार गई!
सिर्फ जाग कर देख लेना। कुछ करना नहीं है। अहमक अहमदाबादी विदा हो जाता है। और तुम जागे रहो--फिर लौटकर नहीं आ सकता। सोए, तो फिर लौट आएगा। सोए--तो फिर सपने।
संन्यास की परम अवस्था हैः "जागे, तो जागे। सोए भी जागे।"
कृष्ण ने योगी की परिभाषा जो की है, वही संन्यासी की मेरी परिभाषा है। कृष्ण ने कहा है--वह जो नींद में भी जागता है। "या निशा सर्व भूतायाम तस्याम जाग्रति संयमी।" जो सबके लिए रात है--"या निशा सर्व भूतायाम"-- संयमी के लिए, योगी के लिए वह भी नींद नहीं; वह तब भी जागा है। तस्याम जाग्रति संयमी। शरीर सो जाता है, मन सो जाता है--और भीतर चैतन्य जागा रहता है; साक्षी जागा रहता है। दिन में तो जागा ही रहता; रात में भी जागा रहता। जागे में भी जागा--सोए में भी जागा।
अभी हालत उलटी है! अभी सोए में भी सोया--और जागे में भी सोया। बस, इसको
ही जरा सीधा कर लेना। अभी तुम शीर्षासन कर रहे हो। मैं कहता हूंः पैर के बल खड़े हो जाओ। यह बंद करो शीर्षासन।
लड़ना मत, नहीं तो लगेगा कि मैं असहाय हूं, असमर्थ हूं। त्यागना मत-- नहीं तो लगेगा, "आपके सामने होते हुए भी आपसे मिलने नहीं देता। आपके प्रेम-सागर में डूबने नहीं देता।"
यह तो यूं हुई बात मंजु! जैसे कोई कहेः अंधेरा है; दीये को जलने नहीं देता। ऐसा हो सकता है?
अंधेरा कितना ही प्राचीन हो, कितना ही पुराना हो, सदियों-सदियों, सहस्रों वर्षों से हो--तो भी क्या दीये को जलने से रोक सकेगा? दीया अभी

जलता--ताजा, नया, सद्यःस्नात--अभी-अभी नहाई-नहाई ज्योति आती। अभी-अभी जन्मा। जैसे छोटा सा नवजात शिशु। मगर उसको भी पुराने से पुराना अंधकार रोक नहीं सकता।
नहीं। ऐसा मत सोच कि अहंकार तुझे प्रेम में नहीं डूबने देता। प्रेम में डूब--तो अहंकार विदा हो जाता है। दीया जला, तो अंधकार विदा हो जाता है। लेकिन हम तर्क खोज लेते हैं। और वही मन तर्क खोज रहा है, जो मन अहंकार को निर्मित करता है। इसलिए हमारा तर्क हमारे अहंकार को बल देता जाता है।
हम अपने को छिपाए चले जाते हैं! इससे एक पाखंड पैदा होता है। तो ज्यादा से ज्यादा आदमी विनम्र हो सकता है। लेकिन विनम्र आदमी सिर्फ पाखंडी होता है। भीतर तो अहंकारी है। यही अकड़ कि मुझसे विनम्र कोई भी नहीं। और मनुष्य का मन जरूर ही बहुत चतुर है। वह हर चीज के लिए तर्क खोज लेता है, तर्क का सहारा खोज लेता है!
यूनुस ने एक किताब लिखी है--"पर्सन्स, पैशंस एंड पालिटिक्स।" मोहम्मद यूनुस ने इस किताब में कुछ बड़ी महत्वपूर्ण बातें उदघाटित की हैं। लिखा है कि उन्नीस सौ इक्कीस में मोरारजी देसाई को ब्रिटिश सरकार ने सांप्रदायिकता के कारण, हिंदू मतांधता के कारण नौकरी से अलग किया। हालांकि मोरारजी यह प्रचार करते रहे हैं कि मैंने ब्रिटिश नौकरी को लात मार दी थी!
ऐसा मन चालबाज है! निकाले गए नौकरी से, लेकिन कहते हैं कि मैंने लात मार दी थी। और निकाले गए जिस कारण से, वह कारण समझ में आता है, क्योंकि अभी भी हिंदू-मतांधता छूटी नहीं है। दिखाते हैं अपने को गांधी का अनुयायी, लेकिन गांधी से ज्यादा अनुयायी हैं गोडसे के।
मोरारजी देसाई और वल्लभ भाई पटेल दोनों को यह पता था कि महात्मा गांधी की हत्या की योजना की जा रही है। मोरारजी देसाई तब महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री थे, और उनको खबर थी। लेकिन उस खबर पर कोई भी व्यवस्था नहीं की गई।
सरदार वल्लभभाई पटेल को भी खबर थी और वे भारत के गृहमंत्री थे। उनके हाथ में सारी व्यवस्था थी। और उन्होंने जा कर महात्मा गांधी को पूछा! अब होशियारियां देखना। उन्होंने महात्मा गांधी को पूछा कि "क्या हम आपकी सुरक्षा की व्यवस्था करें?" निश्चित वे जानते थे कि महात्मा गांधी क्या कहेंगे।
महात्मा गांधी ने कहा कि जब परमात्मा मुझे उठाना चाहेगा, तो कोई व्यवस्था मुझे रोक न सकेगी। और जब तक नहीं उठाना चाहता, तब तक कोई मुझे उठा नहीं सकता है। इसलिए व्यवस्था की कोई जरूरत नहीं है।
तुम्हें लगेगा कि यह बात तो बड़ी कीमत की महात्मा गांधी ने कही। मुझे नहीं लगता कि इसमें कुछ कीमत की बात है। जरा भी कीमत की बात नहीं है। क्योंकि अगर गोडसे के द्वारा परमात्मा तुम्हें मारना चाहता है, तो सरदार वल्लभ भाई पटेल के द्वारा सुरक्षा करवाना चाहता है! तुम बीच में आने वाले कौन हो?
अगर सच्चा धार्मिक व्यक्ति हो, तो वह कहेगा कि "तुम्हारी जो मर्जी। मारने वाले को मारने से मैं नहीं रोक सकता। बचाने वाले को मैं रोकने वाला कौन हूं!"
लेकिन बेईमानी देखते हैं! इसमें कुछ धार्मिकता नहीं है। कोई ध्यान का बोध नहीं है। हालांकि तुम्हें यह बात बहुत प्रभावित करेगी। बहुतों को प्रभावित करती है कि अहा! यह है धार्मिक व्यक्ति! कहता है, ईश्वर उठाना चाहता है, तो कोई रोक नहीं सकता। और ईश्वर रोकना चाहता है, तो तुम क्यों रोक रहे हो? आखिर किसी के द्वारा ही उठाएगा ईश्वर भी। नाथूराम गोडसे के द्वारा उठवाया। तो किसी के द्वारा ही बचाएगा!
मुझसे लोग पूछते हैं कि "आप सुरक्षा का इंतजाम बंद क्यों नहीं करवा देते?" मैं कौन हूं बंद करवाने वाला! जब मैं छुरे फेंकने वाले को नहीं रोक सकता, तो संत महाराज को कैसे रोकूं? जो जिसकी मर्जी हो--करे। छुरा फेंकने वाला छुरा फेंके, रोकने वाला रोके। मैं खेल देख रहा हूं। इससे ज्यादा मेरा प्रयोजन नहीं है।

संत को तो रोकूं--और छुरा फेंकने वाले को तो रोक नहीं सकता--तो यह तो छुरा फेंकने वाले को मेरा साथ हुआ। यह तो किसी न किसी रूप में आत्महत्या की वृत्ति हुई! मगर आत्महत्या की वृत्ति भी आदमी बहुत अच्छे आवरण में रख सकता है।
महात्मा गांधी को लगने लगा था कि वे "खोटे सिक्के" हो गए हैं। क्योंकि जैसे ही सत्ता उनके शिष्यों के हाथ में गई, उन्होंने महात्मा गांधी की सुनना बंद कर दिया था। उन्होंने कहाः "जब तक देश को आजादी नहीं मिली थी, वे मेरी सुनते थे। अब मेरी कोई नहीं सुनता। मैं खोटा सिक्का हो गया हूं!"
और मरने के कुछ दिन पहले उन्होंने यह कहा था कि "पहले मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीना चाहता था, अब नहीं। अब मेरी कोई जरूरत ही नहीं है। मेरी कोई सुनता नहीं। मेरी कोई मानता नहीं। मैं बिल्कुल व्यर्थ हूं।"
ये आत्मघात की सूचनाएं हैं। उन्हें भी पता नहीं कि वे क्या कह रहे हैं। मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीना चाहता हूं--यह भी वासना थी। अगर परमात्मा पहले उठाना चाहता है--फिर क्या करोगे? जिद्द करोगे कि मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीऊंगा ही जीऊंगा?
"मैं तो एक सौ पच्चीस वर्ष जीना चाहता हूं!" यह भी वासना थी। और अब यह वासना है कि "जल्दी उठा ले, क्योंकि अब मैं किसी काम का नहीं रहा। अब मेरी कोई मानता नहीं।"
मनवाने की इतनी आकांक्षा कि जीवन का भी कोई मूल्य नहीं रहा। मानें लोग, मैं जो कहूं, वह मानें--तो ठीक। तो एक सौ पच्चीस वर्ष जीना है। और मानते ही नहीं कोई मेरी, तो अब जीने में भी क्या सार है! मतलब जीने का इतना ही अर्थ था कि अनुयायी आज्ञाकारी रहें। मजा अनुयायी के आज्ञाकारी होने में था। ऐसा जाल चलता है!
अभी कल मैंने मोरारजी देसाई का एक वक्तव्य देखा, जिसमें उन्होंने भी ईश्वर पर थोप दिया सब--कि "मैं तो ईश्वर की मर्जी से जी रहा हूं।" यहां तक उन्होंने कहा कि "मैंने डिप्टी कलेक्टर होने के लिए जो दरख्वास्त दी थी, वह मैंने नहीं लिखी थी। मेरे प्रोफेसर ने लिखी थी। मैंने सिर्फ दस्तखत किए थे।"
अब मैं जानता हूं कि क्यों नहीं लिखी होगी! लिखते बनती नहीं होगी! नहीं तो कोई प्रोफेसर से दरख्वास्त लिखवाने जाता है? गए ही काहे को थे प्रोफेसर से दरख्वास्त लिखवाने? और जब दरख्वास्त नहीं देनी थी, तो दस्तखत किस लिए किए? फाड़ कर फेंक देते। कोई मजबूरी थी कि प्रोफेसर ने दरख्वास्त लिख दी और तुम्हें दस्तखत करने ही पड़ेंगे? अरे, जब तुम्हें नौकरी नहीं करनी थी, तो दरख्वास्त फाड़ देते। जैसे दस्तखत किए, ऐसे फाड़ कर जयराम जी करके घर आ जाते!
पहले तो गए क्यों? फिर उसने दरख्वास्त कैसे लिख दी तुम्हारे बिना कहे? किसने उसे बता दिया कि कौन सी नौकरी के लिए दरख्वास्त लिखे? और दस्तखत तुमने किए! तो दस्तखत भी उसी को करने देने थे कि जब परमात्मा को दिलवानी ही होगी नौकरी, तो दस्तखत कोई भी करे, वह तो दिलवा कर रहेगा। अरे, परमात्मा के खिलाफ कोई काम हो सकता है दुनिया में! पत्ता नहीं हिलता, तो डिप्टी कलेक्टर जैसी बड़ी नौकरी कोई परमात्मा के बिना आज्ञा के हो सकती है? तो कह देते कि करेगा तो परमात्मा दस्तखत करेगा या तू कर। मैं कौन दस्तखत करने वाला!
लेकिन सचाई यह होगी कि दरख्वास्त लिखते नहीं बनती होगी। लेकिन उसको छिपा लेने के लिए हम क्या-क्या आयोजन कर लेते हैं!
मोहम्मद यूनुस ने अपनी किताब में यह भी उल्लेख किया है कि मोरारजी देसाई इस बात की घोषणा करते फिरते हैं कि मैं पचास वर्ष से ब्रह्मचारी हूं। यह झूठ है--सरासर झूठ है। उनका एक मुसलमान स्त्री से प्रेम था। उससे एक अवैद्य संतान भी हुई। वह संतान भी अभी जिंदा है। लेकिन उन दोनों को, स्त्री को और बच्चे को उन्होंने जबरदस्ती पाकिस्तान भिजवा दिया--कि न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी! वे पाकिस्तान में हैं। वह बेगम अभी जिंदा है, जिससे उनका प्रेम था।

हां, पत्नी से ब्रह्मचर्य रहा होगा। पत्नी से ब्रह्मचारी कौन नहीं होना चाहता। ऐसा तुम पति देखोगे, जो पत्नी से ब्रह्मचर्य का व्रत न लेना चाहे! यह सच होगा। लेकिन यह जो बेगम थी, इससे प्रेम का चला सिलसिला। इससे बच्चा भी पैदा हुआ। बच्चा भी जिंदा है। बेगम भी अभी जिंदा है। उसको पाकिस्तान भिजवा दिया। व्यवस्था की पाकिस्तान भिजवाने की। क्योंकि जब मोरारजी देसाई फिर से भारत के प्रधानमंत्री बन बैठे, सत्ता में आ गए, तो वह बेगम भारत-यात्रा के लिए आई।
पाकिस्तानियों को सामान्यतया खुला वीसा दिया ही नहीं जाता। उनको तो जिस जगह जाना हो, उस एक जगह का वीसा दिया जाता है। अगर बंबई--तो बंबई। वह बंबई छोड़ कर हर कहीं नहीं जा सकते। लेकिन इस बेगम को खुला वीसा दिया गया। वह भारत भर में भ्रमण कर सकी। सरकारी विश्राम स्थलों में ठहरी। इतना ही नहीं, दिल्ली में वेस्टर्न कोर्ट में उसके ठहरे की व्यवस्था की गई। वह दिल्ली गई, भोपाल गई, हैदराबाद गई, बंबई गई। कहीं कोई रुकावट उस पर न थी। हो भी कैसे सकती थी।
लेकिन ब्रह्मचर्य का थोथा पाखंड फैलाए फिरते हैं। मन बड़ा पाखंडी है।
यह क्या-क्या तरकीबें निकाल लेता है!
महात्मा गांधी की हत्या में मोरारजी देसाई का भी हाथ है। क्योंकि जब पता था, तो रुकावट डाली जा सकती थी। और सरदार वल्लभ भाई पटेल का भी हाथ है। महात्मा गांधी से पूछने का सवाल ही नहीं उठता। यह तो गृहमंत्री को स्वयं आयोजन करना चाहिए। क्या तुम एक-एक आदमी से पूछते फिरोगे कि तुम्हें कोई मारने आने वाला है, तो सरकार इंतजाम करे कि छुट्टी दे! अगर कोई मारने वाला आ रहा है, तो चाहे कोई कितना ही सामान्य नागरिक हो, दुनिया उसे जानती हो कि न जानती हो--यह सरकार का कर्तव्य है कि उसके मार्ग में बाधा डाले। पूछने जाना उस आदमी से, वह भी गांधी जैसे आदमी से पूछने जाना कि "हम सुरक्षा का इंतजाम करें या नहीं!" यह तो हद्द हो गई!
किसी के घर में चोरी पड़ने वाली है, यह पुलिस को पता चल जाए, तो पुलिस पूछने जाती है कि तुम्हारे घर में चोरी पड़ने वाली है; हम इंतजाम करें कि नहीं? हिंदू-मुस्लिम दंगा होने वाला है, तो पुलिस पूछने जाती है कि हम इंतजाम करें या नहीं?
महात्मा गांधी से पूछने जाने का मतलब क्या है? कहीं भीतरी आकांक्षा होगी कि छुटकारा हो जाए--इस बूढ़े से छुटकारा हो जाए!
महात्मा गांधी की हत्या के सात दिन पहले ही सरदार वल्लभ भाई पटेल ने लखनऊ में आर.एस.एस. की एक विशाल रैली को संबोधन किया था। और वहां उनकी बड़ी प्रशंसा की थी--कि इस तरह के राष्ट्र-सेवक चाहिए!
यह कुछ आकस्मिक नहीं है कि भारत में जो जनता पार्टी बनी, जिसने मोरारजी देसाई को सत्ता में पहुंचा दिया, वह मूलतः राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के बल पर ही खड़ी थी। वह इन मतांध हिंदुओं का ही संगठन था, जिसकी ताकत पर वे सत्ता में पहुंच गए थे। और उनको सत्ता में बिठालने का राज यह था कि भीतर से बुनियादी रूप से हिंदूवाद के समर्थक हैं।
तो गांधी को हटाना चाहा होगा। कह नहीं सकते सीधा-सीधा। नाथूराम गोडसे
ने छुटकारा दिला दिया, तो राहत की सांस ली थी भारत के इन तथाकथित नेताओं ने--कि झंझट मिटी! अब हम निश्चिंतता से जो करना है करें! अब कोई बाधा न रही, कोई कांटा न रहा!
आदमी बहुत चालबाज है। फिर रोएंगे--और भाषण देंगे--और हर तरह का शोरगुल मचाएंगे कि बड़ा इनके ऊपर, छाती पर दुख आ पड़ा है। टूटे जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं! और हर साल श्रद्धांजलि चढ़ाए जा रहे हैं! और राजघाट पर बैठ कर चरखा चलाए जा रहे हैं!
मन के इन सारे धोखों से जागना, मन के पाखंड से जागना ध्यान है। लेकिन
डर लगता है जागने में, क्योंकि तब तुम्हें अपनी सारी बेईमानियां देखना पड़ें--अपने सारे जाल, जो तुमने ही बिछाए हैं--अपनी सारी गंदगी!
और मंजु तू कहती है कि "बूढ़ा, कुरूप, गंदा--पीछा नहीं छोड़ता!" बूढ़ा है निश्चित, क्योंकि बहुत प्राचीन है। सदा-सदा से, जन्मों-जन्मों से पीछे लगा है। कुरूप भी है, गंदा भी है। लेकिन पीछा नहीं छोड़ता, उसका कारण यह है कि

उसकी गंदगी देखने की, उसकी कुरूपता देखने की क्षमता तू नहीं जुटा पा रही है। अगर उसे पूरी भर आंख देख ले, तो वह सदा के लिए विदा हो जाए।
और उस पर आंख गड़ा कर ही देखना होगा। आंख गड़ा कर देखने का नाम ही ध्यान है।
लेबल मत लगाओ कि "गंदा है, कुरूप है, बूढ़ा है।" पहचानो--देखो। और निर्णय लेने की जल्दी मत करो। सिर्फ देखो। काफी है देखना। दर्शन काफी है।
बस, रोशनी का जलाना काफी है।
रोशनी के जलते ही एक क्रांति होती है, वह क्रांति समझने जैसी है। जो है, वह तो प्रकट हो जाता है--रोशनी के जलते ही। अंधेरे में प्रकट नहीं होता था। जो है, वह अंधेरे में दबा रहता है। और जो नहीं है, वह प्रकट होता है। जब तुम एक अंधेरे कमरे में प्रवेश करते हो, तो अंधेरा ही अंधेरा दिखाई पड़ता है। दीवालों पर लटकी हुई सुंदर तस्वीरें दिखाई नहीं पड़तीं। छप्पर से लटका हुआ फानूस दिखाई नहीं पड़ता। कमरे में जमा हुआ तरतीब से, सुंदर फर्नीचर, दिखाई नहीं पड़ता। जो है, वह दिखाई नहीं पड़ता। और जो नहीं है, वह दिखाई पड़ता है। अंधकार!
फिर जलाओ दीया, तो फर्नीचर विदा नहीं हो जाएगा। फर्नीचर छलांग लगा कर भाग नहीं निकलेगा। और न ही दीवारों से तस्वीरें निकल कर नदारद हो जाएंगी। सिर्फ अंधेरा मिटेगा। तस्वीरें प्रकट होंगी।
जो है, वह ध्यान में प्रकट होता है; और जो नहीं है, वह विदा हो जाता है।
अहंकार नहीं है; मन नहीं है। आत्मा है। परमात्मा है। ध्यान इस अभूतपूर्व घटना को तुम्हारे भीतर घटा देता है।
मंजु! ध्यान में डूब। और ध्यान की ही सुगंध प्रेम है। ध्यान का फूल खिले, तो प्रेम की सुगंध अपने आप बिखरती है।
मत ऐसा सोच कि यह अहंकार तेरे प्रेम में बाधा बन रहा है। अहंकार क्या बेचारा बाधा बनेगा। तू नहीं है असहाय, असमर्थ; अहंकार है असहाय और असमर्थ। लेकिन हमारा उससे तादात्म्य इतना हो गया है कि हम सोचते हैं--हम असहाय, हम असमर्थ!
तू तो स्वयं परमात्मा है। जिस दिन ध्यान परिपूर्ण होगा, उस दिन यह उदघोष निकलेगा--"अहं ब्रह्मास्मि। अनलहक। तत्वमसि!"

दूसरा प्रश्नः ओशो,
प्रीतम द्वार खड़ी हूं मौन
यहां भला कब सोचा आना
मेरा आपका दर्शन पाना!
खींच मुझे इतनी दूरी से लाया बरबस कौन?
मौन खड़ी खटखटाऊं द्वार--
अरे! हाथ खाली ही आई!
देने को उपहार न लाई!
अरी! करेगी किससे प्रियतम की पूजा-सत्कार?
क्षमा करना--
यहीं कहीं बैठूंगी छिप कर
आएंगे देखूंगी पल-भर
बस, लौटूंगी उस पल का हृदय-पट पर चित्र उतार!

वीणा भारती! मौन में ही द्वार खुलता है। मौन से ही द्वार खुलता है। मौन आया--कि द्वार खुला। खटखटाना भी नहीं पड़ता।
तू कहती है--"प्रीतम द्वार खड़ी हूं मौन!"
यही तो कुंजी है--प्यारे के द्वार पर चुपचाप खड़े हो जाना। पुकार भी नहीं देने की जरूरत है। अजान भी करने की जरूरत नहीं।
कबीर ने एक मस्जिद से गुजरते समय देखा कि मुल्ला चढ़ कर मीनार पर, अजान
दे रहा है। तो कबीर ने चिल्ला कर कहा, "उतर नीचे पागल! क्या बहरा हुआ खुदाय? क्या तेरा खुदा बहरा हो गया--जो इतनी ऊंची मीनार पर चढ़ कर, इतना शोरगुल मचा रहा है? मौन हो। चुप हो।"

चुप्पी की भाषा ही बस परमात्मा जानता है। मौन ही एकमात्र सेतु है।
बोले कि दूर हुए। पुकारा कि भिन्न हुए। चुप हुए कि अभिन्न। चुप हुए कि एक।
तू कहती है, "प्रीतम द्वार खड़ी हूं मौन!" कुंजी तेरे हाथ लग गई।
"यहां भला कब सोचा आना!"... सोच-विचार कर यहां कोई आता? और सोच-विचार कर
जो आता है, वह खाली हाथ ही चला जाता है। सोच-विचार कर भी कभी कोई आता है? कभी कोई आया है? आए भी तो आ नहीं पाता।
दूर से आए थे साकी, सुन के मयखाने को हम।
बस तरसते ही चले, अफसोस पैमाने को हम।।
मय भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नहीं।
दिल में आता है, लगा दें आग मयखाने को हम।।
हमको फंसना था कफस में, क्या गिला सैयाद का।
बस तरसते ही रहे हैं, आब और दाने को हम।।
बाग में लगता नहीं, सहरा में घबराता है दिल।
अब कहां ले जाके बैठें, ऐसे दीवाने को हम।।
क्या हुई तकसीर हमसे, तू बता दे ऐ नजीर।
ताकि शादी मर्ग समझें, ऐसे मर जाने को हम।।
दूर से आए थे साकी, सुन के मयखाने को हम।
बस तरसते ही चले, अफसोस पैमाने को हम।।

जो सोच-विचार कर आया है, वह तो जैसा आया वैसा ही लौट जाएगा। खाली आया, खाली लौट जाएगा। उसका पैमाना न भरेगा। साकी से उसका मिलन न हो सकेगा। सब
है, लेकिन वह चूक जाएगा।
मय भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नहीं।
दिल में आता है, लगा दें आग मयखाने को हम।।
सब होगा--साकी से मिलन न हो पाएगा।
साकी सूफियों का प्रतीक है परमात्मा के लिए। और तब जरूर क्रोध आएगा
कि हम इतने दूर से आए; बहुत सुन कर आए, बहुत आशा से आए, बहुत आकांक्षा से आए और खाली हाथ लौटना पड़ रहा है। "क्यों न आग लगा दें मयखाने को हम!"
जो सोच कर आया, वह आता ही नहीं; आ ही नहीं पाता। सब होताः मय भी, मयखाना भी, साकी नहीं। सब उसे दिखाई पड़ता है।
यहां जो सोच-विचार कर आ गए हैं, उन्हें सब दिखाई पड़ेगा। कौन पुरुष किस स्त्री का हाथ पकड़ कर बैठा है, उन्हें दिखाई पड़ेगा। कौन किसको आलिंगन में आबद्ध किए है--उनको दिखाई पड़ेगा। मैं भर उन्हें दिखाई नहीं पडूंगा। और जो बिन सोचे आए हैं, उन्हें सिर्फ मैं दिखाई पडूंगा--और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेगा। आलिंगनबद्ध कोई जोड़ा भी खड़ा होगा, तो भी उन्हें मैं ही दिखाई पडूंगा; और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेगा। उन्हें वृक्षों की हरियाली में, और फूलों के रंगों में, और संन्यासियों में मैं ही दिखाई पडूंगा; और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेगा।
तू ठीक ढंग से आई है। तू कहती हैः
यहां भला कब सोचा आना
मेरा आपका दर्शन पाना!
जो बिना सोचे आया है, उसका तो दीदार निश्चित है। उसने तो दर्शन पा ही लिया। निर्विचार में ही तो दर्शन है।
"खींच मुझे इतनी दूरी से लाया बरबस कौन!" यही तो आने का ढंग है कि पता
भी नहीं चलता कि क्यों हम आए; किसलिए हम आए; कौन खींच लाया! कोई अदम्य आकर्षण, कोई भीतर की डोर, जो दिखाई नहीं पड़ती--अदृश्य--कोई किरण छू ली है-- और तू चल पड़ी। कोई धुन उठी और तू चल पड़ी। यहां तो मतवाले ही पहुंच पाते हैं, दीवाने ही पहुंच पाते हैं।

जिस तरफ देखा दीवानगी में तेरे दीवाने गए
लाख अपने को छुपाया फिर भी पहचाने गए
अल्ला अल्ला कितनी पेचीदा हैं राहें इश्क की
खुद को खो बैठे वो रहरो जो भी थे पाने गए

बज्म में नीची नजर ने राजे उल्फत कह दिया हम तो रुसबा हो रहे थे तुम भी पहचाने गए दर हकीकत अपना इल्फां है तुम्हारी मारफत खुद को जब पहचाना हमने तुम भी पहचाने गए

इससे बढ़ कर और क्या हो कम निगाही की दलील
उम्र भर पर तुम साथ रह कर भी न पहचाने गए
आशिकी उनकी है वाकफ हौसलेवालों का काम
अरे आप उस कूचे में नाहक ठोकरें खाने गए

जिस तरफ देखा दीवानगी में तेरे दीवाने गए
लाख अपने को छुपाया फिर भी पहचाने गए

तू कहती है, "यहीं कहीं बैठूंगी छिप कर!" कितना ही छिप कर बैठ... ।

जिस तरफ देखा दीवानगी में तेरे दीवाने गए
लाख अपने को छुपाया फिर भी पहचाने गए
अल्ला अल्ला कितनी पेचीदा हैं राहें इश्क की
खुद को खो बैठे वो रहरो जो भी थे पाने गए

पाने का ढंग एक ही है--खुद को खो बैठना। खुद को खो बैठे--तो फिर पाने में देर नहीं। उतना साहस! और वीणा तुझमें उतना साहस मैं देखता हूं।
तू कहती हैः
"यहीं कहीं बैठूंगी छिप कर
आएंगे देखूंगी पल-भर
बस लौटूंगी उस पल का हृदय-पट पर चित्र उतार!"

बज्म में नीची नजर ने राजे उल्फत कह दिया
हम तो रुसबा हो रहे थे तुम भी पहचाने गए
दर हकीकत अपना इल्फां है तुम्हारी मारफत
खुद को जब पहचाना हमने तुम भी पहचाने गए
जो यहां मौन हो कर बैठेगा, वह मुझे भी पहचान लेगा; खुद को भी पहचान लेगा। यह घटना एक साथ घटती है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह राज अलग-अलग नहीं खुलता; एक ही साथ खुल जाता है।
तू कहती हैः
अरे हाथ खाली ही आई!
देने को उपहार न लाई!
खाली हाथ, मौन, शून्य--बस, यही उपहार है। इससे बड़ा कोई उपहार नहीं। मेरे पास आओ--शून्य आओ, खाली आओ, मौन आओ--तो मिलन; तो दर्शन; तो मैं जो कह रहा हूं, उसे समझने में पल भर की देर न लगेगी। इधर मैंने कहा, उधर तुमने समझा। या यूं कहो, इधर मैं पूरा कह भी नहीं पाया, और उधर तुमने समझ भी लिया। इधर मैं कहने को ही था कि उधर तुमने समझ ही लिया।
इसलिए जो यहां चुप हो कर बैठे हैं, मौन हो कर बैठे हैं, उन्हें कुछ भेद नहीं पड़ता कि मैं क्या कह रहा हूं। वे वही समझते हैं, जो मैं कहना चाहता हूं। क्योंकि जो मैं कहना चाहता हूं, वह तो कह नहीं पाता। वह तो कोई भी नहीं कह पाया है। उसे तो कहने का कोई उपाय नहीं।

कल एक दंपति का पत्र अमरीका से मुझे मिला। पति प्रसिद्ध डाक्टर हैं। तीन वर्षों में जो भी संभव था अमरीका में मेरे संबंध में, वह सब उन्होंने किया। सारी किताबें पढ़ डालीं। सारे टेप सुन डाले। वीडियो देख डाले।
फिल्में देख डालीं। सारे अमरीका के आश्रमों में हो आए। सैकड़ों

संन्यासियों से मिले। ध्यान करना शुरू कर दिया। लेकिन व्यस्त डाक्टर हैं--आने का समय नहीं मिल पाया।
लेकिन अभी पंद्रह दिन पहले हृदय का दौरा आ गया। तो चौंके। और सोचा कि यूं तो जिंदगी किसी भी दिन खतम हो सकती है। तो तत्क्षण मुझे पत्र लिखा कि अब देर नहीं कर सकता। अब आ रहा हूं। अब मुझे इसकी भी फिक्र नहीं कि आप हिंदी में बोलेंगे, कि स्वाहिली में बोलेंगे, कि अंग्रेजी में बोलेंगे-- बोलेंगे कि नहीं बोलेंगे, इसकी भी फिकर नहीं। बस, आ रहा हूं। चुपचाप आपके पास बैठ रहना है। कुछ बोलें--तो ठीक। न बोलें--तो ठीक। किसी भाषा में बोलें; समझ में आए, तो ठीक। न समझ में आए, तो ठीक। बस, चुपचाप आपके पास बैठ रहना है। मौत ने द्वार पर दस्तक दे दी, अब और देर नहीं कर सकता। सब काम-धाम छोड़ कर आ रहा हूं; जैसा का तैसा छोड़ कर आ रहा हूं।
पत्नी ने भी लिखा है कि "मैं पति की वजह से अटकी थी। वे कहते थेः मैं चलता हूं, मैं चलता हूं, और थोड़ी देर रुक जा। अगले महीने चलता हूं। एक चार सप्ताह और प्रतीक्षा कर ले। ऐसे उन्होंने तीन साल गुजार दिए। मगर सौभाग्य ही समझो कि उनको हृदय का दौरा पड़ गया। अब वे एकदम आ रहे हैं। तो मैं भी आ पा रही हूं। बस, चुपचाप बैठना है आपके पास। यह अवसर न चूक जाए।"
मौन ही एकमात्र भाषा है, जिसमें सत्य प्रवाहित होता है। ये शब्द तो मैं इसलिए उपयोग कर रहा हूं कि तुम मौन के लिए धीरे-धीरे तैयार हो जाओ।
जो तैयार हो गए हैं, उन्हें मेरे इन शब्दों में शून्य का ही संगीत सुनाई पड़ता है। जो नहीं अभी तैयार हुए हैं, वे इन शब्दों में तर्क देखते हैं, शास्त्र देखते हैं, विचार देखते हैं--और न मालूम क्या-क्या देखते हैं! वे अपने को ही इन शब्दों पर थोपते चले जाते हैं।
खाली हाथ आई, तो अच्छी आई। भरे हाथ आता है जो, वह फिर मुझे नहीं पहचान पाएगा।
इससे बढ़ कर और क्या हो कमनिगाही की दलील
उम्र भर तुम साथ रह कर भी न पहचाने गए
फिर वह उम्र भर भी साथ रहे, तो भी कमनिगाह है, अंधा है; वह देख नहीं पाएगा। और मौन होने के लिए साहस चाहिए। खाली हाथ आने के लिए साहस चाहिए। आशिकी उनकी है वाकफ हौसलेवालों का काम
अरे आप उस कूचे में नाहक ठोकरें खाने गए
जो खाली हाथ आने को तैयार है, जो आंखों में आंसू लिए हुए आने को तैयार
है और जो स्वीकार करने को तैयार है कि मेरे पास लाने को कुछ भी नहीं; कोई संपदा नहीं--न बाहर की, न भीतर की--ऐसी स्वीकृति हौसले वाले का काम है। और जो इस हौसले के बिना आ गए हैं--"अरे, आप उस कूचे में नाहक ठोकरें खाने गए!" वे इस मेरी दुनिया में नाहक ही ठोकरें खाने आ गए। वे थोड़े कुटेंगे- पिटेंगे और अपने घर लौट जाएंगे। और खाली हाथ ही जाएंगे। लाख इरादे उन्होंने किए हों, इससे फर्क नहीं पड़ता।
दूर से आए थे साकी, सुन के मयखाने को हम
बस तरसते ही चले, अफसोस पैमाने को हम।।
मय भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नहीं।
दिल में आता है, लगा दें आग मयखाने को हम।।
गुस्सा आएगा उन्हें। क्रोध आएगा। मुझ पर बहुत लोग नाराज हैं। आग लगा देना चाहेंगे मेरे इस कम्यून को। बहुत लोगों की यह इच्छा है! कारण क्या है उनकी नाराजगी का?
वे गलत ढंग से आते हैं, तो पहचान नहीं पाते; तो गुस्सा आता है कि आना- जाना बेकार हुआ। जो ठीक ढंग से आते हैं, शून्य आते हैं, मौन आते हैं--जो आने के लिए आते हैं; जिन्हें यह भी पता नहीं किसलिए--क्यों--अहेतुक, बिना किसी कारण के आते हैं, अकारण आते हैं। दीवानगी चाहिए। और तू पागल है वीणा! तू दीवानी है।
जिस तरफ देखा दीवानगी में तेरे दीवाने गए
लाख अपने को छुपाया फिर भी पहचाने गए!

तीसरा प्रश्नः ओशो, मेरे नमस्कार स्वीकार करें। निवेदन है कि मैं आपके संन्यासियों में गुम हो जाना चाहती हूं। उसके लिए आप मुझे शक्ति दें। मैं संत की बहन हूं--पिंकी!

पिंकी! चल तू तो रंगी! संत की थोड़ी इच्छा तो पूरी हुई। पिंकी को तो पंख लगे। देखा संत महाराज! और अंगुली पकड़ ली मैंने, तो पहुंचा बहुत दूर नहीं। और पहुंचा पकड़ लिया तो फिर... !
अब यह पिंकी से शुरुआत हो गई। मैंने कल ही तुमसे कहा था कि मेरे अपने ढंग हैं। तुम घबड़ाओ न। पिंकी तो पकड़ में आ गई। अब तुम्हारे माता-पिता भी पकड़ में आएंगे। संत की बहन है, तो बचेगी भी कितनी देर!
तू कहती है, "आपके संन्यासियों में गुम हो जाना चाहती हूं। इसके लिए
आप मुझे शक्ति दें।" जरूर गुम हो जाएगी। गुम हो जाने के लिए शक्ति की कोई जरूरत नहीं। गुम हो जाने के लिए सिर्फ अहंकार को हटा देने की जरूरत है। और अहंकार कोई बड़ी चट्टान नहीं; सिर्फ एक भ्रांति है; सिर्फ एक भ्रम है। जैसे दो और दो को कोई पांच जोड़ रहा हो--और फिर कोई बता दे कि देखो, दो और दो पांच नहीं--दो और दो चार होते हैं! तो कुछ भी तो नहीं करना होता। दो और दो चार हो जाते हैं। बस, ऐसा ही। गणित की भूल हो रही है।
हमने अपने को समझा है, हम अलग हैं परमात्मा से--और हम अलग नहीं हैं। लाख समझो कि अलग हो, अलग नहीं हो। लहर समझे कि मैं अलग हूं सागर से; अलग नहीं है। और लहर कहे कि मैं सागर में गुम हो जाना चाहती हूं, तो सागर क्या कहे! सागर हंसेगा। सागर कहेगा, पागल! तू अलग है ही नहीं। बस, अलग होने की भ्रांति छोड़ दे। तू गुम ही है। तू सागर में ही है। जब तू सोच रही है कि अलग है, तब भी सागर में है।
कोई उपाय नहीं परमात्मा से दूर होने का। न कभी कोई दूर हुआ है, न कोई कभी दूर हो सकता है। परमात्मा वही है, जिससे हम दूर नहीं हो सकते; जो हमारा स्वभाव है। मगर भ्रांति पाल लेते हैं।
अगर लहर को भी बुद्धि हो, तो वह भी भ्रांति में पड़ जाएगी। लहर भी सोचने लगेगी कि मैं अलग-थलग। और वह भी तर्क खोज लेगी। क्योंकि और भी तो बहुत लहरें हैं। कोई बड़ी है, कोई छोटी है। हम सब एक कैसे हो सकते हैं? कोई सुंदर, कोई असुंदर; कोई स्त्री, कोई पुरुष। कोई देखो दहाड़ रही, आकाश में उठी हुई-- और कोई बिल्कुल छोटी सी लहर है। और कोई गिर रही लहर, और कोई उठ रही लहर-- दोनों एक कैसे हो सकती हैं! एक गिर रही, एक उठ रही; एक मर रही, एक जनम रही-- दोनों एक कैसे हो सकती हैं! अलग-अलग हैं। साफ है। तर्क के लिए बिल्कुल साफ है।
लेकिन सागर कोई तर्क मानता है? वहां एक लहर उठ रही, दूसरी गिर रही है।
ये जुड़ी हैं। असल में एक का गिरना दूसरे का उठना है। दूसरे के उठने में उस गिरने वाली लहर का हाथ है। वह गिर रही है, इसीलिए दूसरी उठ रही है। दोनों जुड़े हैं। और एक ही सागर में हैं। एक ही सागर की छाती पर नृत्य चल रहा है अनंत लहरों का।
मेरे पास बैठ कर इतना ही समझ में आ जाए, तो गुम हो जाना कोई कठिन मामला
ही नहीं है। हम गुम हैं। लेकिन पिंकी पहले पकड़ में आई।
कल मैंने कहा था न कि बूढ़े व्यक्ति थोड़ी देर लगाते हैं; थोड़ा सोचते हैं, विचारते हैं। स्वभावतः। बिल्कुल नैसर्गिक है। जीवन भर का अनुभव बीच में दीवाल बन कर खड़ा होता है।
और संत महाराज ने पिंकी के लिए प्रार्थना ही नहीं की थी। पिंकी की इन्होंने गिनती ही नहीं की थी। मां-बाप की ही बात कही थी। वे भूल ही गए पिंकी की गिनती करना। सोचा होगाः इसकी क्या गिनती करना! अभी सत्रह-अठारह साल की है! गिनती के बाहर ही रखा! संत ने सोचा होगा, बच्ची है। लेकिन बच्चों के पास ज्यादा दृष्टि होती है। ज्यादा साफ, निर्मल दृष्टि होती है।
बच्चे जल्दी मेरी बात समझ पाते हैं। उन्हें बिल्कुल ठीक-ठीक दिखाई पड़ जाता है। बूढ़ों की आंख पर बहुत जाले छा गए होते हैं। जिंदगी बहुत धूल जमा गई होती है उनके दर्पण पर। इसलिए थोड़ी देर लगती है।

मगर शुरुआत हो गई संत महाराज! पिंकी डूबेगी।
और शक्ति की फिकर मत कर। शक्ति का कोई सवाल नहीं--सिर्फ समझ का सवाल है। शक्ति तो सब में छिपी है; सबके भीतर है। न देने की जरूरत है, न मांगने की जरूरत है। परमात्मा सबको बराबर शक्ति दे कर भेजता है।
अंतर्यात्रा की शक्ति तो सबके भीतर समान है। सिर्फ अंतर्यात्रा शुरू करने की बात है।
तेरे मन में भाव उठा--बात शुरू हो गई। अड़चनें आएंगी। बाधाएं आएंगी। लेकिन अगर भाव सघन है, तो सारी अड़चनों से और भी सघन हो जाता है। हर अड़चन चुनौती बन जाती है।
मां-बाप तुझे रोकेंगे कि पागल, एक तो बेटा पागल हो गया। अब बेटी भी पागल होने लगी!
उन्होंने तो मुझे लिखा है कि "आप संत को आदेश करें कि कम से कम साल में चार बार मिलने हमसे घर पर आना चाहिए!" अब उनको मालूम नहीं कि मैं आदेश तो किसी को करता ही नहीं। संत को बिल्कुल स्वतंत्रता है। वे जब चाहें, तब जा सकते हैं। सच तो यह है कि मुझे बाहर जाना हो, तो संत से पूछना पड़ता है कि भई, निकलने दोगे दरवाजे से कि नहीं? छह साल में सिर्फ तीन बार निकलने दिया है। अगर वह कह दें कि "नहीं, दरवाजा ही नहीं खोलते, तो बात खतम!" मैं हूं बिल्कुल अलाल; में उतर कर दरवाजा भी नहीं खोल सकता। वह तो बड़ा दरवाजा है, मैं कार का दरवाजा भी नहीं खोलता! न लगाता न खोलता--दरवाजा वगैरह की बात ही नहीं। संत खोल दें तो ठीक, नहीं तो बात खतम! छह साल में सिर्फ तीन बार खोला उन्होंने!
और आदेश तो मैं किसी को देता नहीं। मैं नहीं कह सकता कि जाओ। और जाना चाहें, तो मैं नहीं कह सकता कि मत जाओ। यहां तो प्रत्येक संन्यासी स्वतंत्र है। जब तक उसकी मौज--रहे; जब मौज हो, जाए; जब मौज हो तो वापस आ जाए। न कोई रोकने वाला है, न कोई भेजने वाला है।
अब पिंकी, तेरे माता-पिता तो आदेश की भाषा में सोचते हैं--पंजाबी हैं!
तो पंजाब में तो आदेश की भाषा चलती है। अब तू रंग में डूबेगी मेरे, तो झंझटें आएंगी, क्योंकि तेरे माता-पिता तो आदेश की भाषा समझते हैं। उन्हें तेरा विवाह करना है; और मेरे रंग में डूबी, कि फिर यह विवाह वगैरह की झंझट खतम! उनको बड़ी चिंता होगी उससे। एक तो ये संत सपूत निकल गए... !
अभी कल ही तो मैंने तुमसे कहा था न कि कबीर ने अपने बेटे को देख कर कहा
कि "बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल!" ये कमाल पूत पैदा हो गए। वंश ही उजाड़ दिया। शादी ही नहीं की। फिर आगे बात ही न चली। अब ये संत तो सपूत हैं। इन ने तो वंश उजाड़ा! अब पिंकी, तू भी रंग गई इस रंग में। तो उनको चिंता होगी।
वे विवाह की फिकर में लगे हुए हैं। वे लड़का खोज रहे हैं। वे जल्दी में हैं कि इसके पहले कि यह बिगड़े, इसका विवाह कर देना है। तो जरा सावधान रहना। विवाह से सावधान रहना! और सब भूल-चूक कर लेना--विवाह की भूल-चूक मत करना। क्योंकि वह एक लंबी झंझट है। उसमें फंसना आसान है--निकलना बहुत मुश्किल है। इसलिए तो सात चक्कर खिलवा देते हैं, उसमें आदमी घनचक्कर हो जाता है! चकरा जाता है! समझ में ही नहीं आता, अब क्या करना--क्या नहीं करना! फिर निकलने का रास्ता नहीं है। ऐसी भूलभुलैया है कि उसमें भीतर तो घुस जाते हैं, फिर बाहर निकलते नहीं बनता।
तुमने कभी देखा--कोई पक्षी कभी कमरे में घुस आता है। अभी दरवाजे से ही घुसा है, और दरवाजे से ही निकल सकता है। मगर तुमने पक्षी को देखा कि वह क्या करता है! बंद खिड़कियों पर चोंच मारता है। दीवाल से टकराता है। छप्पर से सिर फोड़ लेता है। लहूलुहान हो जाएगा। और घबड़ाने लगेगा। जितना लहूलुहान होगा--दरवाजा मिलना मुश्किल हो जाएगा। आंख के सामने अंधेरा छा जाएगा। खोपड़ी छप्पर से टकरा गई। चोंच लहूलुहान हो गई--खिड़की से। घबड़ा गया! और अभी- अभी आया है।
एक मित्र मेरे--वे कहते हैं कि "विवाह से कैसे बाहर निकलना? सात फेरे
पड़ चुके हैं!" "अरे, तो", मैंने कहा, "तुम सात उलटे फेरे मार दो। खतम करो बात। जिस दरवाजे से आए, उसी से बाहर निकल जाओ!"
कि "गांठ बंध चुकी!"

"अरे, तो खोल दो। गांठ बांधी, तो कोई बड़ी भारी बात है! उठाओ कैंची काट दो, न खुलती हो तो! फिर से अपनी असली स्थिति में वापस आ जाओ। छोड़ो यह चक्कर!"
वे कहते हैं, "आप बात तो ठीक कहते हैं। मगर बड़ी मुश्किल है! बहुत झंझटें पाल ली हैं!"
आदमी एक झंझट जब पालता है, तो सिलसिला शुरू होता है। झंझट अकेली नहीं आती। एक झंझट अकेली नहीं आती। साथ में भीड़-भाड़ लाती है! झंझट के पीछे झंझटें आती चली आती हैं!
तो जरा सावधान रहना। विवाह की झंझट में मत पड़ना। तेरे मां-बाप तो कोशिश करेंगे। क्योंकि वे बेचारे क्या करें! वे तो एक ही जीवन का ढंग जानते हैं--जिस ढंग से वे जीए। हालांकि उन्होंने भी जीवन में उस ढंग से जीकर कुछ पाया नहीं।
जब मैं विश्वविद्यालय से घर लौटा, तो स्वभावतः मेरे मां-बाप भी उत्सुक थे कि मेरा विवाह हो जाए। मैंने सिर्फ इतना ही पूछा कि "मुझे तुम सोच-समझ कर कहो कि तुमने कुछ पाया? तुम्हें कुछ मिला हो--ईमानदारी से मुझे कह दो।"
फिर वे कुछ बोले ही नहीं। क्योंकि अब ईमानदारी से क्या कहते! ईमानदारी तो यही थी कि विवाह से क्या मिलना-जुलना है! किसको कब मिला है? मेरे पिता के एक मित्र थे वकील, फिर उन्होंने मुझसे सीधी बात करनी बंद
कर दी। सोचा कि वकील है आदमी यह, यह समझा सकेगा। वकील को मेरे पास भेजा। और वकील ने कहा, "अरे, बड़े-बड़े मुकदमे जीत चुका। यह कोई मुकदमा है! इस छोकरे को मैं ठीक करूंगा।"
वे वकील मुझे समझाने आए। मैंने उनकी बात सुनी। मैंने कहा, "बात तो मैं करने को राजी हूं। लेकिन एक बात पक्का कर लें--न्यायाधीश भी चुन लें।" उन्होंने कहा, "मतलब!"
मैंने कहा कि "गांव में इतने मजिस्ट्रेट हैं। आपके भी पहचान के हैं, मेरी भी पहचान के हैं। एक मजिस्ट्रेट को अपन बिठा लें। आप दलीलें दें विवाह के पक्ष में। मैं दलीलें दूंगा विपक्ष में। अगर आप जीत गए, तो मैं विवाह करूंगा। अगर मैं जीत गया, फिर--आपको विवाह छोड़ना पड़ेगा!"
उन्होंने कहा, "तू तो बड़ा उपद्रवी है! हमारी बसी-बसाई उजड़वा देगा!"
मैंने कहा, "एक-तरफा कैसे सौदा हो सकता है कि तुम मुझे समझाओ और मैं विवाह करूं। इसका दूसरा पहलू भी तो समझो!" मैंने कहा, "मैं तुम्हारा एक-एक तर्क काटने को तैयार हूं। क्योंकि मैं तुम्हारी जिंदगी को बचपन से जानता हूं। तुम्हारी पत्नी को जानता हूं। तुमको जानता हूं। तुम्हारे घर में क्या चलता है--वह जानता हूं। एक-एक पोल खोल कर रख दूंगा।"
वे जो वहां से भागे, तो लौटे ही नहीं! दो-चार दिन बाद मैं उनके घर जाने लगा--कि "वकील साहब कहां हैं!"
वे कहीं स्नान-गृह में छिप जाएं। कभी उनकी पत्नी कहे कि बाहर गए हैं। दफ्तर गए हैं! फलाना-ढिकाना!
एक दिन उनकी पत्नी बोली, "क्यों मेरे पति के पीछे पड़े हो? वे तुम्हें देख कर छिपते क्यों हैं? बात क्या है, आखिर मैं भी तो समझूं!"
मैंने कहा, "बात यह है कि यह विवाद होना है। और यह तय होना है कि कौन जीतता है। अगर मैं जीता, तो तुम्हारा खात्मा समझो। अगर वे जीते, तो मेरा खात्मा। मगर अब फैसला होकर रहेगा। मुझसे उलझे हैं, तो मैं ऐसे नहीं छोड़ दूंगा। दफ्तर गए। स्नानगृह में गए। मैं बैठा हूं। आज यहीं बैठा रहूंगा। कभी तो लौटेंगे दफ्तर से!"
वे गए-करे तो थे नहीं। भीतर के कमरे में ही बैठे थे। एकदम बाहर निकल कर
आ गए--कि अगर दिन भर बैठना है, तो मैं दफ्तर भी नहीं जाने दूंगा। उनका मुकदमा था अदालत में। वे बोले कि "भैया, मैं हाथ जोड़ता हूं। मैं माफी मांगता हूं। कान पकड़ता हूं--कि कभी अब तुमसे किसी तरह की बातचीत नहीं छेडूंगा इस संबंध में। अब मैं समझा कि क्यों तुम्हारे पिता मेरे ऊपर डाल दिए! तुम किसी की बनी-बनाई तुड़वा दो! तुम अपने घर जाओ। मुझे कुछ लेना-देना नहीं। तुम मुझे बख्शो!"

मैंने कहा, "तुम यह कहो, तो बात अलग। मगर याद रखना, कभी भूल कर यह बात मत उठाना। क्योंकि मैंने भी सारे तर्क खोज निकाले हैं--विवाह के विपरीत। और सच तो यह है कि दुनिया भर का अनुभव यह है... ।"
एक मित्र ने पूछा है, "ओशो, मैं जब भी घर पर आपके प्रवचन का टेप सुनता हूं, तो मेरी पत्नी टेप बंद कर देती है। पुस्तक पढ़ता हूं, तो छीन कर रख देती है। उसका दावा है कि सिर्फ वही मुझसे सर्वाधिक प्रेम कर रही है। इतने प्रेम को समझने में मैं असमर्थ हूं। कृपया मार्गदर्शन करें।"
चंद्रपाल भारती ने पूछा है। अब क्या मैं मार्गदर्शन करूं! यह तो होना
ही है। यह तो बिल्कुल स्वाभाविक है। पत्नी बर्दाश्त नहीं कर सकती। पति बर्दाश्त नहीं कर सकते। क्योंकि पति अगर मुझसे जुड़ जाता है, तो पत्नी को लगता है--"गया हाथ से! गया काम से!" पत्नी मुझसे जुड़ जाती है, तो पति के अहंकार को चोट पहुंचती है--भारी चोट पहुंचती है! पति के अहंकार को यह चोट पहुंचती है कि "मुझसे भी कोई ऊपर है तेरी दृष्टि में! जब मैं मौजूद हूं! ... और पति यानी परमात्मा। तो फिर अब तू कहां जाती है? किसका सत्संग करती है?" यहीं पूना में डाली दीदी है। उसके पति को यही कष्ट है। डाली मुझे कहती
थी कि "मेरे पति कहते हैंः तुझे क्या पूछना है, मुझसे पूछ। अरे, जब मैं मौजूद हूं, तो कहां सत्संग करने जाना! क्या तुझे जानना है? परमात्मा के संबंध में जानना है? स्वर्ग के संबंध में जानना है? आत्मा के संबंध में? मैं तो बताने को मौजूद हूं। जब मैं कहूं कि मैं नहीं जानता, तब तू कहीं जा।" और डाली मुझसे कह रही थी कि "अब इनसे क्या पूछना! इनको मैं जानती हूं!
ये क्या खाक जानते हैं? मगर कौन सिर पचाए!"
वे मेरी किताबें फेंक देते हैं। जैसे तुम्हारी पत्नी कर रही है। डाली
को छिप कर मेरी किताब पढ़नी पड़ती है। और ऐसा नहीं कि उनकी मुझसे कोई दुश्मनी है। मुझसे उनको कुछ लेना-देना नहीं है। मगर अड़चन यह आ रही है कि उनकी पत्नी, उनसे ज्यादा किसी को आदर दे--तो अहंकार को चोट लगती है।
और पत्नी को ईर्ष्या जग जाती है। वह कुछ मुझसे विरोध में नहीं है चंद्रपाल भारती! मुझसे उसे क्या लेना-देना! उसका तो कुल इतना ही कहना है कि उसकी मौजूदगी में--और तुम टेप सुन रहे हो--हद्द हो गई! पत्नी मौजूद है-- और तुम किताब पढ़ रहे हो! यह बरदाश्त के बाहर है। इसका मतलब--पत्नी से ज्यादा कीमती किताब है! फेंक देगी किताब! आग लगा देगी किताब में। टेप बंद कर देगी। उस पर ध्यान दो!
हर पत्नी की चौबीस घंटे चेष्टा है--मेरी तरफ देखो! कितना सजती-संवरती है। कितना दर्पण में देखती है अपने चेहरे को। और पति हैं कि देखते ही नहीं। वे अखबार पढ़ रहे हैं! अखबार वे बेचारे इसीलिए पढ़ रहे हैं! उसी अखबार को छह दफा पढ़ चुके हैं। फिर भी पढ़े जा रहे हैं! वे अखबार सिर्फ आंखों को छिपाने के लिए पढ़ रहे हैं--कि किसी तरह यह पत्नी न दिखाई पड़े! और पत्नी है कि वह वहीं-वहीं घूंघर करती है। फिर आ जाएगी। कभी चाय लेकर आ जाएगी। कभी कुछ और बहाने आ जाएगी। फिर अखबार ही छीन लेगी कि क्या आंखें फोड़ लोगे अपनी बैठे-बैठे! बंद करो यह अखबार! और मेरी मौजूदगी में--शर्म नहीं आती। संकोच नहीं होता। लाज-लज्जा नहीं। शिष्टाचार भी नहीं!
विवाह
आरंभ जिसका
पद्य में
और उपसंहार
गद्य में

चंदूलाल ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थेः हे ईश्वर
हमें भी दुम देते
मौका आता
दुम दबाकर
भाग तो लेते!

नृत्य-विशारदा पत्नी जी
पति पर इतना तरस खाती हैं
कि उन्हें दिन-रात
अंगुली पर नचाती है!
एक स्त्री की अंगुली कट गई कार में, एक एक्सिडेंट में। उसने बीस हजार रुपए इंश्योरेंस कंपनी से मांगे। इंश्योरेंस कंपनी भी हैरान हुई कि एक अंगुली कटने के बीस हजार रुपए! अदालत में मुकदमा चला। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि "इस अंगुली में ऐसा क्या गुण था कि बीस हजार रुपए!"
उसने कहा, "इसी पर मैं अपने पति को नचाया करती थी। क्या तुम मेरे पति
की कीमत बीस हजार भी नहीं मानते! अब मैं कहां नचाऊंगी?"
प्रेम के चक्कर में फंसी बेटी को देख कर मां ने उसे लाख समझाना चाहा,
पर वह न मानी। हार कर मां ने अनुभव की बात कह दी, "बेटी, यह नायक से शादी करने का चक्कर ठीक नहीं। खलनायक से ही शादी करनी चाहिए। उसे पिटने का भी अनुभव होता है--और आदत भी!"
यह विवाह तो बड़ा अदभुत चक्कर है; इसमें बड़ा अभ्यास चाहिए! इसमें कुटाई-पिटाई का बहुत अभ्यास चाहिए।
गुलजान गुस्से में उबलते हुए मुल्ला नसरुद्दीन से बोली, "तुम्हें नरक में भी जगह नहीं मिलेगी?"
मुल्ला नसरुद्दीन ने शांत स्वर में जवाब दिया, "अच्छा ही है। वरना सब जगह तुम्हारे साथ रहते-रहते मैं तो पागल ही हो जाऊंगा!"
अब चंद्रपाल भारती, मैं क्या तुम्हें मार्गदर्शन करूं! या तो हिम्मत
से जूझो--या पूंछ दबा कर भाग खड़े होओ। अब करोगे क्या और! या तो हिम्मत से जूझो। साफ पत्नी को स्पष्ट कर दो कि अगर इस तरह की कारगुजारी जारी रही, तो पृथक हो जाऊंगा। तो शायद उसे समझ में आए। क्योंकि उतनी जोखम वह भी नहीं लेना चाहेगी।
और यह कुछ प्रेम वगैरह नहीं है। यह तो ठीक अप्रेम है। यह प्रेम का अभाव है। वह कहती है कि "मैं ही तुमसे सर्वाधिक प्रेम कर रही हूं।" इतने प्रेम को तुम समझने में असमर्थ हो, यह भी मैं समझ रहा हूं। इतना प्रेम कौन समझ पाएगा! यह प्रेम नहीं है। प्रेम तो वही है, जो स्वतंत्रता दे। जो स्वतंत्रता छीन ले और नष्ट करे, वह प्रेम नहीं है।
लेकिन विवाह से प्रेम पैदा होता नहीं--हो नहीं सकता। विवाह तो धोखा है प्रेम का। हमने प्रेम से बचने के लिए विवाह ईजाद किया है। क्योंकि प्रेम खतरनाक है। प्रेम का कोई भरोसा नहीं। आज है--और कल तिरोहित हो जाए! विवाह प्लास्टिक का बना है; करीब-करीब शाश्वत है। मिटता ही नहीं! मिटाओ--तो नहीं मिटता। प्लास्टिक को मिटाओ--मिटा न पाओगे! ऐसा प्लास्टिक का फूल है।
और हम सबको सदियों से यह समझाया गया है कि स्थिरता का बड़ा मूल्य है।
जब कि जीवन में सभी चीजें क्षणभंगुर हैं। सुबह फूल खिलता है, सांझ मुरझा जाता है। सुबह पंखुड़ियां खुलती हैं, सांझ गिर जाती हैं।
तो प्रेम तो फूल जैसा है--असली फूल जैसा। कब खिलेगा, कब मुरझा जाएगा-- कोई नहीं कह सकता। कितने दिन टिकेगा--कोई नहीं कह सकता। लेकिन विवाह के संबंध में सुनिश्चित हुआ जा सकता है--कि टिकेगा; टिकाऊ है! और हम टिकाऊ चीजों पर बड़ी आस्था रखते हैं।
तुम बाजार में जाते हो चीजें खरीदने, तो पूछते हो, टिकाऊ है? न सौंदर्य
की फिक्र है, न कला की फिक्र है। बस, एक ही चीज की फिक्र है--टिकाऊ है! टिकाऊ हो, तो चलेगा।
हर चीज टिकाऊ होनी चाहिए! टिकाऊ का हमें ऐसा आग्रह पकड़ गया है! चार दिन
की जिंदगी! जिंदगी नहीं टिकती--और तुम टिकाऊ चीजों से भरे ले रहे हो! यहां जब जिंदगी ही नहीं टिकती, तो कौन सी चीज टिकेगी? पानी का प्रवाह है। एक क्षण को भी नहीं रुकता।
झूठी चीजें टिक सकती हैं। सच्ची चीजें तो बहाव होंगी। सच्ची चीजों में तो परिवर्तन होगा।

तो प्रेम तो परिवर्तनशील होगा; लेकिन विवाह थिर है। लेकिन जो थिर है, उससे बंध गए, तो खंभे से बंध गए। अब छटपटाओगे। अब स्वतंत्रता के लिए तड़फोगे।
अपनी पत्नी को स्पष्ट करो कि यह प्रेम नहीं है। न कर सको स्पष्ट, उसे यहां लाओ। यह प्रेम नहीं है। यह प्रेम का धोखा है। यह प्रेम के नाम पर प्रेम के कंधे पर रख कर बंदूक चलाना है। यह दुश्मनी है--दोस्ती नहीं। दोस्ती तो सुविधा देगी, अवकाश देगी।
अगर सच में किसी से तुम्हारा प्रेम है, तो तुम कभी भी उसकी सीमा का अतिक्रमण न करोगे। तुम उसे मौका दोगे स्वयं होने का। तुम कभी बाधा न डालोगे।
अगर पिंकी को उसके मां-बाप प्रेम करते हैं, और वह विवाह नहीं करना चाहती, तो उसके मां-बाप को प्रेम का सबूत देना होगा, कि ठीक है। अगर वह विवाह नहीं करना चाहती, तो कोई चिंता नहीं। उन्हें अपना बोझ--अपनी धारणाओं का बोझ उस पर नहीं थोपना चाहिए। लेकिन आदेश की भाषा अगर समझते हैं वे, तो खतरा है।
और पंजाब में आदेश की भाषा चलती है, इसलिए तो पंजाब भारत को सबसे अच्छे सैनिक देता है। सैनिक का मतलब यह होता है कि वह आदेश मानेगा। सोचेगा नहीं, विचारेगा नहीं--आज्ञाकारी होगा। बोले सो निहाल, सत श्री अकाल! कहीं भी कूद पड़ेगा। कृपाणें खिंच जाएंगी। "वाहे गुरुजी की फतह, वाहे गुरुजी का खालसा!"
मैं दिल्ली से मनाली जा रहा था एक शिविर के लिए। जिस इंपाला गाड़ी में मैं गया, उसका एक सरदार ड्राइवर था। बड़ी गाड़ी और संकरा रास्ता मनाली का। और वर्षा हुई थी, तो फिसलन भरा। और वह घबड़ाने लगा। एक जगह जा कर, तो उसने गाड़ी खड़ी ही कर दी। उसने कहा, "अब मैं आगे नहीं जाऊंगा।" आगे काफी कीचड़ थी और उसने कहा, "यह खतरा मैं नहीं ले सकता। गाड़ी बड़ी है। और कीचड़ काफी है। और संकरा रास्ता है। अगर जरा भी फिसल गई, तो यह नीचे जो गड्ढ है, इसमें समा जाएंगे!"
बहुत समझाया उसको, मगर पंजाबी समझ से तो मानता नहीं! जितना समझाया, उतना ही वह और ठिठक गया। वह तो बैठ ही गया! गाड़ी से उतर कर नीचे बैठ गया! वह तो संयोग की बात कि मेरी गाड़ी के पीछे ही जीप में पंजाब के पुलिस के आई.जी. वे भी शिविर में भाग लेने आ रहे थे। वे भी आ गए। वे भी सरदार! मैंने उनसे कहा कि "क्या करना! इस आदमी ने तो बहुत झंझट खड़ी कर दी!" उन्होंने उस सरदार की तरफ देखा और कहा कि "क्या खालसे की बदनामी करवा रहा है! अरे सरदार होकर और कीचड़ से डर रहा है! बोले सो निहाल सत श्री अकाल!"
और वह सरदार अंदर बैठ गया। और गाड़ी उसने चला दी। मैं उसको लाख समझा- समझा कर मर गया, वह नीचे उतर कर बैठा था। जैसे ही "सत श्री अकाल" और "खालसे" का नाम आया--कि "क्या सरदारों का नाम पानी में डुबा देगा मूरख!" उसने जवाब ही नहीं दिया। जल्दी से उठा।
पंजाबी तो आदेश की भाषा समझता है! आदेश दे दो, तो कृपाण निकल आएं। इधर संत को ही रोकना पड़ता है। कई दफा कृपाण खींचने लगते हैं। अब जैसे संत का और विनोद का मुकाबला हो जाए; दोनों पंजाबी! तो कुर्बानी पक्की! खिंच जाएं कृपाणें! फिर देर-दार नहीं। वह तो भला है कि दोनों की दोस्ती है।
पिंकी, आदेश की भाषा तेरे मां-बाप बोलेंगे, उससे सावधान रहना। अगर मेरे रंग में रंगना है, तो विवाह से बचना।
अब ये मित्र उलझ गए--चंद्रपाल भारती! अब मार्गदर्शन मांग रहे हैं! गड्ढे में गिर गए। हड्डी-पसली टूट गई। अब पूछते हैं--मार्गदर्शन दो! अरे, पहले पूछना था! अब आंख पर चश्मा चढ़ गया। अब कहते हैं--मार्गदर्शन दो। अब दिखाई नहीं देता! अब अंधेरे में टटोल रहे हैं। कहते हैं--मार्गदर्शन दो! अब मार्गदर्शन मैं तो तुम्हें दे दूं, मगर पत्नी अगर राजी न हो, तो मार्गदर्शन का क्या होगा!
डाक्टर चंदूलाल से बोला, "मैंने आपसे कहा था कि आपकी जिस अंगुली में दाग पड़ गया है, उसे गर्म पानी में एप्सम साल्ट डाल कर भिगोए रखिए।" दूसरे

दिन चंदूलाल ने अंगुली के अच्छे होने की खबर दी। लेकिन उसने एप्सम साल्ट नहीं, आटे की पुल्टिस बांधी थी!
"तो तुमने मेरी सलाह नहीं मानी", डाक्टर बिगड़ा।
"इसमें मेरा कोई दोष नहीं डाक्टर साहब", चंदूलाल मिमियाए सुर में बोले, "मैं क्या करूं। मेरी पत्नी मानी ही नहीं! और उसने जबर्दस्ती आटे की पुल्टिस बांध दी!"
"अजीब बेवकूफी है", डाक्टर ने कहा, "और मेरी पत्नी है; वह तो हमेशा एप्सम साल्ट के ऊपर ही जोर देती है। मैं ही नहीं, मेरे मरीजों तक को मैं अगर पुल्टिस बांधना चाहता हूं, बांधने नहीं देती!"
तो मैं तो मार्गदर्शन दे दूं, लेकिन पत्नी अगर आटे की पुल्टिस बांधे,
तो फिर क्या करोगे! वह मार्गदर्शन पर चलने भी नहीं देगी। वह कहेगी, "मेरे रहते कहीं और जगह से मार्गदर्शन तुमने लिया कैसे!"
दूसरे शहर से चिड़ियाघर देखने आया एक दल ज्यों ही शेर के पिंजरे के पास पहुंचा, शेर ने एक खौफनाक दहाड़ लगाई। दहाड़ इतनी जोरदार थी कि एक व्यक्ति को छोड़ कर सारे लोग बेहोश हो गए। चिड़ियाघर का अधिकारी उस व्यक्ति की ओर प्रशंसा भरी दृष्टि से देखता हुआ बोला, "लगता है, आप बहुत निडर हैं!"
वह व्यक्ति बोलाः जी नहीं। दरअसल मैं तो रोज-रोज ऐसी दहाड़े सुनने का अभ्यस्त हो चुका हूं!
क्या आप भी किसी चिड़ियाघर में काम करते हैं?
उसने कहा, "जी नहीं। मैं शादीशुदा हूं।"
"घर का मालिक सच में कौन है--तुम कि तुम्हारी पत्नी?" मित्रों ने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा।
नसरुद्दीन ने अपनी मूंछों पर ताव दिया और कहा, "मैं ही हूं। निश्चित मैं ही हूं। और ऐसा कहने के लिए गुलजान ने मुझे पूरा अधिकार दिया है!" मार्गदर्शन तो मैं दे दूं, मगर पत्नी से पूछ कर आए कि नहीं--कि मार्गदर्शन लेने जा रहा हूं। ले लूं? अगर उसने अधिकार दिया हो, तो मैं दे दूं। नहीं तो दोबारा जब आओ, तो पूछ कर आना--कि मार्गदर्शन ले लूं! वह क्या कहती है! क्योंकि मार्गदर्शन पर चलने कहां देगी! जो किताब नहीं पढ़ने देती; जो टेप नहीं सुनने देती; जो ध्यान नहीं करने देती--वह मार्गदर्शन पर चले कैसे देगी!
भैया, बेहतर हो, तुम उसे यहां ले आओ। किसी भी बहाने ले आओ। महाबलेश्वर घुमाने ले जा रहे हो, शायद आ जाए! कि पूना में साड़ियों का बहुत अच्छा स्टाक आया हुआ है--शायद आ जाए! उसको किसी बहाने यहां ले आओ, तो शायद कुछ बात बन सके, तो बन सके।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी की कब्र पर यह इबारत लिखवाईः "मेरी पत्नी गुलजान यहां सुख की नींद सो रही है। मुझे सुखी रखने की उसने पूरी उम्र कोशिश की, और आखिर मर कर अपनी कोशिश में पूरी तरह कामयाब हो गई!" तुम्हारी पत्नी तुम्हें सुखी रखने की पूरी कोशिश कर रही है। उससे ज्यादा प्रेम तुम्हें कोई नहीं करता! सर्वाधिक प्रेम वही करती है! वह तुम्हारी गर्दन को दबाए जाएगी, क्योंकि प्रेम वह करती है, तो गर्दन किसी और को दबाने देगी! जरा साहस करो--मार्गदर्शन क्या मांगते हो!
किताब पत्नी फेंक सकती है, तुम बैठे देखते रहते हो! हद्द हो गई! तुमसे कुछ नहीं बनता! अरे, खड़े हो कर कम से कम कुंडलिनी करो! हू-हू की पुकार मचा दो, कि मोहल्ला इकट्ठा हो जाए। फिर नहीं फेंकेगी किताब। फिर हाथ जोड़ कर खड़ी हो जाएगी कि कम से कम यह हू-हू न करो! किताब ही पढ़ो।
कुछ उपद्रव करो। अब मैंने तो कैसे-कैसे तुम्हें ध्यान दिए हैं--हू-हू!
कि एक दफा कर दो कि पूरा मोहल्ला अपने आप इकट्ठा हो जाए! अरे, मोहल्ला ही नहीं... !
मेरे एक मित्र ने खबर की है कि इंदौर में--इंदौर का केंद्र जहां है, उसके पास ही मुसलमानों का मरघट है। और वे हू-हू की आवाज करें। मुसलमानों में खबर पहुंच गई कि वे लोग जो हैं हू-हू करके मुरदों को जगा रहे हैं!
बड़ी घबड़ाहट फैल गई। हिंदू-मुस्लिम दंगे होने की नौबत आ गई। उन्होंने कहा कि "हम हू-हू नहीं करने देंगे। और तुम कुछ भी करो!" मुसलमानों में बड़ा

सन्नाटा और घबड़ाहट का सिलसिला हो गया। और उन्होंने कहा, "या फिर तुम केंद्र कहीं और ले जाओ।"
"पर", उन्होंने पूछा, "बात क्या है? तुम्हें हू-हू से तकलीफ क्या है! क्योंकि गांव दूर। इसीलिए तो हमने गांव के बाहर यह जगह ली है!"
"अर"े, उन्होंने कहा, "गांव तो दूर है, मगर हमारा मरघट करीब है। और मुरदे किसी तरह तो सो गए हैं। तुम उनको जगा दोगे! और मुरदों को जगाना हम बर्दाश्त नहीं कर सकते। वे तो जगाए जाएंगे आखिरी दिन, कयामत के दिन। और तुम अभी जगाए दे रहे हो! और हम किसी तरह तो उनसे छुटकारा पाए हैं। और भूत-प्रेत उठ आएं--यह नहीं चलेगा!"
उनको हटाना पड़ा वहां से केंद्र, क्योंकि मामला अदालत तक पहुंच गया। मुसलमानों ने कहा कि "यह हू-हू मंत्र खतरनाक है। इनको करना हो, तो कहीं और करें। यह तो अल्लाहू का ही हिस्सा है--हू!"
हू है भी अल्लाहू का ही हिस्सा। यह सूफियों का मंत्र है। "अल्लाहू- अल्लाह"ू करते-करते "हू-ह"ू बचता है। तो मैंने कहा--अल्ला क्या करना है। जो चला ही जाता है, उसको छोड़ ही दो। हू ही बचा लो। जो बचने वाला है, उसको पहले ही से बचा लो। जो जाने वाला है, उसको जाने ही दो!
और वे लोग घबड़ाए होंगे कि अल्लाहू-अल्लाहू की आवाज और हू-हू की आवाज मुरदे अगर सुन लें, तो समझें कि आ गया कयामत का दिन! क्योंकि उस वक्त आवाज होगी बड़े जोर से--अल्लाहू की! अल्लाहो अकबर--एकदम आवाज उठेगी और मुरदे कब्रों से उठ आएंगे। और ये दुष्ट अभी उठाए दे रहे हैं! फिर मुर्दे उठ आएं-- उनको सुलाओगे कैसे? और मुर्दे उठ आएंगे, तो मुहल्ले वालों को, गांव वालों को, अपने रिश्तेदारों को ही सताएंगे और किसको सताएंगे!
उनका भी कहना जायज है।
तो तुम कम से कम इतना करो। जब मुरदे जग जाते हैं, तो मुहल्ले वाले कितने ही सोए हों, एकदम हू-हू की पुकार मचा दोगे--एक ही दफे में पत्नी शांत हो जाएगी। एकदम कहेगी कि "लल्लू के पप्पा!"... चरणों पर गिरेगी कि "अब शांत हो जाओ! सारा मुहल्ला इकट्ठा हो गया! और मेरी बदनामी न करवाओ। यह लो किताब--पढ़ो। कम से कम चुप तो रहते हो!"
जब भी किताब छीने--हू-हू करो। टेप बंद करे--हू-हू करो। यह सौ मंत्रों
का एक मंत्र है! सौ सुनार की एक लुहार की!

आखिरी प्रश्नः भगवान, आप इस बार मारवाड़ियों के संबंध में क्यों कुछ नहीं कह रहे हैं! और मैं ठेठ मारवाड़ से इसीलिए आया हूं!

सुभाष कोठारी! तुम भी धन्य हो! मारवाड़ में होकर मारवाड़ियों के दुश्मन हो--क्या बात है? चलो, अब इतनी दूर से आए हो, तो मुझे भी तुम्हारी लाज रखनी पड़े अन्यथा इस बार मैं मारवाड़ियों को छोड़ ही रहा था। कभी-कभी छोड़ देता हूं, तो मारवाड़ी निश्चिंत हो जाते हैं। फिर आने लगते हैं। फिर उनकी पिटाई कर देता हूं; फिर भाग जाते हैं। फिर महीने दो महीने शांत रहता हूं, तो फिर आ जाते हैं। कभी पंजाबियों की पिटाई, कभी बंगालियों की पिटाई! मतलब पिटाई मुझे करनी है--किसी न किसी की होगी।
सेठ चंदूलाल मारवाड़ी अपने मित्र मुल्ला नसरुद्दीन से कह रहे थे कि "मेरे लड़के ने तो कमाल कर दिया! मैंने उससे कहा कि एक बार में दो सीढ़ियां चढ़ा-उतरा करो, ताकि जूता कम घिसे। मगर उस नालायक ने कल छह सीढ़ियां एक बार में साथ उतरीं!"
नसरुद्दीन बोला, "तब तो जूता और कम घिसेगा!"
चंदूलाल रोते स्वरों में बोला, "जूता तो कम घिसा। मगर उस उल्ले के पट्ठे ने अपनी नई पैंट फाड़ ली!"
गुरु तो गुड़ रहे, चेला शक्कर हो गए! बेटा बाप से आगे निकल गया! उसने कहा, जब जूते ही घिसना बचाना है... !
मैंने सुना कि एक रात चंदूलाल पड़ोस के गांव में किसी शादी में सम्मिलित होने गए। कोई तीन मील जाने के बाद उनको ख्याल आया कि दीया जलता हुआ छोड़ आए; पता नहीं यह नालायक लड़का बुझाए कि न बुझाए! ऐसे ही सो जाए! रात

भर तेल जलता रहे। और मुझे लौटते-लौटते सुबह हो जाएगी! सो वे लौट कर आए। दरवाजा खटखटाया; लड़के ने दरवाजा खोला। उन्होंने कहा कि "दीया बुझा दिया कि नहीं रे!"
उसने कहा, "आप भी क्या बातें कर रहे हैं! आपका बेटा--और मैं दीया न बुझाऊं! अरे, आप इधर बाहर हुए कि मैंने दीया बुझा दिया। आप इतनी दूर कैसे आए! और आपको शर्म न लगी--तीन मील गए, तीन मील आए, जूता घिस जाएगा!"
चंदूलाल ने कहा, "तूने मुझे क्या समझा है रे! देख, जूता बगल में दबाए हुए हूं। जूता कैसे घिसेगा? पैर घिस जाएं, मगर जूता नहीं घिस सकता!" मारवाड़ी की अपनी दुनिया है!
"डाक्टर साहब, अब मेरा बेटा झुम्मन कैसा है?" चंदूलाल ने उदास आवाज में पूछा।
डाक्टर ने कहा, "घबड़ाने की कोई बात नहीं। धीरज रखिए सेठजी! उसे नकली सांस दी जा रही है।"
सेठ चंदूलाल गरज कर बोले, "धीरज कैसे रखूं जी! सरासर बेईमानी हो रही है। अरे, जब मैंने असली सांस के पैसे चुकाए हैं, तो फिर नकली सांस क्यों दी जा रही है?"
सेठ चंदूलाल को उसके कुछ मित्र दोपहर को मिलने आए। द्वार पर उनके नौकर पोपटलाल ने उनका स्वागत किया। तो मित्रों ने पूछा, "सेठजी कहां हैं?" पोपटलाल ने उत्तर दिया, "सेठजी डिनर खा रहे हैं!"
"डिनर खा रहे हैं! डिनर तो रात का खाना होता है--दिन का नहीं!" एक मित्र
ने चौंक कर कहा।
"वह तो मुझे भी अच्छी तरह मालूम है। लेकिन वे रात का बचा हुआ खाना ही
खा रहे हैं", पोपटलाल ने कहा।
सेठ चंदूलाल मारवाड़ी समुद्रतट पर चहलकदमी कर रहे थे कि अचानक एक जोर
का तूफान आया और चंदूलाल के छोटे बेटे झुम्मन को उठा कर समुद्र में ले गया। दो सेकेंड में ही सागर की लहरों में उठता-गिरता झुम्मन हवा के वेग के साथ इतनी दूर निकल गया कि उसका दिखना भी बंद हो गया। चंदूलाल के प्राण सूखने लगे। झट उन्होंने आकाश की ओर हाथ जोड़ कर कहा, "हे परम पिता परमात्मा, मेरे बेटे को बचा लो। हे करुणा के सागर, मुझ पर कृपा करो। मेरा सब कुछ लुटा जा रहा है!"
उनका इतना कहना ही था कि एक चमत्कार घट गया। समुद्र में एक बड़ी लहर उठी और वह लहर झुम्मन को किनारे पर पटक गई। चंदूलाल ने अपने बेटे को एक नजर में ऊपर से नीचे तक देखा, गौर से देखा, फिर से देखा--और ईश्वर को क्रोध भरे स्वर में कहा, "इसीलिए तो मुझे तुझ पर श्रद्धा नहीं होती। मेरी एक भी प्रार्थना नहीं सुनता। तू खुद सोच, मैं भला नास्तिक न होऊं, तो और क्या होऊं! तुझे मेरी जरा भी फिक्र नहीं। अब यही उदाहरण देख। मेरा बेटा तो बच गया; खैर कोई बात नहीं। मगर उसकी टोपी कहां गई? हो गया न सत्यानाश!" मारवाड़ी सबके भीतर छिपा है लेकिन। मारवाड़ में ही नहीं रहता; हर मन में रहता है। मन ही मारवाड़ है। मन बड़ा कृपण है, कुछ छोड़ता ही नहीं। कूड़ा-करकट भी इकट्ठा करता है--धन दौलत ही नहीं। जो पकड़ लेता है, उसी को इकट्ठा करता चला जाता है। मन इकट्ठा करने में मानता है--बांटने से डरता है। और आत्मा उन्हें उपलब्ध होती है, जो बांटना जानते हैं।
जो है उसे बांटो। मारवाड़ी को आत्मा नहीं मिल सकती। जो है, उसे बांटो। साझीदार बनाओ औरों को। प्रेम है, तो प्रेम। आनंद है, तो आनंद। ज्ञान है, तो ज्ञान। ज्योति है, तो ज्योति। ध्यान है, तो ध्यान। जो है, उसे बांटो। बेशर्त बांटो। और जितना बांटोगे, उतना ही परमात्मा तुम पर बरसेगा। तुम जितना बांटते चलोगे, उतना बढ़ता जाता है भीतर का धन।
भीतर के धन का अर्थशास्त्र अलग अर्थशास्त्र है। बाहर का धन बांटने से घटता है। बाहर का धन मारवाड़ी के अर्थशास्त्र का हिस्सा है। भीतर का धन बांटने से बढ़ता है, रोकने से घटता है।

आज इतना ही।

ज्यूं था त्यूं ठहराया
छठवां प्रवचन

गुरु कुम्हार, शिष्य कुंभ है

पहला प्रश्नः ओशो, मैं ध्यान क्यों करूं?

दिवाकर भारती! जीवन में कुछ चीजें हैं, जो साधन नहीं--साध्य हैं। और बहुत चीजें हैं, जो साधन हैं--साध्य नहीं। पूछा जा सकता है कि "मैं धन क्यों अर्जित करूं?" नहीं पूछा जा सकता कि "मैं ध्यान क्यों करूं?" क्योंकि धन साधन है--"क्यों" का उत्तर हो सकता है।
धन की कोई उपयोगिता है; ध्यान की कोई उपयोगिता नहीं है। ध्यान अपने आप में साध्य है--जैसे प्रेम। कोई पूछे कि "मैं प्रेम क्यों करूं!" क्या उत्तर होगा? प्रेम! "क्यों" का प्रश्न ही नहीं; हेतु की बात ही नहीं; अंतरभाव है। जैसे फूल में सुगंध है; "क्यों" की कोई बात नहीं। ऐसे हृदय का फूल खिलता है, तो प्रेम की सुगंध उठती है।
नहीं पूछा जा सकता कि "जीवन क्यों?"
सरल होगा सोचना यूंः जब दुख होता है, तो तुम पूछ सकते हो "क्यों"; "क्या कारण है?" लेकिन जब आनंद होता है, तो न तुम पूछते हो, न तुम पूछ सकते हो कि "आनंद क्यों?" "कारण क्या?" जब तुम बीमार होते हो, जरूर चिकित्सक के पास जाते हो। पूछते हो, "बीमारी का कारण क्या?" लेकिन जब तुम स्वस्थ होते हो, तब कभी गए चिकित्सक के पास पूछने--कि "मेरे स्वास्थ्य का कारण क्या? क्यों?" नहीं; स्वास्थ्य का कोई कारण नहीं है।
"स्वास्थ्य" बड़ा प्यारा शब्द है। इसका अर्थ है--स्वयं में स्थित हो जाना। स्वयं में ठहर गए। ज्यूं था त्यूं ठहराया! इसके पार कुछ भी नहीं है; कोई मंजिल नहीं है।
मोहब्बत की कोई मंजिल नहीं है
मोहब्बत मौज है साहिल नहीं है।
जो पूछे कि मोहब्बत की मंजिल क्या है, उसने मोहब्बत को समझा ही नहीं।
और "ध्यान" परमात्मा से प्रेम का नाम है। ध्यान अर्थात प्रेम का अंतिम शिखर। किसी व्यक्ति से प्रेम हो जाए--तो प्रेम। और इस विराट अस्तित्व से प्रेम हो जाए--तो ध्यान। चाहे उसे प्रार्थना कहो। चाहे उसे पूजा कहो। चाहे उसे प्रेम कहो। चाहे उसे ध्यान कहो। शब्दों का ही भेद है।
प्रेम में अहंकार खो जाता है। दो व्यक्तियों में भी प्रेम हो जाए, तो उनके बीच कोई अहंकार का टकराव नहीं रह जाता। और जब व्यक्ति का अनंत से प्रेम होता है, समस्त से प्रेम होता है, समग्र से, तो फिर कहां अहंकार! जैसे बूंद खो जाती है सागर में ऐसा व्यक्ति खो जाता है।
मोहब्बत की कोई मंजिल नहीं है
मोहब्बत मौज है साहिल नहीं है।
तुम पूछते हो, "ध्यान क्यों?" तुम ध्यान का अर्थ ही न समझे। ध्यान कोई वस्तु नहीं है; ध्यान तुम्हारा स्वास्थ्य है--ध्यान कोई बीमारी नहीं है। कोई भी बहाना हो... ये सब बहाने हैं--ध्यान, प्रार्थना, पूजा, अर्चना--
सब बहाने हैं--निमित्त। डूबना है। डुबकी मारनी है। और ऐसी कि फिर लौटने की कोई जगह बाकी न रह जाए। डुबकी ऐसी कि डूबने वाला तिरोहित ही हो जाए। रामकृष्ण कहते थेः समुद्र के तट पर मेला लगा था। किनारे पर खड़े लोगों में यह विवाद हो गया... । बड़े पंडित, बड़े पुरोहित, बड़े ज्ञानी मेले में इकट्ठे थे।
अजीब है दुनिया! मेले के झमेले में पंडित-पुरोहित, साधु-संत, किसलिए पहुंच जाते हैं?
कुंभ का मेला देखा! साधुओं की कतारें चली आती हैं। संतों के अखाड़े! पहली तो बात--संतों का अखाड़ा? पहलवानों का अखाड़ा हो, तो समझ में आता है। संतों का अखाड़ा! जैसे कुछ मार-काट होनी है। और मार-काट हो भी जाती है। अखाड़े अखाड़े से जूझ जाते हैं। इसी बात पर जूझ जाते हैं कि कौन पहले स्नान करे! भाले उठ जाते हैं। ये जो लोग इकट्ठे हो रहे हैं, ये साधु-संत नहीं हैं;

नहीं तो साधु-संत को मेले और झमेले से क्या लेना! वे तो जहां हैं, वहीं परमात्मा है। वह कुंभ का मेला जाएगा। किसलिए? किस कारण?
लेकिन मेले में पाखंडी, धोखेबाज, थोथे लोगों की भीड़ हो जाती है। उस मेले में भी रही होगी। रामकृष्ण कहते कि उनमें बड़ा विवाद छिड़ा पंडितों में, कि सागर की गहराई कितनी है?
पंडितों में जिस चीज पर विवाद न छिड़ जाए... । मुश्किल है ऐसी चीज पाना, जिस पर विवाद न छिड़ जाए! हर किसी चीज पर विवाद छिड़ जाता है।
पंडित तो विवाद को आतुर है। विवाद भी लड़ने का एक ढंग है। अब तलवारें नहीं उठतीं, तो तर्क उठ जाते हैं! बात वही है--काटनी है गर्दन दूसरे की। तलवार से काटो कि तर्क से काटो--हिंसा ही है--नए ढंग में निकली, सूक्ष्म रूप में निकली।
और मजा ऐसा कि जिस सागर में तुम उतरे ही नहीं--किनारे खड़े हो--उसकी गहराई का पता कैसे पा सकोगे? क्या उपाय होगा पता पाने का?
रामकृष्ण यह कहानी बहुत बार दोहराए हैं कि दो नमक के पुतले भी भीड़भाड़ देख कर आ गए थे मेले में। उन्होंने यह विवाद सुना। उन्होंने कहा, "रुको! हम अभी पता लगा कर आते हैं। यूं कैसे तय होगा! तट पर बैठे-बैठे सागर की गहराई कैसे मापोगे? हम जाते हैं; डुबकी मारते हैं; अभी लौट कर आते हैं!"
दोनों नमक के पुतलों ने डुबकी मार दी। प्रतीक्षा करते रहे--प्रतीक्षा करते रहे लोग। मेला चला महीनों--उजड़ा--लोग विदा भी हो गए। पुतले नहीं लौटे, सो नहीं लौटे। लौट भी नहीं सकते। नमक के पुतले थे, सागर में लीन हो गए। सागर से ही बने थे; नमक के थे, सो सागर से ही बने थे, सागर का ही अंग थे, सागर में ही विलीन हो गए।
थाह तो मिली, मगर जो लेने चला था, वह खो गया। लौट कर कोई आया नहीं कहने। कुछ थे जो किनारे पर खड़े रहे, वे तो बचे, लेकिन उन्हें थाह न मिली। विवाद तो बहुत चला। शब्दों के जाल रचे गए, लेकिन गहराई का कोई पता कैसे चले! जिसको गहराई का पता चला, वह खुद ही खो गया।
बहाना है खो जाने का। बहाना है उस परम प्यारे को पाने का। "एक ओंकार सतनाम"--वह जो एक है, नाम कुछ भी दे दो--ओंकार कहो, अल्लाह कहो, राम कहो, रहीम कहो, रहमान कहो--जो मौज हो, सो कहो। लेकिन उस एक के साथ एक हो जाना है, तल्लीन हो जाना है। और इस तल्लीनता के सिवाय मरीज को आराम नहीं आ सकता। दोस्त आए कि दोस्त का कोई पैगाम आए
आए जिस तरहा से बीमार को आराम आए
आए जिस तरहा से बीमार को आराम आए
दोस्त आए कि दोस्त का कोई पैगाम आए।

अब्र छाया है, हवा मस्त है, गुलशन खामोश
काश! इस वक्त वह हाथों में लिए जाम आए काश! इस वक्त वह हाथों में लिए जाम आए दोस्त आए कि दोस्त का कोई पैगाम आए।

शान है ये भी तेरी बज्मे तरब की साकी
कोई बदमस्त हो पीकर, कोई नाकाम आए
कोई बदमस्त हो पीकर, कोई नाकाम आए
दोस्त आए कि दोस्त का कोई पैगाम आए।

वो भी दिन थे कि मेरी शाम थी सुबहे-उम्मीद अब तो ये हाल है, रो देता हूं जब शाम आए अब तो ये हाल है कि रो देता हूं जब शाम आए दोस्त आए कि दोस्त का कोई पैगाम आए।

हाय वो वक्त, पता पूछ रहा हो कासिद
और यहां रक्स से लब पर न तेरा नाम आए दोस्त आए कि दोस्त का कोई पैगाम आए।

आए जिस तरहा से बीमार को आराम आए।

बहाने हैं! "आए जिस तरह से बीमार को आराम आए!"
मत पूछो कि ध्यान क्यों करूं? यह भाषा बाजार की, दुकान की। "यह चीज क्यों खरीदूं?" यह भाषा प्रेम की नहीं। यह भाषा संन्यास की नहीं। ध्यान तो अपने आप में साध्य है। डूबो, तो जान जाओगे "क्यों"। मगर अगर पहले से पूछा "क्यों", तो डूब ही न पाओगे।
इस सारे अस्तित्व में "क्यों" का कोई उत्तर ही नहीं है। गुलाब के फूल सुंदर हैं--क्यों? और जुही से गंध झर रही है--क्यों? और तारों के साथ रातरानी महक उठी है--क्यों? और सुबह सूरज उगा है और पक्षियों ने गीत गाए हैं--क्यों? और सरिताएं भाग रही हैं हिमालय से सागर की तरफ--क्यों? अस्तित्व कोई पहेली नहीं है कि सुलझा लो। अस्तित्व एक रहस्य है, जिसे जीना है। और जिसने प्रश्न उठाए, वह दर्शन-शास्त्र की व्यर्थ की पहेलियों में खो जाता है।
प्रश्न छोड़ो--निष्प्रश्न हो जाओ। निष्प्रश्न होना ही ध्यान है। न कोई विचार रहेगा, तो प्रश्न कहां रह जाएंगे!
जहां विचार नहीं, जहां प्रश्न नहीं, जहां ऊहापोह नहीं, जहां वासना नहीं, जहां कहीं जाने की कोई आकांक्षा-अभीप्सा नहीं, कोई महत्वाकांक्षा नहीं--वहीं स्वास्थ्य है, परम स्वास्थ्य है। ज्यूं का त्यूं ठहराया। ज्यूं था त्यूं ठहराया! बस, उस जगह ठहरे कि आनंद है, महोत्सव है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आपका तीर ठीक निशाने पर लगा। प्रत्युत्तर सुनते
ही कबीर का पद याद आयाः
गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है घड़ि-घड़ि काढ़ै खोट
भीतर हाथ संवार दे बाहर मारै चोट!
आपके प्रति धन्यवाद के भाव से भर गया हूं। अनंत-अनंत धन्यवाद!

योगतीर्थ! मैं आनंदित हूं कि तुम समझे। डर था कि कहीं नासमझी न कर बैठो। क्योंकि जब मैं तुम्हारी पीठ थपथपाता हूं, तब तो प्यारा लगता हूं। तब तुम्हारी आंखों से आनंद के आंसू झरते हैं। तुम गदगद हो जाते हो। लेकिन जरा सी चोट मारो कि बस, तुम तिलमिला उठते हो। तुम्हारा अहंकार सिर उठा कर खड़ा हो जाता है। क्रोध से भनभना जाते हो।
मगर मेरी भी मजबूरी है। मुझे तुम्हें सम्हालना भी होगा; और मुझे तुम्हें मारना भी होगा। दोनों ही काम करने पड़ेंगे! तुम धन्यभागी हो कि तुम चोट को भी स्वागत कर सके; और तुम्हें कबीर का यह प्यारा पद याद आया।
कबीर के पद अदभुत हैं, बेजोड़ हैं। अब इन दो छोटी सी पंक्तियों में गुरु और शिष्य की सारी कथा आ गई। "गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है!"... गुरु तो है कुम्हार, और शिष्य है घड़ा--कच्चा; अभी मिट्टी से बनाया जा रहा है। अभी चाक पर चढ़ाया जा रहा है।
"गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, घड़ि-घड़ि काढ़ै खोट!" अभी बहुत सी खोट निकालनी है। कंकड़-पत्थर होंगे मिट्टी में--अलग करने हैं। घास-पात आ मिला होगा--अलग करना है। नहीं तो घड़ा पानी भरने योग्य नहीं बन सकेगा। घड़ा तो बन जाएगा, मगर खाली का खाली रह जाएगा। घड़े को भरना है अमृत से। अमृत-घट बनाना है।
"गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, घड़ि-घड़ि काढ़ै खोट।" तो जितनी खोट है, निकाल-निकाल अलग करनी होगी। और जब खोट निकाली जाती है, तो पीड़ा होती है। जैसे कि कोई तुम्हारे नासूर से मवाद निकाले, तो पीड़ा तो होती है, दर्द तो होता है। लेकिन और कोई उपाय ही नहीं है।
और इसलिए भी बहुत पीड़ा होती है कि जिसे गुरु खोट समझता है, तुम उसे खरा सोना समझते हो! तुमने जिस अज्ञान को छाती से लगा रखा है, उसे तुमसे छीनना है। मगर तुम उसे संपदा समझे हो! तुमने जिस अहंकार को सिर पर बिठा रखा है, उसे नीचे गिराना है। मगर वह तुम्हारी पगड़ी बना बैठा है! वह तुम्हारी इज्जत! वह तुम्हारी आबरू!

तुम्हारे अंध-विश्वास छीनने हैं। मगर तुम्हारे अंधविश्वास, तुम्हारे रिवाज, तुम्हारे रस्म, तुम्हारी परंपराएं--बापदादों के जमानों से चली आतीं--वही तो तुम्हारी कुल जमा पूंजी है।
एक धनपति बड़ा कंजूस। उसके पास सोने की ईंटें थीं। लेकिन खाता था रूखी- सूखी। कपड़े पहनता था पुराने, जराजीर्ण। रहता था एक झोपड़े में। सोने की ईंटें उसने अपनी बगिया में गड़ा रखी थीं। रोज खोद कर देख लेता था कि हैं अपनी जगह या नहीं! फिर मिट्टी से ढांक देता था।
पड़ोसी को थोड़ा शक हुआ कि बात क्या है--रोज-रोज वहीं जाता है। सुबह जाता है। शाम जाता है। कभी-कभी आधी रात भी जाता है। खोद कर कुछ देखता है! तो पड़ोसी की उत्सुकता जगनी स्वाभाविक थी। एक दिन छिप रहा पड़ोसी। देखा, तो दंग रह गया। सोने की ईंटें थीं!
यह कंजूस तो लौटा ईंटें दबा कर, उस पड़ोसी ने सोने की ईंटें तो निकाल लीं और उनकी जगह साधारण मिट्टी की ईंटें रख दीं।
दूसरे दिन सुबह जब उसने मिट्टी हटाई और देखा कि सोने की ईंटें नदारद हैं! एकदम छाती पीट कर चिल्लाने लगा, "लुट गया। मर गया!"
पड़ोसी ने कहा, "क्या लुट गए, क्या मर गए। क्या हो गया?" तो कहा कि "मेरी सोने की ईंटें थीं, वह कोई चुरा ले गया। और ये साधारण मिट्टी की ईंटें रख गया!"
पड़ोसी ने कहा कि "तुम्हें फर्क ही क्या पड़ता है! इन्हीं को खोद कर रोज देख लिया करना। अरे, तुम्हें देखना ही है न खोद कर! जिंदगी मुझे हो गई तुम्हें देखते। बस, तुम इतना ही तो काम करते हो--उन ईंटों का इतना ही तो मूल्य है--कि रोज खोद कर देखना है। अब तुम्हें क्या फर्क पड़ता है कि सोने की हैं कि मिट्टी की। खोद कर देख लीं; दबा दीं! तुम्हें कुछ उपयोग तो करना नहीं। खानी तो रूखी-सूखी है, सो तुम खाते रहोगे। पहनने तो पुराने जराजीर्ण कपड़े हैं, सो तुम पहनते रहोगे।"
कंजूस भी अपने लिए तर्क खोज लेते हैं। वे कहते हैं--"सादा जीवन--ऊंचे विचार!" हैं कृपण, लेकिन कृपणता को भी ओट में कर लेते हैं। उस पर भी घूंघट डाल देते हैं! हैं कुरूप, लेकिन घूंघट डाल देते हैं।
तुमने ख्याल कियाः कुरूप से कुरूप स्त्री भी घूंघट डाल कर निकल जाए,
तो लोग झांक-झांक कर देखने लगते हैं! बुरके में छुपा कर किसी स्त्री को ले जाओ... स्त्री को क्या, अगर पुरुष को भी ले जाओ, तो भी लोग झांक-झांक कर देखने लगते हैं। रुक-रुक कर! ठहर-ठहर कर! लौट-लौट कर!
जिस चीज को भी छिपा दो, उसमें रस पैदा हो जाता है। रस फिर बढ़ता चला जाता है! और हमने अपनी सब कुरूपताओं को छिपा लिया है। दूसरे ही नहीं उसमें रस ले रहे हैं; धीरे-धीरे हम भी उसमें रस लेने लगे हैं।
हम अपने अंधविश्वासों को भी यूं सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि जैसे उनमें परम सत्य छिपे हुए हैं।
हिंदुओं के एक बहुत बड़े महात्मा ने एक किताब लिखी है--"हिंदू-धर्म क्यों?" उसमें हिंदू-धर्म के संबंध में वैज्ञानिक आधार दिए हैं। और क्या- क्या बातें कहीं हैं कि हैरानी होती है कि बीसवीं सदी में भी ऐसी किताबें छप जाती हैं! और छोटी-मोटी किताब नहीं है। साढ़े सात सौ पन्नों की किताब है! और लिखने वाला भारी महात्मा है। और कैसे-कैसे मूढ़ महात्मा बन बैठे हैं! उसने लिखा है कि हिंदू इसलिए चोटी रखते हैं, जैसे कि बड़े-बड़े मकानों पर, चर्चों पर, मंदिरों पर लोहे की सलाख लगा देते हैं, ताकि बिजली गिरे, तो सलाख के द्वारा सीधी जमीन में चली जाए। चर्च के मकान को या मंदिर को या इमारत को कोई चोट न पहुंचे! इसीलिए हिंदू चोटी रखते हैं! और चोटी में गांठ बांध कर उसको खड़ी रखते हैं, ताकि बिजली वगैरह न गिरे! बिजली गिरे भी तो चोटी के सहारे एकदम जमीन में चली जाए!
क्या गजब के लोग हैं! कैसे-कैसे मूढ़, कैसे-कैसे मंदबुद्धि! मगर हिंदू प्रसन्न होंगे इस बात से, कि क्या गजब की बात कह दी!
खड़ाऊं इसलिए पहनते हैं हिंदू कि ये खड़ाऊं को पकड़ने में अंगूठा दबा रहता है। और अंगूठे में वह नस है, जिससे ब्रह्मचर्य सधता है! अंगूठा दबा रहेगा--ब्रह्मचर्य सध जाएगा। अगर इतना आसान हो ब्रह्मचर्य का साधना--कि

अंगूठा भर दबा रहे, तब तो बड़ी आसान बात होगी! नसबंदी करने की जरूरत नहीं। सिर्फ अंगूठे में नसबंदी कर दो। अंगूठे का ही आपरेशन कर देना चाहिए डाक्टरों को। और नस बांध दी वहां; खड़ाऊं भी पहनने की जरूरत न रही। बांध ही दी नस भीतर से, कि तुम फिर बाहर से खोलना भी चाहो, तो खोल न सको।
लेकिन हमारी मूर्खताओं को भी अगर कोई सोने की पर्त चढ़ाने की कोशिश करे, तो हम प्रसन्न होते हैं। अहा! धन्यभाग हमारे कि हिंदू घर में पैदा हुए। कैसे-कैसे ऋषि-मुनि हो गए! कैसी-कैसी चीजें खोज गए!
हिंदू साधु-संत समझाते फिरते हैं कि हवाई जहाज और एटम बम, सब... । वेद चुरा कर ले गए और वेदों में से ही सब खोज निकाला विज्ञान! वेदों में तो हर चीज है!
मैं वेद को इस कोने से लेकर उस कोने तक छान गया। हवाई जहाज और एटम बम
तो दूर--साइकिल बनाने की भी कोई विधि नहीं है! और साइकिल का पंक्चर हो जाए, तो उसको जोड़ने का भी कोई उपाय नहीं है। और बड़ा मजा यह है कि ये पश्चिम के लोग चुरा कर ले गए, जो न संस्कृत जानें, न वेद पहचानें। इन्होंने खोज लिया। और तुम पांच हजार साल से मूढ़ो, क्या कर रहे हो? बैलगाड़ी में ही चले जा रहे हो! और तुम्हारे पास हवाई जहाज बनाने की तरकीब वेद में लिखी है! तुमसे न बना हवाई जहाज?
क्या गजब के ऋषि-मुनि की संतान हो तुम भी! जिन्होंने हवाई जहाज बना लिए थे, पुष्पक विमान उड़ाते थे जो! कहानियों का भरोसा कर लेते हो--पुष्पक विमान! तो फिर कहना ही क्या है! तो फिर बंदर भी पहाड़ लेकर चलते थे। हनुमान जी पहाड़ ही ले कर उड़ रहे थे।
कल्पनाओं का भी कोई हिसाब है! कपोल-कल्पित बातों को... । मगर अगर हमारे बाप-दादों के साथ जुड़ी हैं, तो हमारा अहंकार जुड़ा होता है। हम अपने अहंकार के पोषण के लिए कुछ भी कर सकते हैं, कुछ भी कह सकते हैं।
एक मछलीमार मछली पकड़ रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन उसके पीछे खड़ा देख रहा था। पूछा कि "भई, अब तक बड़ी से बड़ी कोई मछली--तुमने कितनी बड़ी मछली पकड़ी? तुम तो जिंदगी भर से मछली मारते हो।"
उस आदमी ने कहाः "अब उसका हिसाब बताना बहुत मुश्किल है। उसकी नापजोख
भी होना बहुत मुश्किल है। जब मैंने बड़ी से बड़ी मछली पकड़ी थी, इतना ही कह सकता हूं कि पूरी झील एक फुट नीचे उतर गई थी।"
और यह वही मछलीमार है, जिसको मुल्ला अच्छी तरह से जानता है। तीन घंटे
से देख रहा है। अभी छोटी सी भी मछली पकड़ में आई नहीं है। तीन घंटे से बंसी लटकाए बैठा है!
मुल्ला भलीभांति जानता है इस मछलीमार को। क्योंकि एक दिन मुल्ला आ रहा था और यह मछलीमार, जहां बाजार में मछलियां बिकती हैं, वहां एक दुकानदार से कह रहा था, "भैया, जरा मछलियां फेंक दो। चार मछलियां फेंक दो। जो पैसे हों, ले लेना!"
दुकानदार ने कहाः "फेंक क्यों दूं! अरे, हाथ में ले लो न!"
इसने कहा कि "मैं चाहे कितना ही बदनसीब मछलीमार क्यों न होऊं, लेकिन झूठ नहीं बोल सकता। पत्नी से जाकर कह सकूंगा--मैंने पकड़ीं। तुम फेंको, मैं पकडूं। झूठ मैं नहीं बोल सकता हूं। मछली चाहे न पकड़ में आती हो, मगर बोलूंगा तो सच ही। तुम फेंक दो, मैं पकड़ लूं! कहने को बात रह जाएगी!" इसने इतनी बड़ी मछली पकड़ी थी कि पूरी झील में एक फुट नीचे उतर गया था पानी! नापजोख तो बेचारा बताए भी कैसे!
लोग जब झूठ ही बोलने पर उतारू हो जाते हैं--वह अपना झूठ होना चाहिए, अहंकार को भरने वाला--तो फिर कोई उसमें हिसाब नहीं करते।
तुम धर्म के नाम पर अंधविश्वासों का पोषण करते फिरते हो। और गुरु को
ये सारे अंधविश्वास छीनने होंगे, तभी तुम्हारे जीवन में पहली बार श्रद्धा की ज्योति जगेगी।
झूठी आंखें छोड़ो, तो असली आंखें खोजी जा सकती हैं। जब तक झूठी आंखों
को ही लगाए बैठे रहोगे, तब तक असली आंखों का अन्वेषण भी कैसे होगा! आविष्कार भी कैसे होगा?

"गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, घड़ि-घड़ि काढ़ै खोट!" प्रति पल, घड़ी-घड़ी खोट पर खोट निकालता जाता है। जितना शिष्य राजी होता है, उतनी खोटें निकालता है, "भीतर हाथ संवार दे... ।" लेकिन भीतर से सम्हालता जाता है। कुम्हार को तुमने घड़ा बनाते देखा! एक हाथ घड़े के भीतर रखता है। भीतर
से घड़े को सम्हालता है। और बाहर से ठोकर मारता है--दूसरे हाथ से। दोनों काम एक साथ करता है। जो समझदार है, वह दोनों बातों को समझ लेता है। जो नासमझ है, वह बाहर की चोट देख कर ही भाग खड़ा होता है। वह कहता है, "इतनी चोटें मैं सहने को राजी नहीं। क्यों सहूं! इन चोटों से क्या होगा?"
योगतीर्थ पर मैंने बड़ी चोट की थी। मैंने तो उनसे यही कहा था कि "तुम छोड़ ही दो संन्यास!" वह बड़ी से बड़ी चोट है। लेकिन उसको भी उन्होंने प्यारे ढंग से लिया। समझे।
कि "छोड़ ही दो संन्यास"--यूं है, जैसे तीर छाती में चुभ जाए। कोई और होता तो भाग ही खड़ा होता। लेकिन उन्होंने बात को विधायक ढंग से लिया। कोई और होता तो क्रुद्ध ही हो जाता। नाराज ही हो जाता सदा के लिए।
चूंकि इस चोट को भी प्रेम से लिया है, यह चोट उनके ऊपर फूल बन जाएगी। "भीतर हाथ संवार दे, बाहर मारे चोट!"
"आपके प्रति धन्यवाद के भाव से भर गया हूं। अनंत अनंत धन्यवाद!" शिष्य ऐसे ही लेता है। शिष्य चोट को चोट नहीं मानता। शिष्य चोट को आशीष ही मानता है। वही तो भेद है--विद्यार्थी और शिष्य में।
विद्यार्थी को चोट नहीं की जा सकती। उसको चोट की कि वह भाग ही जाएगा। शिष्य को चोट की जा सकती है। और जितना ही शिष्य गहन हो, उतनी ही गहरी चोट की जा सकती है। इसलिए यह बेबूझ घटना घटेगी कि गुरु उस शिष्य को सबसे ज्यादा मारेगा--पीटेगा, जिसमें सबसे ज्यादा संभावना है।
रवींद्रनाथ ने अपनी जीवन-कथा में एक उल्लेख किया है। उनके चाचा थे अवनींद्रनाथ ठाकुर। वे भारत के महानतम चित्रकारों में एक थे। पूरे भारत के इतिहास में जो थोड़े से महान चित्रकार हुए हैं, उनमें अवनींद्रनाथ ठाकुर का नाम भी जोड़ना पड़ेगा। अवनींद्रनाथ ठाकुर के शिष्य थे--नंदलाल बसु। वे भी बाद में, अवनींद्रनाथ ठाकुर से भी बड़े चित्रकार साबित हुए।
एक दिन रवींद्रनाथ अपने चाचा के पास बैठे गपशप कर रहे थे। सुबह-सुबह चाय पीकर दोनों बैठे गपशप कर रहे थे। तभी नंदलाल, युवा थे, कृष्ण का एक चित्र बना कर लाए। रवींद्रनाथ ने लिखा है, "मैंने इतना सुंदर चित्र कृष्ण का कभी देखा नहीं!" रवींद्रनाथ खुद भी चित्रकार थे। कवि के साथ-साथ उतने ही बड़े चित्रकार भी थे। और अवनींद्रनाथ तो कहना ही क्या! ...
रवींद्रनाथ का हृदय धक से रह गया। इतना प्यारा चित्र था कृष्ण का, जैसे अब बांसुरी बजी--अब बांसुरी बजी! जैसे अब कृष्ण नाचे--अब कृष्ण नाचे! इतना सजीव था। विस्मय विमुग्ध होकर देखते रह गए।
और अवनींद्रनाथ ने चित्र को देखा, लिया हाथ में और दरवाजे के बाहर फेंक दिया। और नंदलाल से कहाः "यह कुछ मुझे दिखाने योग्य चित्र है? कुछ सोच-समझ कर लाया कर। जब कोई चीज बताने योग्य हो, तो लाया कर। इससे अच्छे चित्र तो बंगाल के पटिये बना लेते हैं!"
बंगाल में पटिये होते हैं, जो कृष्णपट बनाते हैं--कृष्णाष्टमी के, जन्माष्टमी के अवसर पर। दो-दो पैसे में बेचते हैं। वे सबसे गरीब चित्रकार होते हैं। उनका काम ही कुल इतना होता है कि कृष्ण का किसी भी तरह चित्र बना देना, ताकि गांव के गरीब दो-दो पैसे में खरीद कर उसकी पूजा कर लें! उससे बड़ी कोई निंदा की बात नहीं हो सकती।
अवनींद्रनाथ ठाकुर का यह कहना नंदलाल को कि "तुझसे तो बंगाल के पटिये अच्छे। वे भी चित्र अच्छा बना लेते हैं कृष्ण का! यह क्या चित्र तू लेकर आया है। भाग यहां से।"
रवींद्रनाथ को तो बहुत धक्का लगा। भूल ही गए कि मेरे चाचा हैं। वृद्ध हैं। और मुझे इस तरह की बात उनसे नहीं कहनी चाहिए। नंदलाल तो चला गया, रवींद्रनाथ टूट पड़े चाचा पर कि "यह हद्द हो गई! मैंने बहुत चित्र देखे हैं। आपके भी चित्र देखे हैं, जो आपने कृष्ण के बनाए हैं। वे भी इसके मुकाबले नहीं हैं।"

अवनींद्रनाथ ने कहाः "शांत हो। और मेरी आंखों की तरफ देख। आंख से आंसू गिर रहे थे अवनींद्रनाथ के!"
रवींद्रनाथ तो और भी भौचक्के हुए कि मामला क्या है! माजरा क्या है! कहा कि "बात क्या है? आप रो क्यों रहे हैं?"
कहा, "रो इसलिए रहा हूं कि नंदलाल के साथ मुझे बहुत कठोर होना पड़ रहा है। इसकी संभावना मुझसे बड़े चित्रकार होने की है। तू ठीक कहता है। मेरे चित्रों से उसका चित्र ज्यादा बेहतर है। लेकिन अभी इसमें और भी पड़ा है। अगर मैं इस पर चोट किए जाऊं, तो अभी इसमें और भी संभावना है। अभी इसकी पूरी संभावना वास्तविक नहीं बनी है। जिस दिन मैं कह दूंगा--प्रशंसा के दो शब्द-- वहीं ठहर जाएगा यह। उससे आगे न बढ़ सकेगा। सोचेगा--बात पूरी हो गई। जब गुरु ने प्रशंसा कर दी, तो अब और क्या बचा! जब अवनींद्रनाथ ने कह दिया, तो अब और क्या बचा!"
अवनींद्रनाथ उठे। जो चित्र फेंक दिया था, वह उठाकर वापस लाए। और कहा
कि "चित्र अदभुत है। मगर अभी और भी नंदलाल में पड़ा है। अभी मैं न कहूंगा कि अदभुत है। उसके सामने तो न कहूंगा। अभी तो उस पर और चोटें करनी हैं। अभी इसका जल और भी निखर सकता है। अभी इसमें और गहराई आएगी! अभी इसमें और ऊंचाई आएगी।"
और अजीब बात यह हुई कि नंदलाल अपने दरवाजे पर ताला लगा कर, जिस छोटे से झोपड़े में रहते थे, तीन साल के लिए नदारद हो गए! रवींद्रनाथ ने बार-बार अवनींद्रनाथ को कहा कि "अब कहो! क्या यह चोट मारने जैसी थी? उसका दिल ही तोड़ दिया!"
अवनींद्रनाथ ने कहाः "तुम ठहरो। वह लौटेगा। वह शिष्य है--विद्यार्थी नहीं। लौटेगा। निश्चित लौटेगा!"
और तीन साल बाद नंदलाल लौटे। उनकी हालत बंगाल के पटियों जैसी हो रही थी--बिल्कुल गरीब! कपड़े फट गए थे। वे ही कपड़े थे जो वे तीन साल पहले पहने थे। और आकर अवनींद्रनाथ के चरणों पर गिर पड़े और कहा कि "आपने बड़ी कृपा की, जो उस दिन मेरे चित्र को उठा कर फेंक दिया। बंगाल के गांव-गांव में गया। जहां भी किसी पटिये की खबर सुनी, उससे जाकर सीखा, कि जब गुरु ने कहा है कि पटिये भी तुमसे अच्छा चित्र बना लेते हैं--तो जरूर बना लेते होंगे। और इन तीन सालों में इतना जाना, इतना जीया, इतने अनुभव हुए! आपने क्या चोट मारी कि गदगद हो गया हूं!"
अवनींद्रनाथ ने छाती से लगा लिया और कहा कि "अब तुझसे सच बात कह सकता हूं। वह चित्र सुंदर था। देख! भीतर देख! तेरा चित्र मेरी दीवाल पर टंगा है। जहां मेरा चित्र कृष्ण का टंगा था, वह मैंने अलग कर दिया है। वहां तेरा चित्र टांग दिया है। तेरा चित्र मेरे चित्रों से ज्यादा सुंदर है। लेकिन एक बार आखिरी चोट मारनी थी। अब मैं देख सकता हूं तेरी आंखों में; अब मैं देख सकता हूं तेरे आसपास की आभा में--वह घटना घट गई, जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था। अब मैं निश्चिंत मर सकता हूं कि मैंने कम से कम एक चित्रकार को जन्म दे दिया है। इतना बहुत। तू मेरी धारा को आगे बढ़ा सकेगा। तू मेरा भविष्य है। तेरे ऊपर सब निर्भर है। यह जो मैंने कला को एक नया मोड़ दिया है, तू उसका वसीयतदार हुआ।"
तब रवींद्रनाथ समझे कि गुरु चोट करता है, तो किसलिए चोट करता है। योगतीर्थ! तुम धन्यभागी हो। ऐसे ही समझते चले, तो निखार आएगा--बहुत निखार आएगा। नहीं तो हम तिलमिला जाते हैं। हम बड़े जल्दी तिलमिला जाते हैं।
संत ने कल ही मुझे खबर की कि "परसों आप बोले, तो मेरे पिता गदगद हो गए।
उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे। और कल आप बोले, तो वे बड़े गुस्से में आ गए। बड़े क्रोधित हो गए। एकदम तिलमिला गए!"
मैं जानता था, यह होने वाला है। परसों भीतर से सहारा दिया था। कल बाहर
से चोट मारी।
गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है घड़ि-घड़ि काढ़ै खोट
भीतर हाथ संवार दे बाहर मारै चोट!

मगर वे नये-नये हैं। पहली बार यहां आए हैं। उनको क्या पता कि यहां क्या चल रहा है। रुक जाएंगे थोड़े दिन, तो साफ हो जाएगी बात कि क्या चल रहा है। वही चल रहा है, जो नानक के पास चल रहा था। वही चल रहा है, जो कबीर के पास चल रहा था।
जीवित गुरु के पास होना आग के पास होना है। जलाएगी भी, जगाएगी भी। जो-
जो व्यर्थ है, जल जाएगा। जो-जो असार है, राख हो जाएगा। और जो-जो सार है, निखर कर प्रकट होगा। सोना जब तक आग से न गुजरे, कुंदन नहीं बनता है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, आपके आश्रम में सूफी नृत्य में "श्री राम, जय राम,
जय जय राम" की धुन गाई जाती है। यह कैसा सूफी नृत्य है?

मेलाराम असरानी! मैं समझा तुम्हारी अड़चन, तुम्हारी उलझन। तुम सोचते होओगे कि सूफी नृत्य का कोई संबंध है इसलाम से; सूफी नृत्य का कोई संबंध है मुसलमान से। वहां तुम्हारी भ्रांति है।
सूफी मुसलमानों में हुए, हिंदुओं में हुए, ईसाइयों में हुए, सिक्खों में हुए, बौद्धों में हुए। सूफी तो एक खास रंग का नाम है। सूफी तो एक खास ढंग का नाम है। सूफी का इस्लाम से कोई गठबंधन नहीं।
"सूफी" शब्द बनता है "सफा" से। उसी सफा से जिससे "सफाई" शब्द बनता है। सूफी होने का अर्थ है--साफ-सुथरा हो जाना। सफा! नहाए हुए, धोए हुए! सद्यःस्नात। ताजे। स्वच्छ। शुभ्र। स्वस्थ। ज्यूं था त्यूं ठहराया!
सूफी मुसलमानों में हुए, लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि सूफियों की सीमा मुसलमान की सीमा है। सूफियों की कोई सीमा नहीं है। मैं तो महावीर को भी सूफी कहूंगा। और नानक को भी सूफी कहूंगा। और तुम चकित होओगे कि मैं तो मोहम्मद को सूफी कहता हूं। मोहम्मद तो बाद में आए; सूफी होना तो सदा से रहा।
सूफियों की परंपरा तो अनंत है। अलग-अलग रंगों में, अलग-अलग ढंगों में, अलग-अलग देशों में, अलग-अलग शब्दों में वह परंपरा उघड़ती रही। जीसस भी सूफी हैं--और मूसा भी।
सूफी होने का अर्थ स्वच्छ होना है। लेकिन हम तो धर्मों में बांधने के आदी हो जाते हैं। जैसे कोई योग साधता है, तो हम सोचते हैं--हिंदू होना चाहिए। अब योग का हिंदू होने से क्या संबंध? मुसलमान योग साध सकता है। ईसाई योग साध सकता है। जैन योग साध सकता है। बौद्ध योग साध सकता है।
योग का कोई संबंध हिंदुओं से नहीं है। यह केवल आकस्मिक है कि योग की परंपरा का सूत्रपात हिंदुओं में हुआ। और यह भी आकस्मिक है कि सूफियों की बड़ी धारा इसलाम में बही। मगर छींटे तो सारे जगत में फैल गए।
लेकिन हमारी आदतें दायरों में सोचने की हैं। और हम हर चीज का दायरा बना देते हैं, इससे मुश्किल खड़ी हो जाती है। इससे हमने धर्म को भी भ्रष्ट कर लिया है। कुछ तो बचने दो, जिसकी कोई सीमा न हो।
यह मेरा कम्यून, न तो हिंदू है, न मुसलमान है; न ईसाई है, न सिक्ख है; न जैन है, न बौद्ध है। और एक अर्थ में यह सभी है--एक साथ है। यहां एक समन्वय घटित हो रहा है। इसलिए यहां सूफी नृत्य में कोई अड़चन नहीं है--"श्री राम, जय राम, जय जय राम" की धुन गाई जा सकती है; कोई अड़चन नहीं है। फर्क ही क्या पड़ता है--तुम अल्लाह कहो कि राम कहो।
सूफी का अर्थ हैः तुम स्वच्छ हो जाओ। अब गंगा में नहा कर स्वच्छ हुए,
कि नर्मदा में नहा कर स्वच्छ हुए, कि अमेजान में नहा कर स्वच्छ हुए--क्या फर्क पड़ता है! कौन नदी थी, कौन घाट था--स्वच्छ हो जाओ--तुम सूफी हो गए। ये मेरे सारे संन्यासी सूफी हैं। हालांकि सूफी फकीर जो इसलाम की धारा में पैदा हुए हैं, हरे वस्त्र पहनते हैं। मेरे संन्यासी गैरिक वस्त्र पहनते हैं। मगर इससे क्या फर्क पड़ जाएगा! क्या हृदय का कुछ भेद हो जाएगा! कुछ अंतर नहीं पड़ता। लेकिन हम खिलौनों में उलझ गए हैं। हम छोटी-छोटी बातों में उलझ गए हैं।
देखते ही देखते कितने बदल जाते हैं लोग,
हर कदम पर एक नये सांचे में ढल जाते हैं लोग,

कीजिए किस के लिए गुम गुश्ता जन्नत की तलाश?
जब कि माटी के खिलौने से बहल जाते हैं लोग।
माटी के खिलौनों से! कोई मूर्ति को पूज रहा है--फंस गया। पूजा मूल्यवान न रही; मूर्ति मूल्यवान हो गई। और जब मूर्ति मूल्यवान हो जाती है, तो स्वभावतः मस्जिद मंदिर नहीं हो सकती। और अगर पूजा मूल्यवान हो, तो फिर मस्जिद में भी हो सकती है, मंदिर में भी हो सकती है। फिर कुछ अड़चन नहीं है। झुकना मूल्यवान है। अमूर्त के सामने झुको मूर्त के सामने झुको--कोई फर्क नहीं पड़ता। मगर हमारे जाल बहुत हैं!
मैं अमृतसर में मेहमान था। स्वर्णमंदिर के ट्रस्टियों ने मुझे निमंत्रण दिया कि मैं अमृतसर आया हूं, तो स्वर्णमंदिर जरूर आऊं। मैं गया। जब मंदिर में प्रवेश कर रहा था, तो मैंने देखा कि सारे ट्रस्टी मुझे बड़े प्रेम से स्वागत करने आए थे; वे जरा बेचैन हैं। कुछ मेरी समझ में न आया। मैंने पूछाः "बेचैनी का कारण क्या है?"
उन्होंने कहाः "आपसे कहें, अच्छा नहीं मालूम होता। न कहें, तो भी मुश्किल है!"
मैंने कहाः "तुम कह ही दो। अच्छे-बुरे की फिकर छोड़ो। मैं फिकर ही नहीं करता--अच्छे बुरे की। तुम कह दो। मगर बेचैनी नहीं रखनी चाहिए।"
उन्होंने कहा कि "मजबूरी है। क्षमा करें। लेकिन आप नंगे सिर स्वर्णमंदिर में न जा सकेंगे। हमने आप को निमंत्रण दिया, अब मेहमान को हम क्या कहें! कम से कम टोपी लगा लें। टोपी न लगाएं, तो"... एक मित्र ने जल्दी से रूमाल निकाल कर कहा कि "रूमाल ही बांध लें।"
मैंने कहाः "जैसी तुम्हारी मर्जी। रूमाल बांध दो। अब मैं आ गया हूं,
तो लौट कर जाऊं, तो तुम दुखी होओगे। बांध दो तुम रूमाल। मैं रूमाल बांध कर ही मंदिर में आ जाता हूं। अब आ ही गया हूं, तो तुम्हारी यह शर्त भी मान लूंगा। लेकिन क्या तुम सोचते हो--सिर पर पगड़ी रख लेने से या रूमाल बांध लेने से सम्मान हो जाएगा! क्या सम्मान और अपमान इतनी थोथी बातें हैं? इतनी सरलता से हल हो सकती हैं?" लेकिन "माटी के खिलौने से बहल जाते हैं लोग!" मैंने रूमाल रख लिया सिर पर, वे बड़े प्रसन्न हो गए, बड़े आनंदित हो गए। बड़े परेशान थे। अपमान हुआ जा रहा है!
फिर जब मुझे अंदर ले चले, तो उनमें से एक ने कहा कि "आप जान कर खुश होंगे कि हमारे यहां हिंदू-मुसलमान का कोई भेद नहीं। हिंदू भी आ सकते हैं, मुसलमान भी आ सकते हैं।"
मैंने कहाः "तुम छोड़ो यह बकवास। बिना टोपी लगाए नहीं आ सकता है, और तुम हिंदू-मुसलमान की बातें कर रहे हो! और जब तुम कहते हो कि--हमारे यहां हिंदू-मुसलमान का कोई भेद नहीं--तो यह बात ही क्यों कर रहे हो कि हिंदू भी आ सकते हैं; मुसलमान भी आ सकते हैं! भेद तो हो गया। नहीं तो कौन हिंदू! कौन मुसलमान! कैसा हिंदू--कैसा मुसलमान! तुमने भेद तो कर ही लिया।"
नानक को भेद नहीं था। तो वे मक्का भी चले गए थे। काबा भी चले गए थे। और जरा सोचो, नानक को और उनकी परंपरा में आए हुए स्वर्णमंदिर के इन रक्षकों को--कितना भेद है!
नानक पैर करके सो गए थे काबा के पत्थर की तरफ। स्वभावतः इसी तरह के पुजारी रहे होंगे, जिस तरह के ये पुजारी थे। उनको बड़ी बेचैनी हो गई। काबा के पुजारी! और कोई आदमी आकर काबा के पत्थर की तरफ पैर करके सो जाए! अपमान हुआ जा रहा है! जैसा कि मेरा बिना टोपी लगाए प्रवेश करने से अपमान होता है, तो पैर रखने से तो हो ही जाएगा। पैर अगर तुम मूर्ति की तरफ कर के लेटोगे या मंदिर की तरफ करके लेटोगे या काबा के पत्थर की तरफ करके लेटोगे, तो स्वभावतः... ।
मैंने उनसे कहाः "तुम थोड़ा सोचो, तुम नानक को मानने वाले लोग हो। मैंने सिर्फ टोपी नहीं लगाई है। और सच यह है कि कोई बच्चा टोपी लगाए पैदा होता नहीं। अब तक सुना नहीं। सो परमात्मा बिना ही टोपी लगाए भेजता है। टोपी वगैरह लगाना सब हमारे खिलौने हैं। तुम महावीर को तो अंदर ही न घुसने देते। वे तो नंगधड़ंग आते। मैं तो कम से कम कपड़े पहने हूं! और महावीर रूमाल भी नहीं बांधते--यह भी मैं तुमसे कहे दे रहा हूं। क्योंकि जो आदमी नंगा खड़ा

हो, वह रूमाल बांधे--जंचेगा नहीं। वह तो ऐसा हुआ, जैसे नंगा आदमी टाई बांधे!" यह बिल्कुल ही बेहूदी बात हो जाएगी--कि जब नंगे ही खड़े हो, तो टोपी किसलिए लगाए हो! वह तो यूं बात हो जाएगी--
एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन के घर कोई मिलने आ गया, एक दंपति। दरवाजा खटखटाया, तो मुल्ला ने जरा सा दरवाजा खोल कर देखा। मगर उतने में उन लोगों ने भी देख लिया--बिल्कुल नंग-धड़ंग! मगर टोपी लगाए हुए! अब एकदम लौट भी नहीं सकते थे वे लोग। और मुल्ला को भी तो कहना ही पड़ा कि "आइए-आइए; पधारिए-पधारिए!" तो बेचारे अंदर आ गए।
पत्नी किसी तरह अपने पति के पीछे छिपी हुई खड़ी, कि अब यह करना क्या है! मुल्ला बोलाः "बैठिए-बैठिए!" अब एक ही कुर्सी पर पति-पत्नी कैसे बैठें! और पत्नी को लग रहा बड़ा संकोच कि यह आदमी नंगा खड़ा है। आखिर पति से भी न रहा गया। पति ने कहा कि "आप नंगे क्यों हैं? क्या बात है?"
तो मुल्ला ने कहाः "सच बात यह है कि इस समय मुझसे कोई मिलने कभी आता ही नहीं। गरमी के दिन हैं और पसीने से तरबतर होने में सार क्या! और अपना घर। अपने ही घर में नंगा न हो सकूं, तो फिर अपना घर क्या! कोई बाजार में तो नंगा नहीं हूं। दरवाजा बंद कर के नंगा हूं।"
तब फिर पत्नी से न रहा गया। पत्नी ने भी जरा मुंह बगल से निकाल कर पूछा, "और सब तो ठीक है। चलो नंगे हो, क्योंकि गर्मी है। मगर टोपी किसलिए लगाए हो?"
तो मुल्ला ने कहाः "अरे, कभी कोई भूलचूक से आ जाए, जैसे आप आ गए, तो कम
से कम टोपी तो लगाए रहूं!"
अब महावीर पर तुम टोपी रख देते, या रूमाल बांध देते, तो ऐसा ही लगता! बिल्कुल गड़बड़ लगता मामला! और महावीर तो रखने भी नहीं देते।
मैं तो इस अर्थ में सरल आदमी हूं। चलो, टोपी, तो टोपी रख ली। कोई बात नहीं। चलो, रूमाल बांधा, तो रूमाल बांध लिया। मगर अगर तुम बिना रूमाल के मुझे स्वर्णमंदिर में नहीं जाने दे सकते, तो तुम फिर उन पुजारियों के संबंध में क्या कहोगे, जिन्होंने नानक से कहा कि "आप पैर करके सो रहे हैं काबा के पवित्र पत्थर की तरफ। शर्म नहीं आती! संत होकर, साधु होकर, फकीर होकर... !"
तुम भी वही कर रहे हो। और मैंने कोई इतना बड़ा कसूर नहीं किया। नानक का कसूर बड़ा था।
लेकिन नानक ने क्या कहा उन पुजारियों से कि "फिर तुम मेरे पैर उस तरफ
कर दो, जहां परमात्मा न हो। मैं तो सभी जगह परमात्मा को देखता हूं। कहीं तो पैर कर के सोऊंगा! क्योंकि वह सभी जगह है, इसलिए अब उसका अपमान-सम्मान क्या! और पैर में भी वही है; चारों तरफ भी वही है। मुझमें भी वही है, और तुममें भी वही है। तो कहीं तो पैर कर के सोऊंगा! जमीन पर भी पैर रख कर चलूंगा, तो वह भी परमात्मा ही है। उस पर भी पैर रखना परमात्मा पर ही पैर रखना है।"
उनसे उत्तर न देते बन पड़ा। चुपचाप खड़े रह गए।
मैंने कहाः "थोड़ा सोचना। मैं नानक के साथ हूं या तुम नानक के साथ हो। अगर मैं अंदर जा कर तुम्हारे गुरु-ग्रंथ साहब के प्रति पैर कर के लेट जाऊं, तो तुम क्या करोगे? तुम तो बिल्कुल पागल हो जाओगे। तुम तो एकदम दीवाने हो उठोगे कि अपमान हो गया। तुम तो सिर पर भी रूमाल रख कर प्रसन्न हो रहे हो!" माटी के खिलौने से बहल जाते हैं लोग!
मेलाराम असरानी! यही तुम्हारी तकलीफ है। तुम पूछते होः "सूफी नृत्य में श्री राम, जय राम, जय जय राम की धुन गाई जाती है। यह कैसा सूफी नृत्य है?"
यहां जोर नृत्य पर है। अगर नृत्य में नर्तक खो जाए, तो नृत्य सूफी नृत्य हो जाता है। फिर से दोहरा दूंः अगर नृत्य में नर्तक खो जाए, डूब जाए, तल्लीन हो जाए--नृत्य ही बचे, नर्तक न बचे; गीत में गायक खो जाए, गायक न बचे--गीत ही बचे। बस, स्वच्छता आ गई। एकदम बरस जाती है स्वच्छता। अमृत की धार बरस उठती है।

इसलिए उसको सूफी नृत्य कहते हैं, क्योंकि यह सफा कर देता है, सफाई कर देता है। एकदम कचरे को धो देता है।
अब किस बहाने तुम करते हो--चाहो, अल्लाहू का उदघोष करो; और चाहे जय राम श्री राम का। यह हिंदी अनुवाद है और कुछ भी नहीं। यह अल्लाह का हिंदी अनुवाद है।
थोड़ा आंखें ऊपर उठाओ और आकाश की तरफ देखो। जमीन को खंड-खंड में बांट लिया हमने। आदमी को खंड-खंड में बांट लिया। जरा अखंड आकाश को देखो। सितारों से आगे जहां और भी हैं।
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं।।
अभी तुमने प्रेम जाना है, मगर बड़ा सीमा में बंधा हुआ, डबरे की तरह। और जहां डबरा है, वहां सड़ांध है। हिंदू का डबरा हो कि मुसलमान का डबरा हो; सिक्ख का कि जैन का--जहां डबरा है, वहां सड़ांध है। जहां सीमा है, वहां सड़ांध है।
सीमा से थोड़ा ऊपर उठो। यहां सब सीमाएं तोड़ी जा रही हैं। यहां सीमाओं
को विसर्जित किया जा रहा है। यहां हम गणेश जी वगैरह को विसर्जित नहीं करते; सीमाओं को विसर्जित करते हैं!
सितारों से आगे जहां और भी हैं।
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं।।
तही जिंदगी से नहीं ये फिजाएं।
यहां सैकड़ों कारवां और भी हैं।।
कनायत न कर आलमे-रंगो-बू पर।
चमन और भी आशियां और भी हैं।।
अगर खो गया एक नशेमन तो क्या गम।
मुकामाते-आहो-फुगा और भी हैं।।
तू शाहीं है परवाज है काम तेरा।
तेरे सामने आस्मां और भी हैं।।
इसी रोज-ओ-शब में उलझ कर न रह जा।
कि तेरे जमान-और-मकां और भी हैं।।
गए दिन कि तन्हा था मैं अंजुमन में।
यहां अब मेरे राजदां और भी हैं।।
थोड़ा सीमाओं के पार देखो--सितारों के पार--वहां सब एक है।
जब पहला अमरीकी चांद पर पहुंचा तो तुम्हें पता है, उसे क्या भाव उठा!
जब उसने पृथ्वी की तरफ देखा, तो चांद से पृथ्वी वैसी ही चमकती है, जैसा पृथ्वी से चांद चमकता है। चमकती हुई पृथ्वी देखी! और उसके मन में एक ही भाव उठा--"मेरी पृथ्वी!" यह भाव न उठा--"मेरा अमेरिका!" उस फासले से कहां अमेरिका। "मेरी पृथ्वी"--उस पृथ्वी में रूस भी सम्मिलित था; चीन भी सम्मिलित था। उस पृथ्वी में भारत भी सम्मिलित था। वहां कोई नक्शा नहीं था बंटा हुआ। पृथ्वी वहां एक थी। और इतनी प्यारी थी! सोचा भी न था कि चांद जैसी चमकती होगी।
पृथ्वी भी उतनी ही चमकती है, जितना चांद चमकता है। चांद पर पहुंच गए,
तो चांद नहीं चमकता फिर। फिर चांद पृथ्वी जैसा मालूम होता है। क्योंकि चांद की कोई अपनी किरणें नहीं हैं। सूरज की किरणें चांद पर पड़ कर लौटती हैं, प्रतिफलित होती हैं, इसलिए चमक आती है। जैसे दर्पण में से किरणें लौट जाती हैं। दर्पण की नहीं होतीं, आती तो दीये से हैं। लेकिन दीये से पड़ कर फिर लौट जाती हैं। दर्पण उन्हें लौटा देता है। ऐसी ही किरणें पृथ्वी से भी लौटती हैं।
चांद पर खड़े होओगे, तो पृथ्वी भी इतनी ज्वाजल्यमान, जैसे एक बड़ा हीरा चमकता हो! चांद से बड़ी है पृथ्वी--बहुत बड़ी है। तो बहुत बड़ा चांद! और उसके मन में एक ही भाव उठा--"मेरी पृथ्वी! मेरी प्यारी पृथ्वी!"
अगर धार्मिक व्यक्ति को इतना भी बोध न हो, तो क्या उसे खाक धार्मिक कहो! चांद पर जाने की जरूरत नहीं है।
इस्लाम भी मेरा है। ईसाइयत भी मेरी है। हिंदू भी मेरा है। जैन भी मेरा है। सिक्ख भी मेरा है। सब मेरे हैं। मेरा धर्म! "एस धम्मो सनंतनो"--बुद्ध

कहते हैं--यह जो सनातन धर्म है--ये सब उसकी शाखाएं समझो। उसी के पत्ते समझो।,
राम कहो कि रहीम कहो--सवाल यह नहीं कि तुमने क्या कहा। सवाल यह है कि कहते वक्त तुम किस लोक में प्रवेश कर गए! अगर यह राम, यह अल्लाह तुम्हें सितारों के आगे ले जाए, तो सूफी हो गए।
सितारों से आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं।
मेलाराम असरानी! अभी प्रेम की कुछ और परीक्षाएं देनी होंगी। तुम तो सुन कर ही चिंता में पड़ गए कि यह कैसा सूफी नृत्य! यही सूफी नृत्य है। ऐसा ही होता है सूफी नृत्य। तुम शब्द में ही उलझ गए। तुमने ये नाचते हुए लोग न देखे, जो मस्त थे, लीन थे। तुमने उनकी मस्ती न देखी, उनकी बेखुदी न देखी। तुम इसी चिंता में पड़ गए कि सूफी नृत्य--और "श्री राम, जय राम, जय जय राम" का उदघोष! तालमेल नहीं बैठता! मंदिर में जैसे कोई कुरान की आयत उठ रही हो! मगर सौभाग्य होगा वह दिन, जिस दिन मंदिरों में कुरान की आयतें उठेंगी, और मस्जिदों में गीता का उदघोष होगा। उस दिन पृथ्वी सच में ही धन्यभागी होगी।
अभी तो मंदिर मस्जिद की गर्दन काटने को तैयार है। मस्जिद मंदिर को राख करने को तैयार है। ये धार्मिक लोग हैं! अभी गीता कुरान को जलाने में उत्सुक है। कुरान गीता को मिटाने में उत्सुक हैं! ये धार्मिक लोग हैं? धर्म तो एक है, और एक ही हो सकता है। क्योंकि सत्य एक है। लेकिन ये राजनीतियां हैं, जिनने तुम्हें बांट रखा है।
ये सारे कारवां उसी की तरफ जा रहे हैं--उसी एक की तरफ। रास्ते थोड़े अलग
भी हों, वाहन अलग भी हों, मंजिल एक है।
तही जिंदगी से नहीं ये फिजाएं।
यहां सैकड़ों कारवां और भी हैं।।
कनायत न कर आलमे-रंगों-बू पर।
चमन और भी आशियां और भी हैं।।
थोड़ी आंखें खोल कर देखो। यह बगिया--तुम्हारी ही बगिया अकेली बगिया नहीं है। और भी बगियाएं हैं, जहां और भी फूल खिले हैं। अंधे मत हो जाओ। जिसने गीता को समझा, अगर कुरान को न समझ पाए, तो समझना--उसने गीता को नहीं समझा। वह परीक्षा में असफल हो गया। वह प्रेम की परीक्षा में उत्तीर्ण न हुआ। और जिसने कुरान को समझा, अगर उपनिषद को न समझे, तो समझना कि कुरान को भी नहीं समझा। क्या खाक कुरान को समझा!
भाषाएं अलग थीं, इशारे अलग थे, अंगुलियां अलग थीं। चांद तो एक ही है-- जिसकी तरफ अंगुलियां उठी हैं। हजारों अंगुलियां उठी हैं। बुद्ध की, महावीर की, कबीर की, नानक की, मोहम्मद की, जीसस की, जरथुस्त्र की।
अगर खो गया एक, नशेमन तो क्या गम
मुकामाते-आहो-फुगा और भी हैं!
जिस दिन ये सारे घर तुम्हारे होंगे, ये सारे मंदिर-मस्जिदें, गुरुद्वारे-गिरजे तुम्हारे होंगे--क्या फर्क पड़ता है, एक मंदिर गिर भी गया, तो मस्जिद में नमाज पढ़ लेना। मंदिर में पूजा कर लेना। क्या फर्क पड़ता है--एक मस्जिद जल भी गई, तो मंदिर में नमाज पढ़ लेना, तो मंदिर में पूजा कर लेना।
धार्मिक व्यक्ति भी अगर संकीर्ण हो, तो फिर धार्मिक अधार्मिक में भेद क्या है? एक ही भेद हो सकता हैः संकीर्णता गिर जाए, भेदभाव गिर जाए।
"तू शाहीं है परवाज है काम तेरा।" तुम बाज पक्षी हो, उड़ानें भरना ऊंचे आकाश में तुम्हारा काम है। बाज पक्षी होकर और जमीन पर घसिट रहे हो--कीड़े- मकोड़ों की तरह!
तू शाहीं है परवाज है काम तेरा।
तेरे सामने आस्मां और भी हैं।।
उड़ो। और जितने ऊंचे जाओगे, उतनी और नई ऊंचाइयों के द्वार खुल जाएंगे।
इसी रोज-ओ-शब में उलझ कर न रह जा।
कि तेरे जमान-और-मकां और भी हैं।।

इन्हीं छोटी-छोटी बातों में मत उलझाओ अपने को। ये दिन और रात, और यह रोज का क्रियाकांड--इसी में मत भूले रहो।
इसी रोज-ओ-शब में उलझ कर न रह जा।
कि तेरे जमान-ओ-मकां और भी हैं।।
और भी समय है, और भी स्थान हैं, और भी आकाश हैं, और भी बहुत कुछ शेष है।
खोजो--तो खोज अंतहीन है।
गए दिन कि तन्हा था मैं अंजुमन में।
यहां अब मेरे राजदां और भी हैं।।
यहां मित्र ही मित्र हैं; यहां शत्रु कोई भी नहीं है।
"यहां मिरे राजदां और भी हैं।" यहां औरों ने भी भेद पाया है। किसी ने ठेका नहीं ले लिया है परमात्मा का। किसी नाम में, किसी शास्त्र में परमात्मा समाप्त नहीं हो गया है। धर्म आते रहे, जाते रहे। धर्म और भी आएंगे जाएंगे। मगर जो शाश्वत सत्य है, वह तो सदा थिर है। कितने धर्म आए और गए। वे सिर्फ छायाएं थीं, प्रतिबिंब थे। शब्दों में शून्य की बनाई गई आकृतियां थीं, इशारे थे। अंगुलियां उठती रहीं, गिरती रहीं--चांद अपनी जगह है।
महावीर आए, बुद्ध आए, जरथुस्त्र आए, लाओत्सु आए, मीरा आई, सहजो आई, चैतन्य आए। आते रहे लोग, जगाते रहे लोग, मगर जिसकी तरफ जगाते हैं--वह एक है। और उस एक के प्रति जाग जाओ, तो फिर चाहो अपने को योगी कहना--। योग का मतलब होता है--जुड़ जाना। योग का अर्थ होता है--जोड़। जो परमात्मा से जुड़ गया, वह योगी।
फिर चाहे सूफी कहो। सूफी का अर्थ होता है--जो स्वच्छ हो गया, जिसके मन
का सारा मैल धुल गया--वह सूफी। फिर तुम्हारी जो मौज हो, नाम दे लेना। नाम से कुछ फर्क नहीं पड़ता। कब तक बच्चों जैसे उलझे रहोगे--माटी के खिलौनों से! माटी के खिलौनों से बहल जाते हैं लोग!
जागो। थोड़ा देखो विस्तार। संकीर्णताओं को रोज-रोज तोड़ते चलो। कितनी
ही पीड़ा हो, मगर संकीर्णताएं तोड़नी हैं, तभी तुम जान सकोगे जीवन का परम सत्य। उसे जाने बिना कोई मुक्ति नहीं है, कोई मोक्ष नहीं है।
सुना है कि एक पैगंबर इस्माइल-अलैहि-सलाम भोजन करते समय किसी न किसी
को अपने साथ बिठा कर भोजन करवाते थे। कभी अकेले नहीं खाते थे। एक दिन वे खाना खाने बैठे। दस्तरखान सजाया। लेकिन साथ खाने के लिए कोई न था। इंतजार करते रहे। और तभी उनकी नजर एक सत्तर वर्ष के बूढ़े पर पड़ी। खुशी से दौड़े। उसे बुलाया। वजू करवाया। वजू कर के जब खाना खाने बैठे, तो उस बूढ़े ने बिस्मिल्लाह कहे बिना ही खाना शुरू कर दिया।
इन पैगंबर ने उसके हाथ को रोक दिया, मुंह में कौर जाने से पहले ही। कहने लगे, "बिस्मिल्लाह किए बगैर खाने नहीं दूंगा। अल्लाह का नाम ले कर शुरू करो।"
लेकिन उस बूढ़े ने इनकार कर दिया बिस्मिल्लाह करने से। वह बोला, "मैं
तो आतिश परस्त, अग्नि-पूजक पारसी हूं। मैं नहीं मानता इसलाम को। इसलिए आप चाहें, तो खिलाएं, न खिलाएं। मैं बिस्मिल्लाह नहीं बोलूंगा!"
तभी आकाश से एक आयत (वहय) नाजिल हुई कि "ऐ पैगंबर, इस आदमी को हम सत्तर वर्ष से खाना दे रहे हैं। हमने इसे कभी नहीं कहा कि हमारा नाम लो। न कभी इसने बिस्मिल्लाह ही की। फिर तुम क्यों इसको खाने से रोक रहे हो? सिर्फ एक दिन खिलाने में भी तुम शर्त लगा रहे हो!"
यह आवाज सुनी, तो पैगंबर रोने लगे और उस व्यक्ति से बोले, "मुझे क्षमा
कर दो और खाना खाओ।"
धर्म की कोई शर्त नहीं, कोई सीमा नहीं। राम कहो, रहीम कहो, अल्लाह कहो, ओंकार कहो; कुछ न कहना हो, कुछ न कहो--मौन रहो। अग्नि को पूजो--वह भी उसका प्रतीक है। जल को पूजो--वह भी उसका प्रतीक है। सब उसके प्रतीक हैं, क्योंकि वही है--और तो कुछ भी नहीं है।

चौथा प्रश्नः ओशो, क्या मैं भी कभी उस ज्योति को पा सकूंगा, जिसके दर्शन आपमें मुझे होते हैं?

सत्यप्रेम! क्यों नहीं! मैं तो केवल दर्पण हूं। मेरा तो इतना ही उपयोग
है कि तुम्हें तुम्हारी याद दिला दूं। वह ज्योति जो तुम्हें मुझमें दिखाई पड़ रही है, तुम्हारी भी ज्योति है। तुम्हें उसका होश नहीं; मुझे उसका होश है। जरा सा भेद है। तुम सोए हो, मैं जागा हूं। तुम भी वही हो, मैं भी वही हूं। तुम अपनी तरफ पीठ किए हो, मैंने अपनी तरफ मुंह कर लिया। तुम विमुख हो, मैं सन्मुख हो गया हूं। मगर बात तो वही की वही है।
अब तुम दीये की तरफ पीठ करके खड़े हो जाओ, तो दीया दिखाई नहीं पड़ेगा। स्वभावतः। जरा मुड़ आओ--और दीया दिखाई पड़ने लगेगा। तुम्हारे भीतर भी ज्योति छिपी है। जीवन ही तो ज्योति है। जीवन ही तो परमात्मा है।
तुम पूछते हो, "क्या मैं कभी उस ज्योति को पा सकूंगा?"
कभी क्यों--अभी पा सकते हो--यहीं पा सकते हो। जरा सा मुड़ने की बात है।
दिल के आईने में है तसवीरे यार
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।
बस, जरा सी गर्दन झुकाने की बात है!
न पूछो कौन हैं, क्यों राह में लाचार बैठे हैं।
मुसाफिर हैं, सफर करने की हिम्मत हार बैठे हैं।।
उधर पहलू से तुम उट्ठे, इधर दुनिया से हम उट्ठे।
चलो हम भी तुम्हारे साथ ही तैयार बैठे हैं।।
किसे फुर्सत, कि फर्जे-खिदमते-उल्फत बजा लाए।
न तुम बेकार बैठे हो, न हम बेकार बैठे हैं।।
मकामे-दस्तगीरी है, कि तेरे राहरोए उल्फत।
हजारों जुस्तुजूएं करके हिम्मत हार बैठे हैं।।
न पूछो कौन हैं, क्या मुद्दआ है, कुछ नहीं बाबा।
गदा हैं और जेरे-सायाए-दीवार बैठे हैं।।
थक गए हो। बहुत सी अभीप्साएं की, आकांक्षाएं की। हर सपना टूटा, तो हताश हो गए हो। इसलिए पूछते हो, "क्या मैं भी कभी उस ज्योति के दर्शन पा सकूंगा?" डर गए हो। भयभीत हो गए हो।
मकामे-दस्तगीरी है, कि तेरे राहरोए-उल्फत।
हजारों जुस्तजूएं करके हिम्मत हार बैठे हैं।।
तुम भी उस प्रेम-पथ के राही हो, लेकिन गलत आकांक्षाएं करके हार गए हो।
गलत आकांक्षाएं पूरी नहीं होतीं। धन पाने चलोगे, पा लोगे, तो भी हारोगे। न पाया, तो तो हारोगे ही। पद पाने चलोगे। पा लिया, तो भी हारोगे; न पाया, तो तो हारोगे ही। क्योंकि जिन्होंने पा लिया, उन्होंने भी कुछ न पाया।
धन पाकर भी क्या मिलता है? भीतर की निर्धनता और प्रगाढ़ हो जाती है। पद पाकर क्या मिलता है? भीतर की हीनता और उभर कर दिखाई पड़ने लगती है। जैसे कोई सफेद खड़िया से ब्लैकबोर्ड पर लिखता है। सफेद दीवाल पर लिखे, तो पता नहीं चलता।
गरीब आदमी को अपनी गरीबी उतनी पता नहीं चलती, जितनी अमीर आदमी को अपनी गरीबी पता चलती है। काली दीवाल पर सफेद खड़िया की तरह अक्षर उभर आते हैं।
"न पूछो कौन हैं, क्या मुद्दआ है, कुछ नहीं बाबा!" इतने थक गए हो कि कहते हो, मत पूछो। पूछो ही मत कि क्या उद्देश्य है।
न पूछो कौन हैं, क्या मुद्दआ है, कुछ नहीं बाबा।
गदा हैं और जेरे-सायाए-दीवार बैठे हैं।।
भिखारी हैं और दीवाल की छाया में बैठे हैं। मत पूछो बाबा कि कौन हैं? क्या हैं? ऐसी थकी हालत है। इसलिए तुम यह कह रहे हो कि "ओशो, क्या मैं भी कभी उस ज्योति को पा सकूंगा?"
क्यों नहीं! अभी पा सकते हो। कभी की बात ही मत छेड़ो। कभी में तो हताशा
आ गई, निराशा आ गई।
मेरा तो जोर "अभी" पर है--यहां और अभी। समझो, तो अभी मुड़ सकते हो। कोई रोक नहीं रहा। सिवाय तुम्हारी हताशा और निराशा के और कोई बाधा नहीं है।
गिर जाने दो इस हताशा को।
शिकवा बेसूद, शिकायत से भला क्या हासिल।

जिंदगी है तो बहरहाल बसर भी होगी।
इसी उम्मीद पे मजलूम जिए जाता है।
पर्देए-शब से नमुदार सहर भी होगी।।
उम्मीद रखो। ऐसे हार नहीं जाते। "पर्देए-शब से नमुदार सहर भी होगी।" अगर रात है, तो सुबह भी होगी।
चाहता हूं तेरा दीदार मयस्सर हो जाए।
सोचता हूं कि मुझे ताबे-नजर भी होगी?
फिकर न करो। अगर उसके दीदार का भाव उठा, अगर उस ज्योति के दर्शन की आकांक्षा उठी है--कोई फिक्र न करो। सोचता हूं कि "मुझे ताबे-नजर भी होगी।" देखने की शक्ति भी होगी, तभी तो यह आकांक्षा जगी है।
प्यास तभी उठती है, जब जल मौजूद हो। अगर दुनिया में जल न होता, तो प्यास भी न होती। और अगर भोजन न होता, तो भूख भी न होती। भूख के पहले भोजन है। प्यास के पहले पानी है।
तुमने देखा, मां के पेट में बच्चा आता है, और जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होने लगता है, मां के स्तन धीरे-धीरे दूध से भरने लगते हैं। जब तक बच्चा नहीं आता, तब तक मां के स्तन में दूध नहीं आता। लेकिन बच्चे के जन्म के पहले दूध आ जाता है। इधर बच्चा जन्मा--दूध आ चुका होता है। दूध प्रतीक्षा करता है। भूख के पहले भोजन है!
पर्देए-शब से नमुदार सहर भी होगी।।
चाहता हूं तेरा दीदार मयस्सर हो जाए।
सोचता हूं कि मुझे ताबे-नजर भी होगी?
यादे-एय्यामे-गुलिस्तां को भुला रक्खा था।
क्या खबर थी ये खालिश बारे-जिगर भी होगी।।
हाए इंसान, दरिंदों से हैं बढ़ कर वहशी।
क्या किसी दौर में तकमीले-बशर भी होगी।।
मुतमुइन हूं मैं बहुत चश्मे-तवज्जोह से तेरी।
एक न एक रोज उधर से ये इधर भी होगी।।
मैं जानता हूं कि तेरी नजर में करुणा है। मैं तेरी करुणा को पहचानता हूं। नहीं तो जीवन कौन देता! इस जीवन को इतने फूलों से कौन भरता! इस जीवन को प्रभु पाने की आकांक्षा से कौन भरता!
इतनी गहराई से हमारे भीतर प्रभु को पाने की आकांक्षा भरी है। सिवाय परमात्मा की अनुकंपा के और कोई कारण नहीं है। उसे हम पाना चाहते हैं, क्योंकि उसने बीज रख छोड़ा है हमारे भीतर प्यास का।
"मुतमुइन हूं मैं बहुत चश्मे-तवज्जोह से तेरी!" मुझे पक्का भरोसा है
कि तेरी करुणा भरी आंख है। "इक न इक रोज उधर से ये इधर भी होगी।" मुड़ेगी मेरी तरफ भी।
आज तारीकिए-माहौल से दम घुटता है।
कल खड़ा चाहेगा तालिब तो सहर भी होगी।।
मगर ध्यान रखना--खुदा चाहेगा "तालिब" तो सहर भी होगी।" तुम्हारी चाह
से नहीं होगा। तुम्हारी चाह छोड़ने से होगा।
तुम कहते होः "क्या मैं भी कभी उस ज्योति को पा सकूंगा, जिसके दर्शन आपमें मुझे होते हैं?"
सत्यप्रेम! जरूर। लेकिन एक शर्त पूरी करनी होगी। यह चाह भी छोड़ दो। चाह ही बाधा है। यह चाह आखिरी बाधा है। इसको भी जाने दो।
भरोसा करो। श्रद्धा करो। जिसने जीवन दिया है, और जीवन को परम सत्य पाने की अभीप्सा दी है--उसने जरूर इंतजाम कर रखा होगा। उसने पहले से ही इंतजाम कर रखा होगा। इस श्रद्धा का ही नाम धर्म है।
धर्म सिद्धांतों में विश्वास का नाम नहीं है; अस्तित्व की परम करुणा में श्रद्धा का नाम है, इसलिए शिकायतें न करना।
शिकवा बेसूद, शिकायत से भला क्या हासिल।
जिंदगी है तो बहरहाल बसर भी होगी।।
इसी उम्मीद पे मजलूम जिए जाता है।
पर्देए-शब से नमुदार सहर भी होगी।।

चाहता हूं तेरा दीदार मयस्सर हो जाए।
सोचता हूं कि मुझे ताबे-नजर भी होगी?
यादें एय्यामे-गुलिस्तां को भुला रक्खा था।
क्या खबर थी ये खालिश बारे-जिगर भी होगी।।
हाए इन्सान, दरिंदों से हैं बढ़ कर वहशी।
क्या किसी दौर में तकमीले-बशर भी होगी।
मुतमुइन हूं मैं बहुत चश्मे-तवज्जोह से तेरी।
एक न एक रोज उधर से ये इधर भी होगी।।
आज तारीकिए-माहौल से दम घुटता है।
कल खुदा चाहेगा "तालिब" तो सहर भी होगी।।
आज अंधेरे में प्राण छटपटा रहे हैं--माना। मगर "शिकवा बेसूद, शिकायत
से भला क्या हासिल।" न शिकवा करना, न शिकायत करना। जिसकी जिंदगी से शिकवा और शिकायत गिर जाती है, उसकी जिंदगी में प्रार्थना उठती है।
लेकिन अजीब अंधे लोग हैं! मंदिर भी जाते हैं, मस्जिद भी जाते हैं, गुरुद्वारा भी जाते हैं, तो वहां भी शिकायत है। प्रार्थना भी उनकी शिकायत का ही एक ढंग है--कि "हे प्रभु, ऐसा कर, वैसा कर। ऐसा क्यों नहीं किया!" मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि "हम नैतिक रूप से जीते हैं। सादगी से जीते हैं। फिर असफलता क्यों? और जो बेईमान हैं, अनैतिक हैं--वे सफल क्यों?" यह शिकायत है, यह शिकवा है।
"शिकवा बेसूद शिकायत से भला क्या हासिल।" यह सिर्फ इस बात की गवाही है
कि तुम्हें अभी भी श्रद्धा नहीं है। तुम्हारी श्रद्धा भी तुम्हारी वासना का ही रूप है। और श्रद्धा और वासना का क्या तालमेल!
तुम प्रार्थना भी करते हो, तो कुछ मांगते हो। वहां भी तुम भिखारी ही हो।
न पूछो कौन हैं, क्या मुद्दआ है, कुछ नहीं बाबा।
गदा हैं और जेरे-सायाए-दीवार बैठे हैं।।
वहां भी तुम भिखारी ही हो। प्रार्थना भिखमंगापन नहीं है। प्रार्थना आनंद-उल्लास है। प्रार्थना नृत्य है, गीत है, उत्सव है। प्रार्थना महोत्सव है। प्रार्थना धन्यवाद है--अनुग्रह का भाव है।
श्रद्धा हो, प्रार्थना हो--जरूर सत्यप्रेम, वह अपूर्व घटना तुम्हारे जीवन में भी घटेगी--जो मेरे जीवन में घटी है।
मेरे जीवन में घट सकती है, तो तुम्हारे जीवन में घट सकती है। हम सब एक जैसे निर्मित हुए हैं।
इस देश में और इस देश के बाहर भी, धर्म के इतिहास में जो सबसे बड़े दुर्भाग्य की घटना घटती है, वह यह कि हमने जिन लोगों के जीवन में ज्योति प्रकट हुई, उनको ही मनुष्य जाति से तोड़ दिया। हिंदुओं ने कह दिया, "वे अवतार हैं।" जैनों ने कह दिया--"वे तीर्थंकर हैं।" बौद्धों ने कह दिया, "वे बुद्धपुरुष हैं।" मुसलमानों ने कह दिया, "वे पैगंबर हैं!" ईसाइयों ने कह दिया, "वे ईश्वर-पुत्र हैं!" हमने आदमी से उनको अलग कर दिया। इसका एक दुष्परिणाम होना था--हुआ। भयंकर दुष्परिणाम हुआ।
जब तुम तीर्थंकर, अवतार, ईश्वर-पुत्र, मसीहा, पैगंबर--इस तरह जिनके जीवन में ज्योति आई, उनको अलग कर देते हो, तो साधारण आदमी को क्या आशा रह जाए! साधारण आदमी सोचने लगता हैः मैं तो साधारण आदमी हूं; ईश्वर-पुत्र नहीं, पैगंबर नहीं, तीर्थंकर नहीं, अवतार नहीं। मेरे जीवन में तो अंधेरा ही बदा है। मेरी तो किस्मत में अंधेरा ही लिखा है। मेरी रात की तो कोई सुबह नहीं होने वाली। और अगर महावीर को हुई, तो कोई खूबी की बात क्या! वे तीर्थंकर थे। वे कोई साधारण पुरुष न थे। वे तो आए ही थे--परम सत्य से ही जन्मे थे।
अगर जीसस के जीवन में वह ज्योति जगी, तो वे तो ईश्वर के बेटे थे! और ईसाई जोर देते हैं कि ईश्वर का एक ही बेटा है--जीसस। इकलौता बेटा है, ताकि साफ हो जाए तुम्हें कि तुम इस भ्रांति में मत रहना कि तुम भी ईश्वर के बेटे हो।

मुसलमान कहते हैं, "आखिरी पैगंबर हो चुके--मोहम्मद। अब कोई पैगंबर नहीं होगा।" सिक्ख कहते हैं, "दस गुरु हो चुके, अब ग्यारहवां गुरु नहीं होगा।" जैन कहते हैं, "चौबीस तीर्थंकर हो चुके, अब पच्चीसवां तीर्थंकर नहीं होगा।" यह आदमी को तोड़ देने की बात है।
आदमी और जाग्रत पुरुषों के बीच इतना फासला मत खड़ा करो।
मेरा पूरा जोर इस बात पर है कि मैं तुम जैसा हूं। मेरी कोई विशिष्टता नहीं। न कोई अवतार हूं। न कोई तीर्थंकर हूं। न कोई ईश्वर-पुत्र हूं। तुम जैसा हूं। और मेरे जीवन में जो घटा है, वह तुम्हारे जीवन में घट सकता है। कल मैं तुम जैसा था, आज तुम मेरे जैसे हो सकते हो। जरा भी भेद नहीं है। इतना ही भेद है कि मैं जाग कर बैठ गया हूं--और तुम अभी सो रहे हो। और तुम्हें मैं हिलाने की कोशिश कर रहा हूं कि जागो। हालांकि किसी को भी सोते से जगाने में अड़चन तो होती है। जागने वाला तो जगाता है इसलिए--कि कब तक सपनों में खोए रहोगे--व्यर्थ सपनों में!
जागो। सुबह हो गई। पक्षी गीत गाने लगे। सूरज उगने लगा। आनंद बरस रहा है। अमृत की झड़ी लगी है। और तुम सो रहे हो! मगर सोने वाला अपने सपनों में खोया है। हो सकता है, सोने के सिक्के गिन रहा हो! नोटों की गड्डियां बरस रही हों। बड़ी से बड़ी कुर्सी पर चढ़ा बैठा हो। राष्ट्रपति हो गया हो। प्रधानमंत्री हो गया हो। और तुम उसको जगा रहे हो।
उसका सपना टूट जाए--तो नाराज तो होगा ही--कि अभी कुर्सी पर बैठ भी नहीं पाया था कि तुमने हिला दिया! कुर्सी भी खो गई!
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात सपना देखा कि एक फरिश्ता उससे कह रहा है कि "मांग, कुछ मांगना है!" आदमी की मूढ़ता तो देखो! मगर तुम्हारे ही जैसा आदमी है मुल्ला नसरुद्दीन! उसने कहाः "एक सौ का नोट मिल जाए!" आदमी मांगे भी तो क्या मांगे! परमात्मा भी मिल जाए--तुम सोचो--तो क्या मांगोगे? क्या मांगोगे अगर--कभी विचार करो कि परमात्मा मिल ही जाए... ! तुम सुबह-सुबह घूमने निकले। परमात्मा मिल गया रास्ते पर और पूछने लगा कि "क्या मांगते हो?" तो क्या करोगे? नोट की गड्डियां मांगोगे! कहोगे--इलेक्शन में इस बार जीतना हो जाए; कि फलानी स्त्री से मेरा प्रेम हो गया, वह मुझे मिल जाए; कि बेटा नहीं हो रहा--बेटा हो जाए। कुछ इसी तरह की फिजूल की बातें मांगोगे। मांगोगे क्या? ये ही सब बातें तुम्हारे भीतर उतरेंगी--कि लाटरी खुल जाए! कुछ न कुछ इस तरह की बातें--कि घुड़दौड़ हो रही है पूना में, मेरा घोड़ा जीत जाए!
अब तुम देखते हो कि घोड़े भी इतने नालायक नहीं हैं, जितना आदमी नालायक है! घोड़े आदमियों की दौड़ नहीं करवाते! और आदमी कितने ही दौड़ें, कोई घोड़ा देखने नहीं आएगा। मैं तुमसे पक्का कहता हूं--कोई घोड़ा देखने नहीं आएगा। कहेंगे, "ये बुद्धू दौड़ रहे हैं--दौड़ने दो। इसमें अपने को देखना क्या है!" मगर घोड़े दौड़ते हैं और आदमियों की भीड़ इकट्ठी है! अभी सारा बंबई पूना में है। जिनकी भी जेबें जरा गर्म हैं, वे सब पूना में हैं। घुड़दौड़ हो रही है! घोड़े दौड़ रहे हैं! तुम्हें क्या पड़ी है! मगर आदमी अजीब है! गधे भी दौड़ें, तो भी आएगा!
मुर्गे लड़ाते हैं लोग। तीतर लड़ाते हैं लोग। और भीड़ इकट्ठी होती है। तीतर भी सोचते होंगे कि हो क्या गया आदमी को! मुर्गे भी सोचते होंगे कि हम ही भले। दो आदमी लड़ते हैं, हम तो फिक्र ही नहीं करते। लड़ते रहो। भाड़ में जाओ। आदमी अजीब पागल है!
तो मुल्ला नसरुद्दीन से फरिश्ते ने पूछाः "क्या मांगता है?" उसने कहाः "सौ का नगद नोट हो जाए।" फरिश्ता भी कंजूस ही रहा होगा, क्योंकि फरिश्ता कहां सपने में! मुल्ला ही का मन है। इधर से फरिश्ता बना है; इधर से मुल्ला! वही जवाब दे रहे हैं, वही सवाल कर रहे हैं।
फरिश्ता भी पक्का कंजूस रहा होगा। उसने कहा कि "सौ तो नहीं दूंगा। नब्बे ले लो।" मुल्ला ने कहा, "सौ से एक पैसा कम नहीं!" फरिश्ता भी इंच-इंच बढ़े। उसने कहा, "इक्यानबे ले लो!" मुल्ला भी जिद्द पर अड़ा कि "सौ ही लूंगा।
नगद बंधा हुआ नोट!"

लोग बंधे नोट के बड़े प्रेमी हैं! दूसरों से उधार लेकर खर्चा करते हैं। कहते हैं कि "जरा बंधा नोट है। तुड़वाना नहीं है। जरा एक रुपया हो तो दे दो। बंधा नोट है।" अरे, तो बंधे नोट का क्या करोगे? उस गरीब का भी एक का बंधा नोट है। उसका तुड़वाए दे रहे हो! अपना बंधा बचा रहे हो! बंधे नोटों को लोग बांधते हैं!
मुल्ला ने कहाः "लूंगा तो बंधा नोट। इक्यानबे वगैरह से काम नहीं चलेगा!"
उस फरिश्ते ने कहाः "अच्छा, बानबे ले लो।"
होनी लगी बड़ी छीना-झपटी निन्यानबे पर बात बिल्कुल अटक गई। फरिश्ता भी इंच आगे न बढ़े। उसने कहाः "निन्यानबे से एक कौड़ी ज्यादा नहीं दूंगा।" और मुल्ला कहे कि "अब निन्यानबे तक आ गए, तो अब एक के पीछे क्या कंजूसी कर रहे हो!" दूसरे की कंजूसी दिखाई पड़ती है, अपनी नहीं दिखाई पड़ती।
मगर फरिश्ता बोलाः "निन्यानबे से एक कौड़ी ज्यादा नहीं। लेना हो, ले ले।"
बात इतनी बिगड़ी कि मुल्ला चिल्लाया कि "देना हो तो सौ। नहीं तो मैं भी लेने वाला नहीं हूं। बंधा लूंगा। क्योंकि टूटे नोट खतम हो जाते हैं।" कहते हैं न लोग--बंधी मुट्ठी लाख की, खुली तो खाक की। बंधे नोट का मजा ही और होता है!
जोर से चिल्लाया कि "लूंगा तो सौ!" तो नींद खुल गई। नींद खुल गई, तो फरिश्ता नदारद! जल्दी से आंख बंद कर ली और कहा, "अच्छा बाबा, निन्यानबे दे दे!" मगर अब कहां--फरिश्ता ही नहीं है! "अट्ठानबे ही दे दे। अरे भई, जो देना हो दे दे। इक्यानबे ही दे दे। नब्बे दे दे!" मगर वहां कोई है ही नहीं। फरिश्ता नदारद हो गया।
नींद के सपने तो टूट जाएंगे--नींद के साथ ही। इसलिए जो तुम्हें जगाएगा, वह पहले तो दुश्मन मालूम होगा। जीसस को तभी तो तुमने सूली दी। सुकरात को जहर पिलाया। यूं ही तो नहीं। अकारण तो नहीं।
तुम्हारी नींद को तोड़ता है जो, उस पर नाराजगी आती है। हम सपना देख रहे हैं प्यारा-प्यारा और इनको यह धुन सवार है कि नींद तुड़वा दें! ये नींद तुड़वाने के पीछे पड़े हुए हैं! सोने भी नहीं देते चैन से। ऐसे आदमी को सूली लगा दो। ऐसे आदमी को जहर पिला दो।
अभी मुझ पर ही कुछ दिन पहले एक आदमी छुरा मार गया--छुरा फेंक कर--कि इस आदमी को खतम ही करो। अब इस बेचारे की कोई नींद टूट रही होगी। इसको कहीं चोट पड़ रही होगी। इसका सपना कहीं खिसक रहा होगा। कहीं फरिश्ता चला जाए! और बंधा नोट करीब ही था! निन्यानबे से सौ में दूरी क्या थी! अरे, इतनी दूर खींचतान कर ले आए थे। एक ही रुपये की बात थी। जब निन्यानबे तक खींच लिया, तो एक और खिंच जाता। मगर नींद बेवक्त तोड़ दी! तो गुस्सा तो आ ही जाए!
छुरा फेंकने में वही गुस्सा है। तुमने हमेशा ही सदगुरुओं के साथ असद व्यवहार किया है। मगर तुम क्षमा योग्य हो।
जीसस ने मरते वक्त अंतिम वचन जो कहे कि "हे प्रभु, इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं, ये क्या कर रहे हैं। इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं! ये बिल्कुल नींद में हैं। ये बेहोश हैं। मैं जगाने की कोशिश कर रहा था। इनको पता ही नहीं है; नींद के सिवाय इन्होंने कुछ जाना ही नहीं है। सपने ही इनकी संपदा हैं।"
तो जगाने में अड़चन तो है।
तुम पूछते हो सत्यप्रेम, "क्या मैं भी कभी उस ज्योति को पा सकूंगा, जिसके दर्शन आप में मुझे होते हैं?"
निश्चित ही। जरा भी संदेह का कारण नहीं है। आश्वस्त होओ। तुम्हारे भीतर ज्योति मौजूद है। तुम उसे लेकर ही पैदा हुए हो। पाने कहीं बाहर भी नहीं जाना है--न काबा, न काशी, न कैलाश। जरा भीतर मुड़ कर देखना है--और क्रांति घटित हो जाती है। और चमत्कारों का चमत्कार घटित हो जाता है।

आज इतना ही।

ज्यूं था त्यूं ठहराया
सातवां प्रवचन

दुख से जागो

पहला प्रश्नः ओशो, श्रीमद्भागवत में यह श्लोक हैः
यश्च मूढ़तमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः।
तावुभौ सुखमेघेते क्लिश्यत्यंतरितो जनः।।
संसार में जो अत्यंत मूढ़ है और जो परमज्ञानी है, वे दोनों सुख में रहते हैं। परंतु जो दोनों की बीच की स्थिति में है, वह क्लेश को प्राप्त होता है।
क्या ऐसा ही है?

आनंद मैत्रेय! निश्चय ही ऐसा ही है। मूढ़ का अर्थ हैः सोया हुआ, जिसे होश नहीं। जी रहा है, लेकिन पता नहीं क्यों! चलता भी है, उठता भी है, बैठता भी है--यंत्रवत! जिंदगी कैसे गुजर जाती है, जन्म कब मौत में बदल जाता है, दिन कब रात में ढल जाता है--कुछ पता ही नहीं चलता। जो इतना बेहोश है, उसे दुख का बोध नहीं हो सकता। बेहोशी में दुख का बोध कहां! झेलता है दुख, पर बोध नहीं है, इसलिए मानता है कि सुखी हूं।
करीब-करीब प्रत्येक व्यक्ति इसी भ्रांति में है कि सब ठीक है। जिससे पूछो--कैसे हो--वही कहता है--"ठीक हूं।" और ठीक कुछ भी नहीं। सब गैर-ठीक है। जिससे पूछो, वही कहता है, "मजा है! आनंद है! परमात्मा की बड़ी कृपा है!" शायद उसे यह भी बोध नहीं कि वह क्या कह रहा है।

न सुनने वाले को पड़ी है, न बोलने वाले को पड़ी है सोचने की। कहने वाला
कह रहा है, सुनने वाला सुन रहा है। न कहने वाले को प्रयोजन है--क्यों कह रहा है। न सुनने वाले को चिंता है कि क्या कहा जा रहा है! ऐसी बेहोशी में सुख की भ्रांति होती है। पशु ऐसी ही बेहोशी में जीते हैं--और निन्यानबे प्रतिशत मनुष्य भी।
"पशु" शब्द बड़ा प्यारा है। पशु का अर्थ हैः जो पाश में बंधा हो। पशु का अर्थ सिर्फ "जानवर" नहीं; पशु का बड़ा वैज्ञानिक अर्थ है--बंधा हुआ; मोह के पाश में बंधा हुआ; मूर्च्छा के बंधनों में जकड़ा हुआ; आसक्तियों में; खोया हुआ सपनों में।
पशुओं को तुमने दुखी न देखा होगा, रोते न देखा होगा, पीड़ित न देखा होगा। इसलिए तो पशुओं में कोई बुद्ध नहीं होता। जब पीड़ा का ही पता न चलेगा, तो पीड़ा से मुक्त होने की बात ही कहां उठती है! प्रश्न ही नहीं उठता। मनुष्यों में कभी कोई एकाध व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है; कभी। अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं ऐसे लोग; करोड़ों में कोई एक। कौन बुद्धत्व को उपलब्ध होता है? वही जिसे जीवन की पीड़ा ठीक-ठीक दिखाई पड़ती है, जिसे इतना होश आ जाता है कि जीवन दुख ही दुख है। आशा है सुख की, मगर मिलता कहां? दौड़ते हैं पाने के लिए, मगर पहुंचता कौन है? हाथ खाली के खाली रह जाते हैं। धन भी इकट्ठा हो जाता है, पद पर भी बैठ जाते हैं, मगर भीतर की रिक्तता नहीं भरती, सो नहीं भरती। भीतर का दीया नहीं जलता, सो नहीं जलता। धन से जलेगा भी कैसे? पद से भीतर रोशनी भी कैसे होगी? कोई संबंध नहीं दोनों का। धन बाहर है, भीतर निर्धनता है। बाहर के धन से भीतर की निर्धनता कैसे मिटे? महल में रहो कि झोपड़े में, रहोगे तो तुम ही! तुम अगर झोपड़े में दुखी हो, तो महल में भी दुखी रहोगे! तुम अगर झोपड़े में सोए हो, तो महल में सोओगे। लेकिन झोपड़े में जो है, वह भी सोच रहा है, "सुखी हूं।" राह के किनारे जो भिखमंगा बैठा है--लंगड़ा, लूला, अंधा, बहरा, कुष्ठ से गला जा रहा है, हाथ-पैर गिर रहे हैं टूट-टूट कर--वह भी जीए जा रहा है! पता नहीं किस आशा में! किस भ्रांति में। "कल सब ठीक हो जाएगा।" कल कभी आता है? जो नहीं आता, उसी का नाम कल है। तुम किसी भिखमंगे से भी कहोगे--किसलिए जी रहे हो? तो नाराज हो जाएगा। तुम्हें नहीं दिखाई पड़ेगा कोई कारण जीने का। लेकिन जीवेषणा ऐसी है कि हर हाल आदमी जीए जाता है!

गहन अकाल के दिनों में माताएं अपने बच्चों को काट कर खा गईं! बापों ने अपनी बेटियां बेच दीं। टूट गए सब नाते; छूट गए सब रिश्ते। अपने जीवन की आकांक्षा इतनी है कि आदमी कुछ भी कर सकता है! जिसके लिए जीते थे, उसी को मार भी सकता है। ऐसी अवस्था में पता नहीं चलता। कांटों में बिंधे पड़े रहते हैं, और फूलों के सपने देखते रहते हैं!
यह श्लोक ठीक कहता है कि "जो संसार में अत्यंत मूढ़ हैं, वे सुखी हैं।" सुखी इसलिए कि उनकी मूढ़ता इतनी सघन है कि उन्हें मूढ़ता का भी पता नहीं। मूढ़ता का पता जिसे चल गया, वह तो मूढ़ न रहा।
कल ही मैंने देखा श्री मोरारजी देसाई का एक वक्तव्य। एक पत्रकार परिषद में उनसे पूछा गया कि "आप आचार्य रजनीश का गुजरात में आगमन हो रहा है--कच्छ में--उसका विरोध करेंगे या नहीं? आप विरोध की अगवानी क्यों नहीं करते? कच्छ में प्रवेश न हो, इस विरोध में आप नेतृत्व क्यों हाथ में नहीं लेते?"
तो उन्होंने कहा कि "कच्छ की जनता ही विरोध करेगी। और आचार्य रजनीश का
वे ही लोग समर्थन करते हैं, जो मूर्ख हैं, मूढ़ हैं!"
मैंने वक्तव्य पढ़ा, तो सोचा या तो मोरारजी देसाई को अपना वक्तव्य वापस लेना चाहिए या फिर मेरा समर्थन करना चाहिए। दो में से कुछ एक करना चाहिए। अगर वक्तव्य सही है, तो मेरा समर्थन करना चाहिए, क्योंकि वे तो मूढ़ता में सर्वोच्च हैं! अरे, प्रधानमंत्री का पद तो आया-गया! अब तो भूतपूर्व हो गए; भूत हो गए! लेकिन मूढ़ता तो निज की संपदा है; उसमें कभी भूतपूर्व होने की संभावना नहीं दिखती। मगर परम मूढ़ता यह है कि दूसरों को मूढ़ समझते हैं। खुद की मूढ़ता का ख्याल नहीं होता।
एक से एक मूर्खतापूर्ण बातें वे रोज कहते हैं! और ख्याल में भी नहीं
कि क्या कह रहे हैं!
कच्छ की जनता को मुझसे कोई विरोध नहीं है। अगर विरोध है, तो मोरारजी देसाई को और उनके साथ हार गए राजनीतिज्ञों को--इने-गिने थोड़े से लोग। कच्छ की जनता तो स्वागत के लिए तैयार है। रोज कच्छ से लोग यहां आ रहे हैं।
अभी परसों ही मांडवी का एक प्रतिनिधि मंडल आठ व्यक्तियों का यह निवेदन करने आया था कि आप जो कच्छ के, मोरारजी देसाई के संगी-साथी हैं, वे जो शोरगुल मचा रहे हैं, उस भ्रांति में आप जरा भी न पड़ना। हम आपके स्वागत के लिए आंखें बिछाए बैठे हैं।
कच्छ के लोगों को कोई विरोध नहीं है। विरोध है तो ये कुछ कछुओं को-- जिनकी चमड़ी इतनी मोटी है कि जिसमें कुछ घुसता ही नहीं!
मूढ़ सुखी अनुभव करता है अपने को, इसलिए कि उसे दुख का बोध नहीं होता। इसलिए तो जब किसी का आपरेशन करते हैं, तो पहले उसे बेहोश कर देते हैं। बेहोश हो गया, तो फिर दुख का पता नहीं चलता। फिर उसके हाथ काटो, पैर काटो, अपेंडिक्स निकाल लो। जो करना हो करो, उसे कुछ पता नहीं। होश में किसी की अपेंडिक्स निकालोगे, तो आसान नहीं मामला। डाक्टर की गर्दन दबा देगा--लड़ने को, मरने को, मारने को राजी हो जाएगा--कि यह क्या कर रहे--मेरा पेट काट रहे! मेरे प्राण निकल रहे हैं! भागने लगेगा। पहले उसे बेहोश कर देते हैं।
और यही प्रक्रिया मृत्यु की है। मरने के पहले अधिकतम लोग बेहोश हो जाते हैं--क्षण भर पहले, क्योंकि मृत्यु तो बड़े से बड़ा आपरेशन है। आत्मा शरीर से अलग की जाएगी। अपेंडिक्स क्या है! आत्मा का शरीर से अलग होना इससे बड़ी और पीड़ा की कोई बात क्या होगी! सत्तर-अस्सी-नब्बे साल दोनों का संग-साथ रहा। जुड़ गए, एक दूसरे में मिल गए, तादात्म्य हो गया। उस सारे तादात्म्य को छिन्न-भिन्न करना है। तो प्रकृति बेहोश कर देती है; सिर्फ कुछ बुद्धों को छोड़ कर। क्योंकि उनको बेहोश नहीं किया जा सकता। वे जागे ही जीते हैं, जागे ही सोते हैं, जागे ही मरते हैं। इसलिए मरते ही नहीं। क्योंकि जाग कर वे देखते रहते हैं--शरीर मर रहा है, मैं नहीं मर रहा हूं। मुस्कुराते रहते हैं। देखते रहते हैं कि शरीर छूट रहा है। लेकिन मैं शरीर नहीं हूं। मन विदा हो रहा है, लेकिन मैं मन नहीं हूं। वस्तुतः तो वे बहुत पहले ही शरीर और मन से मुक्त हो चुके। मौत आई उसके पहले मर चुके। उसके पहले उन्होंने शाश्वत जीवन को जान लिया।

बुद्ध की जब मृत्यु हुई, तो उनके शिष्य रोने लगे। बुद्ध ने कहाः "चुप
हो जाओ नासमझो। मुझे मरे तो लंबा अरसा हो गया। मैं तो बयालीस साल पहले उस रात मर गया, जिस दिन बुद्ध हुआ। अब क्या रो रहे हो! बयालीस साल बाद! आज कुछ नया नहीं हो रहा है। यह तो घटना घट चुकी। बयालीस साल पहले उस रात पूर्णिमा की--मैंने देख लिया कि मैं शरीर नहीं, मन नहीं। बात खतम हो गई। मौत तो उसी दिन हो गई। रोओ मत। रोने का कुछ भी नहीं है। क्योंकि जो है, वह रहेगा। और जो नहीं है, वह नहीं ही है। वह जाता है, तो जाने दो। सपने ही टूटते हैं--सत्य नहीं टूटते हैं।"
तो जो परम ज्ञान को उपलब्ध है, वह भी सुखी। "महासुख" बुद्ध ने उसे कहा है--भेद करने को।
अज्ञानी सुखी होता है। धन मिल जाता है, लाटरी मिल जाती है--सुखी हो जाता है। पद मिल जाता है--सुखी हो जाता है। खिलौनों में--माटी के खिलौनों में भरम जाता है! एक भ्रम टूटता नहीं कि दूसरे भ्रमों में उलझ जाता है। नये-नये भ्रम खड़े करता रहता है। झमेले में लगा रहता है। यह कर लूं--वह कर लूं--आपा-धापी! इसमें इतना उलझाव होता है, इतना व्यस्त कि पता ही नहीं चलता कि कब जिंदगी आई, कब जिंदगी गुजर गई! कब सुबह हुई, कब सांझ हो गई! कब सूरज उगा, कब डूब गया!
बचपन खिलौनों में निकल जाता है, जवानी भी खिलौनों में निकल जाती है। बदल जाते हैं खिलौने। बच्चों के खिलौने छोटे हैं, स्वभावतः, जवानों के खिलौने जरा बड़े हैं! मगर आश्चर्य तो यह है कि बुढ़ापा भी खिलौनों में ही निकलता है। कम से कम बुढ़ापे में आते-आते तो जाग जाना चाहिए। मरने के पहले तो जाग जाना चाहिए। मरने के पहले तो सारे व्यर्थ के जाल-जंजाल से छुटकारा कर लेना चाहिए। मरने के पहले जीवन क्या है--इसकी पहचान हो जानी चाहिए। जिसको हो जाती है--उसे महासुख।
यह श्लोक कीमती है। यह कहता है--
"यश्च मूढ़तमो लोके यश्च बुद्धेः परंगतः।"
वे जो मूढ़ हैं, वे भी सुखी हैं नकारात्मक अर्थों में। क्योंकि उनको दुख का पता नहीं। और वे जो बुद्धपुरुष हैं, बुद्धजन हैं, जो परम गति को उपलब्ध हुए, वे भी सुखी हैं--विधायक अर्थों में। उन्हें पता है कि सुख क्या है। वे महासुखी हैं। भेद को समझ लेना। दोनों का सुख अलग-अलग है।
मूढ़ का सुख वैसा ही, जैसा बेहोश आदमी का आपरेशन हो रहा है, और उसे पता नहीं।
काशी के नरेश का आपरेशन हुआ उन्नीस सौ आठ में। अपेंडिक्स का आपरेशन था। लेकिन काशी के नरेश ने क्लोरोफार्म लेने से इनकार कर दिया। और कहा कि "इसकी कोई जरूरत नहीं है। मैं जानता हूं कि मैं शरीर नहीं। आपरेशन करो।" अंग्रेज डाक्टर बड़ी मुश्किल में पड़े। आपरेशन करना तत्क्षण जरूरी है, नहीं तो मौत हो सकती है। अपेंडिक्स फूट सकती है। संघातक स्थिति है। ठहरा नहीं जा सकता। और काशी के नरेश को जबरदस्ती भी नहीं की जा सकती। वे कहते हैं कि "बेहोश करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं ध्यान करता रहूंगा, तुम आपरेशन कर देना!"
कभी यह घटना घटी न थी इसके पहले। डाक्टरों ने बहुत झिझकते हुए समझाने
की कोशिश की। लेकिन समझाने के लिए समय भी न था। तब मजबूरी में उन्होंने कहा कि ठीक है। थोड़ी सी चीर-फाड़ करके देखी कि क्या परिणाम होता है। लेकिन काशी नरेश तो आंख बंद किए मस्त ही रहे। आंखों से आनंद के आंसू झरते रहे। फिर उन्होंने अपेंडिक्स भी निकाल ली। वे आनंद के आंसू झरते ही रहे। चेहरे पर एक आभा--जैसे पता ही न चला! जैसे उन्होंने कुछ इस बात का हिसाब ही न लिया।
अपेंडिक्स पहली दफा मनुष्य-जाति के इतिहास में बिना बेहोश किए निकाली गई। चिकित्सक चकित थे। भरोसा न आता था अपनी आंखों पर--कि इतना बड़ा आपरेशन हो और कोई व्यक्ति हिले-डुले भी नहीं! पूछा उन्होंने काशी नरेश को कि "इसका राज क्या है?"
उन्होंने कहाः "राज कुछ भी नहीं। राज इतना ही है कि मैं जानता हूं--मैं शरीर नहीं हूं। मैं साक्षी हूं। मैं अपने साक्षीभाव में रहा। मैं देखता

रहा कि अपेंडिक्स निकाली जा रही है। पेट फाड़ा जा रहा है। औजार चलाए जा रहे हैं। मैं द्रष्टा हूं। शरीर अलग है। मैं यूं देखता रहा, जैसे कोई किसी और के शरीर की शल्यक्रिया देखता हो। मैं शरीर नहीं हूं; और ही है शरीर।" ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति के लिए कोई दुख नहीं है, क्योंकि दुख शरीर और
मन के ही होते हैं; आत्मा का कोई दुख नहीं होता। आत्मा का स्वभाव आनंद है। हमने शरीर के साथ अपने को एक मान रखा है, तो हम दुखी हैं। मन के साथ अपने को जोड़ रखा है, तो हम दुखी हैं। मन यानी माया। मन यानी मोह। मन यानी सारा संसार; यह सारा विस्तार। मन और शरीर से अलग जिसने अपने को जान लिया, वह परम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है। फिर वहां कोई दुख नहीं है। फिर वहां महासुख है, परम शांति है। आनंद ही आनंद। अमृत ही अमृत!
और यह बात भी सच है कि इन दोनों के बीच में जो है, वह दुखी है। मूढ़--उसे पता नहीं, बेहोश है। प्रबुद्ध--उसे पता है, परिपूर्ण होश है। इन दोनों के मध्य में जो है, वह दुखी है। वह बड़े झमेले में है। न यहां का, न वहां का। न घर का न घाट का--धोबी का गधा है! इधर शरीर खींचता है, उधर आत्मा पुकारती है। इधर बाहर की दुनिया आकर्षित करती है, उधर भीतर का लोक निमंत्रण देता है। यहां धन खींचता है, वहां ध्यान पुकारता है। खेंचातानी! कोई टांग खींच रहा है! कोई हाथ खींच रहा है!
जरा जरा-सा होश भी है, मगर धुंधला-धुंधला; इतना नहीं कि महासुख दिखाई
पड़ जाए। मगर इतना होश है कि दुख दिखाई पड़ता है। इतनी रोशनी नहीं कि अंधेरा मिट जाए। मगर इतनी रोशनी है कि अंधेरा दिखाई पड़ता है। जैसे सुबह-सुबह, भोर में, अभी सूरज नहीं निकला; अभी रात के आखिरी तारे नहीं डूबे। कुछ-कुछ हलकी सी रोशनी है। और गहन अंधकार भी--साथ-साथ! मध्य में जो है, वह संध्या काल में है। उसकी बड़ी विडंबना है। न यहां का, न वहां का! वह त्रिशंकु की भांति लटक जाता है। न इस लोक का, न परलोक का।
कुछ लोगों की यह गति है। खास कर उन लोगों की, जिनके जीवन में थोड़ी-सी धार्मिकता है। जिनके जीवन में थोड़ा सा प्रार्थना का स्वर सुनाई पड़ा है। जिनके जीवन में क्रांति की थोड़ी सी चिनगारी पड़ी है। वे बड़े दुखी हो जाते हैं। और वे तब तक दुखी रहेंगे, जब तक वे परम सत्य को न पा लें।
बुद्ध बहुत दुखी हो गए थे, तभी तो राजमहल छोड़ा। और जिन घटनाओं को देख
कर दुखी हुए थे, उन्हीं घटनाओं को तुम रोज देखते हो, तुम्हें कुछ भी नहीं होता! चार घटनाओं का उल्लेख है।
बुद्ध जब पैदा हुए, तो ज्योतिषियों ने कहा कि "सम्राट, हम बड़े संकोच से भरे हैं। आपके बेटे का भविष्य बड़ा अनिश्चित है। या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा। अगर रुक रहा संसार में, तो यह सारे जगत का विजेता होगा। लेकिन पक्का नहीं कह सकते। एक संभावना यह भी है कि सब त्याग कर संन्यासी होगा। तब यह बुद्धत्व को उपलब्ध होगा। या तो चक्रवर्ती सम्राट या बुद्ध।" सिर्फ एक युवक ज्योतिषी भी मौजूद था। कोदन्ना उसका नाम था। वह भर चुप रहा। सम्राट ने पूछा कि "तुम कुछ नहीं कहते?" उसने एक अंगुली उठाई। सम्राट ने कहाः "इशारे मत करो। साफ-साफ कहो। क्या कहना चाहते हो एक अंगुली उठा कर?"
कोदन्ना ने कहा कि "मैं सुनिश्चित रूप से कहता हूं कि यह व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होगा।"
सम्राट को बहुत धक्का लगा कि एक ही बेटा था। वह भी बुढ़ापे में पैदा हुआ था! यह संन्यस्त हो जाएगा। फिर मेरे साम्राज्य का क्या होगा! इसे कैसे रोका जाए कि यह संन्यस्त न हो।
हर मां-बाप बच्चों को रोकते हैं--कहीं संन्यस्त न हो जाएं! बड़ी हैरानी
की दुनिया है। और मजा यह कि अगर किसी और का बेटा संन्यासी हो जाए, तो यही मां-बाप उसके चरण छूने जाते हैं! इनका खुद का बेटा संन्यासी होने लगे, तो इनको अड़चन आती है। अड़चन इसलिए आती है कि इनके न्यस्त स्वार्थ को धक्का लगता है। अड़चन इसलिए आती है कि बेटा हमसे आगे जा रहा है! इससे अहंकार को भी पीड़ा होती है। हम जो न कर पाए, वह बेटा कर रहा है, कि बेटी कर रही है!
और फिर बुद्ध के पिता ने जो बड़ा विस्तार कर रखा था धन का, साम्राज्य का, उसका क्या होगा! जीवन उसी में गंवाया था। बड़ी आशा थी इस बेटे की कि बेटा

मिल जाएगा, तो सम्हालने वाला कोई होगा। हम तो न रहेंगे, लेकिन अपना कोई खून का हिस्सा सम्हालेगा!
क्या-क्या मोह हैं दुनिया में! हम न होंगे तो कम से कम हमारा बेटा सम्हालेगा। खुद के बेटे नहीं होते, लोग दूसरों के बेटे गोद ले लेते हैं और भ्रांतियां बना लेते हैं कि अपना है।
कोई अपना सम्हालेगा, तो भी भरोसा है कि चलो, हमारा श्रम व्यर्थ नहीं गया। श्रम तो व्यर्थ ही गया। जब तुम ही चले गए, तो तुम्हारे श्रम का क्या मूल्य है!
बुद्ध के पिता बड़े चिंतित हुए। पूछने लगे कि कोई रास्ता बताओ--कैसे इसको रोकें?
तो उन ज्योतिषियों ने कहाः "अगर इसे रोकना हो, तो चार चीजों का पता मत चलने देना। बीमारी होती है--यह पता मत चलने देना। क्योंकि बीमारी में इसे दुख होगा। दुख होगा, तो फिर बचना मुश्किल होगा। बुढ़ापा आता है, यह पता मत चलने देना, क्योंकि बुढ़ापे का अगर इसको ख्याल आ जाएगा, तो मौत ज्यादा दूर नहीं है फिर। और मौत होती है--यह इसे पता मत चलने देना। और चौथी बात कि संन्यास की भी संभावना है--यह इसे पता मत चलने देना। बस, ये चार बातों से बचाए रखना। और इसे पिलाओ शराब और रंगरेलियां मनाने दो। सम्राट हो तुम, सुंदरतम स्त्रियां इकट्ठी कर दो, उन्हीं में भूला रहे, भटका रहे। संगीत चले। नाच चले। शराब चले। दौर पर दौर चलें। इसको बेहोश रखो। अगर इसे बेहोश रखने में समर्थ हो गए, तो यह चक्रवर्ती सम्राट हो जाएगा।" सम्राट ने कहा, "फिर ठीक है।"
उसने बुद्ध के लिए अलग-अलग ऋतुओं के लिए अलग-अलग महल बनवाए। गर्मी के लिए अलग महल। ऐसे स्थान में, ऐसे मौसम में, ऐसे वातावरण में, जहां सब ठंडा था, शीतल था। उसे गर्मी का पता न चले। सर्दी में और जगह--जहां सब गर्म था, उसे सर्दी का पता न चले। वर्षा में ऐसी जगह जहां थोड़ी बूंदाबांदी हो। वर्षा का मजा भी हो, लेकिन वर्षा की पीड़ा न हो।
सम्राट ने सारी सुंदर स्त्रियां, जितनी सुंदर युवतियां राज्य में मिल सकती थीं, सब को उठा लिया। वह उसके हाथ की बात थी। बुद्ध को सिर्फ लड़कियों से घेर दिया। खिलौने ही खिलौने दे दिए। और सारी सुविधाएं जुटा दीं। श्रेष्ठतम चिकित्सक बुद्ध के पीछे लगा दिए कि बीमारी आने के पहले ही इलाज करें। बीमारी आए--फिर इलाज नहीं। बीमारी आने के पहले इलाज। बुद्ध को पता ही न चले कि बीमारी आने वाली थी।
और किसी बूढ़े को बुद्ध के महलों में जाने की आज्ञा न थी। यहां तक कि कोई सूखा हुआ पत्ता बुद्ध के बगीचे में नहीं टिकने दिया जाता था। सूखे पत्ते को देख कर शायद उन्हें याद आ जाए कि कभी हमें भी तो नहीं सूख जाना पड़ेगा। आज हरे हैं, कल कहीं सूख कर वृक्ष से गिर तो न जाएंगे! कुम्हलाए हुए फूल रात में अलग कर देते थे। बुद्ध के बगीचे में माली रात भर काम करते थे। कुम्हलाए फूल, सूखे पत्ते, पीले पड़ गए पत्ते--सब अलग कर दिए जाते थे। बुद्ध को ऐसे धोखे में रखा गया। लेकिन कब तक धोखे में रखोगे! जिंदगी
से कैसे किसी को छिपाया जा सकता है!
एक महोत्सव में--युवक महोत्सव में बुद्ध भाग लेने जा रहे थे--उसका उदघाटन करने। राजकुमार ही उसका उदघाटन करता था। रास्ते पर डुंडियां पीट दी गई थीं कि कोई बूढ़ा न निकले, कोई बीमार न निकले, कोई मुर्दे की लाश न गुजरे, कोई संन्यासी न निकले। मगर दुनिया बड़ी है। किसी बहरे ने सुना ही नहीं कि डुंडी पिटी। किसी बीमार को पता ही न चला कि डुंडी पिटी। बड़ी राजधानी थी।
और जब बुद्ध का रथ जा रहा था राजधानी में से, तो उन्होंने देखा एक आदमी कोः कमर झुक गई। रुग्ण! खांस रहा, खखार रहा! पूछा कि "क्या हो गया इसको?" सारथी ने कहा कि मुझे आज्ञा नहीं है कि मैं आपको इस तरह की बातों के संबंध में कहूं!
बुद्ध ने कहाः "मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि बोलो। क्या हो गया इसे?"

बुद्ध को इनकार भी नहीं किया जा सकता। राजकुमार है। तो उसने कहाः "मजबूरी है। लेकिन आपके पिता की आज्ञा नहीं है।"
बुद्ध ने कहाः "जब मैं तुमसे कहता हूं, जवाब दो अन्यथा नौकरी से तुम अलग किए जाते हो!"
उस सारथी ने कहाः "मालिक नाराज न हों। यह आदमी बीमार है। इसको क्षय रोग हो गया है। यह तपेदिक से बीमार है। यह खांस रहा है, खखार रहा है।" बुद्ध ने कहाः "क्या मैं भी कभी बीमार हो सकता हूं?"
इसको कहते हैं प्रतिभा। इसको कहते हैं बुद्धिमत्ता। इसको कहते हैं प्रखर तेजस्विता--मेधा! उस आदमी का प्रश्न तत्क्षण अपने पर लागू हो गया। "क्या मैं कभी बीमार हो सकता हूं?"
उस सारथी ने कहा कि "मैं क्या कहूं आपसे! लेकिन देह है, तो बीमारी है। देह तो बीमारियों का घर है। इसमें सब बीमारियां छिपी हैं। आज नहीं कल... अभी आप जवान हैं। अभी सब स्वस्थ है। सब सुंदर है। मगर कब टूट जाएगा स्वास्थ्य, कहा नहीं जा सकता। टूट ही जाता है। मगर ख्याल रखें, अपने पिता को मत कहना कि मैंने ये बातें आपसे कहीं। नहीं तो मेरा अस्तित्व खतरे में है।"
बुद्ध ने कहाः "तुम चिंता मत करो।"
और तभी एक बूढ़ा आदमी गुजरा; बहुत जराजीर्ण। और बुद्ध ने पूछाः "इसे क्या हो गया? इसे कौन सी बीमारी है?"
सारथी ने कहाः "इसे कोई बीमारी नहीं है। यह बुढ़ापा है। यह सबको होता है। यह बीमारी नहीं है, यह सहज जीवन का अंतिम चरण है।"
बुद्ध ने कहाः "क्या ऐसी ही झुर्रियां मेरे चेहरे पर पड़ जाएंगी! ऐसी
ही शिकन! ऐसा ही कमजोर मैं हो जाऊंगा! आंखें मेरी ऐसी ही धुंधली हो जाएंगी? ऐसे ही बहरा मैं हो जाऊंगा?"
सारथी ने कहाः "मजबूरी है। मगर प्रत्येक को एक दिन इसी तरह हो जाना पड़ता है। सब चीजें आखिर थक जाती है। इंद्रियां थक जाती हैं, टूटने लगती हैं, बिखरने लगती हैं। बुढ़ापे से कौन बच सका है!"
और तभी एक मुर्दे की लाश निकली और बुद्ध ने पूछा, "अब इसे क्या हो गया है? ये किस आदमी को बांध कर लिए जा रहे हैं?"
सारथी ने कहाः "यह बुढ़ापे के बाद की घटना है। यह आदमी मर गया।"
और तब उसी लाश के पीछे एक संन्यासी--गैरिक वस्त्रों में! बुद्ध ने कहाः "यह आदमी गैरिक वस्त्र क्यों पहने हुए है? इसके हाथ में भिक्षा का पात्र क्यों है? इस आदमी की यह शैली क्या है?"
तो पता चला कि यह संन्यासी है। उसने सारे संसार को छोड़ दिया है। क्यों छोड़ दिया है? इसलिए कि जीवन में दुख है, बीमारी है, बुढ़ापा है, मृत्यु है। यह आदमी अमृत की तलाश में चला है।
बुद्ध ने कहाः "लौटा लो; रथ को वापस लौटा लो। मैं बीमार हो गया। मैं बूढ़ा हो गया। मैं मर गया--यूं समझो। मुझे भी सत्य की तलाश करनी होगी।"
वे महोत्सव में भाग लेने नहीं गए। लौट आए। और उसी रात उन्होंने गृह-त्याग कर दिया।
ये चार सत्य तुम्हें रोज दिखाई पड़ते हैं--बीमार भी दिखाई पड़ता है, तुम
भी बीमार पड़ते हो। बूढ़ा भी दिखाई पड़ता है, तुम भी बूढ़े हो रहे हो। रोज हो रहे हो। प्रतिपल हो रहे हो।
जिसको तुम जन्म-दिन कहते हो, वह जन्म-दिन थोड़े ही है; मौत और करीब आ गई! उसको जन्म-दिन कह रहे हो!
लोग जन्म-दिन मनाते हैं! लेकिन मौत करीब आ रही है। एक साल और बीत गया।
एक बरस और बीत गया। जिंदगी और छोटी हो गई। तुम सोचते हो, जिंदगी बड़ी हो रही है। जिंदगी छोटी हो रही है।
जन्मने के बाद आदमी मरता ही जाता है। पहले ही क्षण से मरना शुरू हो जाता है। यह मरने की प्रक्रिया सत्तर-अस्सी साल लेगी, यह और बात। धीरे- धीरे क्रमशः आदमी मरता जाता है।

लेकिन तुम देख कर भी कहां देखते हो। तुम बेहोश हो। इसलिए तुम सुखी हो। बुद्ध बहुत दुखी हो गए। मध्य में आ गए। मूढ़ न रहे। अभी परम ज्ञान नहीं हुआ है। मगर बीच की हालत आ गई। बहुत दुखी हो गए। तलाश में निकल गए।
जब आदमी बहुत दुखी होता है, तभी तलाश में निकलता है। मगर दुख को अनुभव करने के लिए भी बुद्धिमत्ता चाहिए। धन्यभागी हैं वे, जो दुख को अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि जिन्होंने दुख को अनुभव किया, उन्होंने फिर दुख से मुक्त होने की चेष्टा भी की। करनी ही पड़ेगी।
बुद्ध छह वर्ष अथक तपश्चर्या किए, ध्यान किए। और एक दिन परम बुद्धत्व
को उपलब्ध हुए, तब महासुख के झरने फूटे। तब अमृत-रस बरसा। तब जीवन का राज खुला, रहस्य खुला। तब भीतर का सूरज उगा। ध्यान मिला, तो भीतर का धन मिला। समाधि मिली, तो सब समस्याओं का समाधान मिला। फिर कोई दुख न रहा। फिर कोई संताप न रहा।
यह सूत्र बिल्कुल ठीक है--
"यश्च मूढ़तमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः।"
बड़ा विरोधाभासी सूत्र है कि मूढ़ों की गति और परम बुद्धों की गति एक अर्थ में समान है। मूढ़ भी सुखी, बुद्ध भी सुखी। मगर उनका सुख बड़ा अलग-अलग। मूढ़ बेहोशी के कारण सुखी; बुद्ध होश के कारण सुखी। जमीन आसमान का भेद है। "तावुभौ सुखमेघेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः।"
लेकिन जो बीच में हैं, मध्य में हैं, उनको बड़ा क्लेश है। लेकिन मध्य में आना ही होगा। पशुता छोड़नी होगी; मनुष्य होना होगा। मनुष्य दुखी होगा; मनुष्य मध्य में होगा। लेकिन उस दुख से गुजरे बिना कोई बुद्धत्व तक नहीं जा सकता। वह कीमत चुकानी पड़ती है। जो उस कीमत को चुकाने से बचेगा, वह पशुता के जगत में ही, मूढ़ता के जगत में ही उलझा रह जाता है।
और तुम यही कर रहे हो। अधिकतम लोग यही कर रहे हैं। किसी तरह अपने को भुलाए रखो; उलझाए रखो। जाल बुनते हो उलझाव के। और कल पर टालते रहो--मनुष्य होने की संभावना को। कल मौत आएगी।
तुम बहुत बार जन्मे हो और बहुत बार ऐसे ही मर गए! अवसर तुमने कितना गंवाया है--हिसाब लगाना मुश्किल है! अब और न गंवाओ। यह कीमत चुका दो। यह दुख से थोड़ा गुजरना पड़ेगा। और जितने जल्दी चुका दो, उतना बेहतर है। यह दुख ही तपश्चर्या है। यह दुख ही साधना है। इस दुख की सीढ़ी से चढ़ कर ही कोई परम सुख को उपलब्ध हुआ है। और कोई उपाय नहीं है। बच कर नहीं जा सकते।
इसलिए शास्त्र कहते हैं कि देवता भी देवलोक से निर्वाण को नहीं पा सकते। पहले उन्हें मनुष्य होना पड़ेगा। मनुष्य हुए बिना कोई बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हो सकता है, क्योंकि मनुष्य चौरस्ता है।
देवता सुखी हैं। शराब पी रहे हैं। अप्सराओं को नचा रहे हैं। और उसी तरह के उपद्रव में लगे हैं, जिसमें तुम लगे हो। कुछ फर्क नहीं है! थोड़ा बड़े पैमाने पर हैं उनका जरा। उनकी उम्र लंबी होगी। उनकी देह सुंदर होगी। मगर सब यही जाल है, जो तुम्हारा है। यही ईर्ष्या। यही वैमनस्य।
तुमने कहानियां तो पढ़ी हैं कि इंद्र का सिंहासन बड़े जल्दी डोल जाता है। कोई तपश्चर्या करता है, इंद्र का सिंहासन डोला! घबड़ाहट चढ़ती है कि यह आदमी कहीं इंद्र न हो जाए! वही राजनीति, वही दांव-पेंच! और इंद्र करते क्या हैं? भेज देते हैं अप्सराओं को--मेनका को, उर्वशी को कि "भ्रष्ट करो इस तपस्वी को। यह भ्रष्ट हो जाए, तो मैं निश्चिंत सोऊं।" मगर क्या खाक निश्चिंत सो पाओगे! इतनी बड़ी पृथ्वी है, कोई न कोई तपश्चर्या करेगा, कोई न कोई ध्यान करेगा। नींद कहां?
देवता भी दुखी हैं, उतने ही जितने तुम। लेकिन न तुम्हें पता है, न उन्हें पता है। वे भी बेहोश हैं। इसलिए शास्त्र ठीक कहते हैं कि मनुष्य हुए बिना... । मनुष्य के चौराहे से तो गुजरना ही होगा। यह चौराहा है। यहां से पशु की तरफ रास्ता जाता है; यहां से मनुष्य की तरफ रास्ता जाता है; यहां से देवत्व की तरफ रास्ता जाता है; और यहां से बुद्धत्व की तरफ भी रास्ता जाता है।

मनुष्य चौराहा है। चारों रास्ते यहां मिलते हैं। अगर तुम समझो, तो जीवन एक परम सौभाग्य है। अगर तुम जागो, तो मनुष्य होने से बुद्धत्व होने की तरफ मार्ग जा रहा है; तुम उसे चुन सकते हो।
लेकिन लोग शराब पीएंगे! अगर दुखी होंगे, तो शराब पीएंगे। क्यों आदमी शराब पीता है दुखी होता है तो? भुलाने के लिए। पशु हो जाएगा शराब पीकर। जो समझदार है, वह ध्यान करता है। वह ध्यान की शराब पीता है। वह समाधि
की तरफ बढ़ता है। वह कहता है, ऐसे भुलाने से क्या होगा! भुलाने से दुख मिटता तो नहीं। फिर कल सुबह होश आएगा। फिर दुख वहीं के वहीं पाओगे। और बड़ा हो जाएगा।
रात भर में दुख भी बड़ा हो रहा है। जब तुम सो रहे हो, तब दुख भी बड़ा हो रहा है। सुबह चिंताओं के जाल और खड़े हो जाएंगे। कल जब तुमने शराब पी थी, जितनी चिंताएं थीं, सुबह पाओगे--और ज्यादा हो गईं, क्योंकि शराब पीकर भी तुम कुछ उपद्रव करोगे न! किसी को गाली दोगे, किसी को मारोगे, किसी के घर में घुस जाओगे। किसी की स्त्री को पकड़ लोगे। कुछ न कुछ उपद्रव करोगे! सुबह तुम पाओगे--और झंझटें हो गईं!
हो सकता है सुबह हवालात में पाओ अपने को; कि किसी नाली में पड़ा हुआ पाओ। कुत्ता मुंह चाट रहा हो! कि जीवन-जल छिड़क रहा हो। और झंझटें हो गईं! सुबह घर पहुंचोगे, तो पत्नी खड़ी है--मूसल लिए हुए! इससे निपटो! दफ्तर जाओगे, वहां झंझटें खड़ी होंगी। हजार भूल-चूकें होंगी। क्योंकि नशा सरकते- सरकते उतरता है। थोड़ी सी छाया बनी ही रहती है। कुछ का कुछ हो जाएगा। कुछ का कुछ बोल जाओगे। कुछ का कुछ कर गुजरोगे। और चिंताएं बढ़ जाएंगी और दुख बढ़ जाएंगे। कल मुश्किल थी... । और उस नशे में हो सकता है कि जेब ही कट जाए! बीमारियां थीं और बीमार हो जाओगे!
जिंदगी वैसे ही उलझी हुई थी, शराब से सुलझ नहीं जाएगी। गालियां दे दोगे। झगड़े कर लोगे। कुट जाओगे, पिट जाओगे। किसी को पीट दोगे, छुरा मार दोगे--पता नहीं बेहोशी में क्या कर गुजरोगे! इतना तय है कि चिंताएं कम नहीं होंगी; बढ़ जाएंगी। संताप गहन हो जाएगा। फिर और शराब पीना--इसको भुलाने के लिए! अब तुम पड़े दुष्ट-चक्र में।
एक ही उपाय है--जागो, होश से भरो।
अगर दुख हैं, तो उनका भी उपयोग करो। दुख का एक ही उपयोग किया जा सकता है--और वह यह है कि साक्षी बनो। और जितना साक्षीभाव बढ़ेगा, उतना दुख क्षीण होता जाएगा। इधर भीतर साक्षी जगा कि रोशनी हुई, दुख कटा, अंधेरा कटा।
जिस दिन तुम परम साक्षी हो जाओगे, द्रष्टा मात्र, उस दिन जीवन में कोई दुख नहीं। उस दिन जीवन परमात्मा है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आपने पिंकी को उत्तर दिया। उसके बाद मेरी मां ने पिंकी के दोनों हाथ पकड़ कर कहा, "तूने क्यों प्रश्न भेजा? अब तो यह बात रिकार्ड हो गई; सबको पता चल गया! प्रश्न पूछने से पहले हमसे क्यों नहीं पूछा?" यह कह कर उसने पिंकी के दोनों हाथ अपनी गर्दन पर रख लिए और कहा कि "मेरी गर्दन दबा दे; मार डाल!" पिंकी ने कहाः "अगर मैं आपसे पूछती, तो आप मुझे प्रश्न पूछने भी नहीं देतीं!"

संत महाराज! इस तरह का मोह ही तो सारे संसार में छाया हुआ है। मां सोचती होगी कि पिंकी को प्रेम करती है बहुत। वह तो सोचती होगी कि अच्छी भावना से ही वह पिंकी को रोक रही है। लेकिन अज्ञान में अच्छी भावनाएं संभव नहीं हैं। अंग्रेजी में कहावत है कि नरक का रास्ता शुभाकांक्षाओं से पटा पड़ा है!
हम अपनी बेहोशी में अच्छा भी करने जाते हैं, तो बुरा ही होता है--अच्छा नहीं होता। और हम सब बेहोश हैं। तुम्हारी मां बेहोश है। उसने अच्छे के लिए किया होगा कि यह तूने क्या उपद्रव कर दिया! और सबके सामने प्रश्न पूछ कर बदनामी करवा दी! अब लड़का खोजना मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि लड़का कहेगा, इस लड़की को तो शादी करनी नहीं है, तो क्यों झंझट में पडूं! अब तो पता चल जाएगा।

यह बात तुम्हारी मां के अमृतसर पहुंचने के पहले अमृतसर पहुंच जाएगी, क्योंकि अमृतसर में तो मेरा प्रवचन रोज सुनने के लिए लोग इकट्ठे होते हैं। आज यहां बोलता हूं, कल वहां सुनने वाले तैयार हैं। यह रिकार्ड तो वहां पहुंचेगा, इसलिए मां डरी होगी कि बात रिकार्ड हो गई। यह पूरे देश में सुनी जाएगी। लड़का कहीं तो खोजने जाओगे, वहीं यह बात सुनी जाएगी। तो उसको बेचारी को पीड़ा हुई होगी कि यह मुश्किल खड़ी कर दी इसने। पूछा क्यों नहीं मुझसे पहले!
अब पिंकी भी ठीक कहती है कि "अगर मैं आपसे पूछती, तो आप मुझे प्रश्न पूछने ही न देतीं।" उसकी भी मजबूरी है। इतनी स्वतंत्रता ही कहां देते हैं हम बच्चों को कि वे हमसे ईमानदार व्यवहार कर सकें। हम बड़े अजीब लोग हैं! हम चाहते हैं--बच्चे सब कुछ हमसे पूछ कर करें। बुरी चाह नहीं है। लेकिन जब पूछते हैं, तब हम उन्हें करने नहीं देते। तो हम विरोधाभास खड़ा कर रहे हैं। बच्चे छोटी-छोटी बातें पूछते हैं, तो भी नहीं करने देते! छोटा सा बच्चा मां से कहता है, "मैं बाहर जरा खेल आऊं?" "नहीं"। "नहीं" तो हमारी जबान पर रखा है। "नहीं" का मजा है एक। "नहीं" में ताकत मालूम पड़ती है, कि देखो, किसका बल है।
"नहीं" हमसे एकदम निकलता है। "हां" बड़ी मुश्किल से निकलता है--उन बातों में भी जिनमें "हां" निकलना ही चाहिए! अब बच्चे को बाहर खेलना है-- सूरज की रोशनी में, हवा में, वृक्षों के तले। "नहीं" कहने की क्या जरूरत है! लेकिन मां अपने "नहीं" के लिए भी तर्क खोजती है--कि कहीं गिर पड़े! झाड़ पर चढ़ जाए! कुछ चोट खा जाए! ये सब बहाने खोज रही है वह।
"नहीं" का मजा और है। मजा यह है कि कौन ताकतवर है! मेरी चलती है यहां। लेकिन बच्चे भी इतनी आसानी से तो नहीं छोड़ देंगे। वह बच्चा शोरगुल मचाएगा। पैर पटकेगा। चीजें तोड़ेगा। किताब फाड़ देगा। आखिर में घबड़ा कर मां कहेगी कि "जा बाहर खेल!" यही बात बेचारा वह पहले से पूछ रहा था। मगर सीधे अंगुली घी निकलता नहीं!
तो हम छोटे-छोटे बच्चों को राजनीति सिखा देते हैं। बच्चा पूछेगा कि "मित्र के घर चला जाऊं?" "नहीं!" तो फिर वह उपद्रव खड़े करेगा। फिर वह मौके की तलाश में रहेगा। घर में मेहमान आएंगे, तब वह भारी उपद्रव मचा देगा। और मेहमान आने के पहले मां समझाएगी कि घर में मेहमान आ रहे हैं, देख, उपद्रव मत मचाना। मगर वही अवसर है उसके लिए निकल भागने का--कि घर में जब मेहमान आए, तो वह इतना उपद्रव मचा दे कि मां को कहना ही पड़े कि जा, पड़ोस में किसी के घर खेल। हाथ जोड़ती हूं--"अभी तू यहां से जा!" यह बेचारा वह पहले ही से कह रहा था। मगर पहले जाने न दिया। पहले "नहीं" का मजा लिया! तो बच्चा भी मजा चखाएगा!
बच्चे भी समझ जाते हैं धीरे-धीरे कि तुम्हारी सहने की सामर्थ्य कितनी है। हर बच्चे को पता है कि मां कितनी दूर तक बरदाश्त कर सकती है। पिता कितनी दूर तक बरदाश्त कर सकता है। वह वहीं तक खींचेगा। खींचता जाएगा। एक बरदाश्त की सीमा आ जाती है। तुम्हें खुद ही कहना पड़ेगा कि "बाबा, हाथ जोड़े। जा, जो करना हो कर!"
मैं बचपन में बड़े बाल रखता था। मुझे बहुत शौक था बड़े बाल का। इतने बड़े बाल कि मेरे पिता को अड़चन होती थी। स्वभावतः होती थी। मैं उनकी अड़चन भी समझता था। मगर मुझे बड़े बाल पसंद थे। अब उनकी अड़चन देखूं कि अपनी पसंद देखूं!
उनकी अड़चन यह थी कि घर में और तो कोई खास जगह थी न, तो उनकी दुकान पर ही मैं बैठा रहता था। उनके ग्राहक आते, वे पूछते, "यह लड़की किसकी है?" इससे उनको बड़ी अड़चन होती थी, कि लड़का है--और जो देखो, वही कहता है कि "लड़की किसकी!"
तो वे मुझसे कहते कि "तू बाल कटवा ले।" एक दिन बहुत गुस्से में आ गए। जिंदगी में एक ही दफा उन्होंने मुझे चांटा मारा। और चांटा मार दिया कि दिन भर की झंझट! किस-किस को समझाऊं कि लड़का है--लड़की नहीं! और जो देखो, वही तुझे लड़की समझता है। ये बालों की वजह से तेरी झंझट, हमारी झंझट हुई जा रही है!

तो मैंने कहा कि "तुम्हें क्या दिक्कत है! लड़की ही सही। मुझे कोई दिक्कत नहीं है। मुझे बड़े बाल पसंद हैं। और लड़की कहते हैं, तो लड़की ही सही। कोई लड़की मैं हुआ नहीं जा रहा हूं उनके कहने से। तुम्हें इतनी क्या परेशानी है!" मगर उन्हें परेशानी थी इसकी। लड़के की बात ही और होती है। लड़की की कोई गिनती? अरे, लड़का होता है, तो लोग बैंड-बाजे बजाते हैं। लड़की होती है--मातम छा जाता है! एकदम उदासी छा जाती है--कि लड़की हो गई! भाग्य फूट गए।
उन्होंने मुझे चांटा मार दिया कि बाल कटाने ही पड़ेंगे। मैंने कहाः "ठीक है।"
मैं जाकर सिर घुटा आया। करना क्या!
अब एक दूसरी मुसीबत शुरू हो गई। क्योंकि मेरे उस इलाके में बच्चों के सिर तभी घोंटे जाते हैं, जब बाप की मृत्यु हो जाए। सो लोग पूछने लगे, "इस बच्चे का बाप मर गया! क्या हुआ?" अब वे उन्हीं से पूछें!
उन्होंने कहाः "तूने और मेरी मुसीबत कर दी। बाबा तू अपने बाल ही बढ़ा ले! लड़की कम से कम था, ठीक था। इसमें हम तो कम से कम जिंदा थे। अब जो देखो वही पूछता है कि इस लड़के का बाप मर गया बेचारे का--क्या हो गया! अनाथ हो गया अभी से। भोला-भाला छोटा सा लड़का! इसके बाप का क्या हुआ!"
तो उनको समझाना पड़े कि "मैं जिंदा हूं!" तो वे कहें, "इसके बाल कैसे कट गए?"
तो अब यह और एक लंबी कथा हो गई। बताना पड़े पूरी कथा कि मामला यह है। पहले तो इतना ही था कि बता देते थे कि लड़का है भई; बाल बड़े हैं। अब यह सारी पूरी कथा बतानी पड़े कि मैंने इसको चांटा मार दिया; इसने बाल पूरे कटवा आया।
नाई भी कोई काटने को राजी नहीं था, क्योंकि नाइयों की दुकान--छोटा गांव--मेरी दुकान के सामने ही सारे नाइयों की दुकान! इस नाई के पास गया, उस नाई के पास गया! कोई नाई काटने को राजी नहीं। मगर एक अफीमची नाई था--नत्थू नाई। वह किसी के भी काट दे। तुम दाढ़ी कटवाने जाओ, वह बाल काट दे। तुम बाल कटवाने जाओ, वह दाढ़ी काट दे!
जब मैं उसके पास गया, उसने कुछ पूछा ही नहीं। उसने जल्दी से कपड़ा बांधा और सिर घोंट दिया! बाद में पूछा कि "क्या तेरे पिता चल बसे?" मैंने कहाः "नहीं, कोई चल बसा नहीं।" तो उसने कहाः "तूने मुझे झंझट में डाला। पहले क्यों नहीं बताया!" मैंने कहाः "तुम पहले पूछते।"

उसने कहा कि "दुनिया जानती है कि मैं अफीमची हूं। मैं अपनी पीनक में रहता हूं। यह तो जब मैंने तेरा सिर घोंट दिया, तब मुझे ख्याल आया कि यह है कौन! बात क्या है? अब तू अपने पिता को मेरा नाम मत बताना। इतना हाथ जोड़ता हूं। पैसे वगैरह मुझे चाहिए नहीं। बस, नाम भर मेरा मत बताना। नहीं तो मुझसे झंझट होगी--कि तुमने क्यों इसके बाल काटे?"
वे जरूर पीनक में रहते थे। उनके पास कटवाने ही लोग जाते थे, जिनको पैसे वगैरह नहीं देने हों, वे ही उनके पास बाल कटवाने जाते थे।
कभी किसी के आधे बाल काट दें वे--और चले गए! दो घंटे नदारद! वह बैठा ही
है आदमी। वे दो घंटे बाद लौटे कि भूल ही गए!
मैंने उनसे कहा कि "अगर आप इस तरह मेरे साथ व्यवहार करेंगे, तो फिर मैं
भी इसी तरह व्यवहार करूंगा।" मैंने कहाः "यह झंझट ही मिटाओ। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी! अरे, जब बाल बड़े होने से लड़की होने की झंझट है, तो बाल खतम ही कर दो।"
बस, उन्होंने फिर कभी मुझे चाटा नहीं मारा। मारा ही नहीं फिर। फिर मुझसे उन्होंने कभी कोई झंझट नहीं की। जो मैं कहूं, हां भर देते थे कि "जा, जो तुझे ठीक लगे--कर।"
लेकिन अड़चन यह है कि "नहीं" कहने में एक मजा होता है। अहंकार का मजा!
अब पिंकी की मां कहती है कि "मुझसे क्यों नहीं पूछा?"

पूछे क्या बेचारी! जानती है जिंदगी भर से कि पूछने से तो "हां" होने वाला नहीं था। और अगर "हां" कहना ही था उसके पूछने पर, तो फिर उसके पूछने में एतराज क्या है!
और इतनी स्वतंत्रता भी नहीं है कि कोई प्रश्न पूछ सके! यह कैसा प्रेम?
यह प्रेम नहीं है, यह मोह है। यह झूठा प्रेम है।
उसने कुछ गलत बात तो न पूछी थी। हृदय का भाव पूछा था। उसने पूछा था, "आपके संन्यासियों में कैसे खो जाऊं? यह रंग मुझ पर भी कैसे छा जाए?"
क्या बुरा था! कुछ बुरी बात तो न पूछी थी। कुछ चोर न होना चाहा था। कोई डाका न डालना चाहा था। लेकिन बड़ी अड़चन है।
संन्यास से लोग ज्यादा डरते हैं। लड़का शराबी हो जाए--चलेगा। जुआरी हो जाए--चलेगा। वेश्यागामी हो जाए--चलेगा। संन्यासी भर न हो! संसार में सब चलेगा; संन्यासी भर न हो!
संन्यास से हम ऐसे घबड़ा गए हैं! क्योंकि संन्यास का अर्थ होता है कि
यह हम से आगे जाने लगा! हम से ऊपर जाने लगा! जो हम न कर पाए, वह यह करने लगा! इससे अहंकार को बड़ी चोट पड़ती है।
पति शराबी हो, जुआरी हो--पत्नी बरदाश्त कर लेगी। सच तो यह है कि पत्नियों को मजा आएगा--पति अगर शराबी हो, जुआरी हो। क्यों? क्योंकि पत्नी ऊपर हो जाएगी। पति जब भी आएगा घर में दुम दबा कर आएगा। और पत्नी जब देखो, उसकी छाती पर चढ़ी रहेगी कि देखो, तुम शराब पीना बंद करो। कि देखो, तुम जुआ खेलना बंद करो। कि यह बात गलत है, जो तुम कर रहे हो! इसमें पत्नी धार्मिक हो जाती है, नैतिक हो जाती है। और पति बेचारा एकदम पशु की गति में हो जाता है! स्वभावतः मजा आता है अहंकार को।
पति अगर संन्यस्त हो जाए, तो पत्नी के अहंकार को चोट लगती है--भारी चोट लगती है। उसका मतलब यह है कि "तुम मुझसे आगे जाने की हिम्मत कर रहे हो!" पत्नी संन्यस्त हो जाए, तो पति को चोट लगती है कि "यह मुझसे ऊपर उठी जा रही है!"
हम बुरे आदमी को बरदाश्त कर लेते हैं; अच्छे आदमी को बरदाश्त करना और क्षमा करना बहुत कठिन है।
अब पिंकी ने कुछ गलत बात तो नहीं पूछी थी। कुछ पाप तो नहीं किया था। और अगर उसने अपने हृदय का सच्चा-सच्चा भाव कहा, तो उचित है कि कह ही देना चाहिए। अगर उसे विवाह नहीं करना है, तो तुम जबरदस्ती उस पर विवाह थोप दोगे, तो जिंदगी भर तुम्हें कोसेगी। जिंदगी भर पीड़ित रहेगी। हालांकि तुम उसके भले के लिए ही कर रहे हो। मगर भला होगा नहीं। तुम्हारी भली आकांक्षा अनिवार्य नहीं है कि भलापन लाए। तुम अगर जबरदस्ती उस पर विवाह थोप दो, तो वह जिंदगी भर दुखी रहेगी, और तुम्हें कभी क्षमा न कर पाएगी। मौका दो-- प्रत्येक व्यक्ति को हक दो जीने का।
और कोई छोटी नहीं है वह। कोई बच्ची नहीं है। सोच सकती है। विचार सकती है। मेरा तो ख्याल था सत्रह अट्ठारह साल की होगी। लेकिन चौबीस साल की है, सत्रह अट्ठारह साल की नहीं। सरल है, इसलिए मुझे लगा कि उम्र कम होगी। चौबीस साल की है। अब चौबीस साल! करीब-करीब जिंदगी का एक तिहाई हिस्सा जी चुकी। अगर पचहत्तर साल की उम्र हो, तो पच्चीस साल एक तिहाई हिस्सा हो गया। कब तुम उसे मौका दोगे कि कम से कम अपना प्रश्न पूछ सके, अपना भाव प्रकट
कर सके! समझने की चेष्टा कर सके! इतनी भी आजादी अगर प्रेम न दे, तो यह कैसा प्रेम है!
तुमने पूछा है संत कि "आपने पिंकी को उत्तर दिया। उसके बाद मेरी मां
ने पिंकी के दोनों हाथ पकड़ कर कहा--तूने क्यों प्रश्न भेजा? अब तो यह बात रिकार्ड हो गई। सब को पता चल गया। प्रश्न पूछने से पहले हम से क्यों नहीं पूछा?"
क्यों पूछे तुमसे? आत्मा उसके भीतर भी है। हृदय उसका भी अपना है। तुमने उसके शरीर को जन्म दिया, इसका यह अर्थ नहीं कि तुम उसकी आत्मा के मालिक हो गए! बच्चों को जन्म दो, लेकिन बच्चे तुम्हारे नहीं हैं; परमात्मा के हैं। इसे कभी भूल मत जाना। बच्चों को प्रेम दो, लेकिन प्रेम बंधन नहीं है; प्रेम स्वतंत्रता देता है।

बच्चों को सम्मान भी दो, अगर चाहते हो कि वे तुम्हें सम्मान दें। लेकिन इस देश में तो बड़ी उलटी धारा है। इस देश में कोई सोचता ही नहीं कि बच्चों का भी कोई सम्मान है। फिर ये बच्चे बड़े होकर बूढ़े मां-बाप को अगर सताते हैं, तो क्या गलत करते हैं! ये उत्तर दे रहे हैं। जो तुमने इनके साथ किया, वही ये तुम्हारे साथ कर रहे हैं। जब ये कमजोर थे, छोटे थे, बच्चे थे, तुमने इन्हें सताया। अब ये बड़े हो गए, अब तुम बूढ़े हो गए, तुम कमजोर हो गए, अब ये तुम्हें सताएंगे। वही गणित है। जो कमजोर है, वह सताया जाएगा। ताकतवर उसे सताएगा।
फिर मां-बाप रोते हैं कि बेटे सता रहे हैं। बेटियां सता रही हैं। बहुएं सता रही हैं। हमारी सुनते नहीं हैं! हमें बिल्कुल यूं कर दिया है एक किनारे, जैसे हम हैं ही नहीं! लेकिन तुमने इनके साथ क्या किया था, जब ये छोटे-छोटे बच्चे थे, जब इनकी कोई ताकत न थी, जब ये असहाय थे, जब ये तुम्हारे ऊपर निर्भर थे, तब तुमने इन्हें प्रश्न भी न पूछने दिया। तब इन्हें तुमने इतनी भी स्वतंत्रता न दी कि अपने मन की बात कह सकें! तो फिर स्वभावतः ये तुम्हें भी इसका बदला चुकाएंगे। और फिर कष्ट होता है।
बच्चों को सम्मान दो, अगर चाहते हो कि बच्चे भी तुम्हें सम्मान दें। सम्मान के उत्तर में ही सम्मान मिल सकता है। लेकिन हर मां-बाप बुढ़ापे में दुखी होते हैं कि बच्चे फिकर नहीं करते! तुमने जिस ढंग से इनकी फिकर की थी, उसने सब जहर कर दिया; उसने बात ही खराब कर दी।

लेकिन मनुष्य-जाति अब तक ऐसे ही जीती आई है। इसी गलत रवैये से। यह हमारे खून-हड्डी-मांस-मज्जा का हिस्सा हो गया है--यह गलत रवैया।
और यह कह कर पिंकी की मां ने पिंकी के दोनों हाथ अपनी गर्दन पर रख दिए
और कहा, "मेरी गर्दन दबा दे; मार डाल!" यह भी कोई बात हुई! और कौन इतनी जल्दी मरता है!
संत संन्यासी हो गए, तब मां नहीं मरी। कोई मरता है ऐसे! मेरे डेढ़ लाख संन्यासी हैं। एक मां नहीं मरी! एक बाप नहीं मरा! और हालांकि सब यही कहते हैं कि मर जाएंगे! ये धमकियां झूठी हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है। मगर धमकियों से तुम दबा लोगे, तो यह गलत व्यवहार है, अमानवीय व्यवहार है। कौन मरता है! संन्यास की तो बात छोड़ो, अगर बेटी मर भी जाए, तो कोई मां मरती है? तुमने सुना कभी कि बेटी मर गई, और मां ने आत्महत्या कर ली हो बेटी के मरने से? सच तो यह है, मां कहेगी, "चलो, झंझट छूटी! कहां खोजते लड़का? कहां से दहेज लाते? क्या करते? चलो, झंझट मिटी।" कहे न ऊपर से, मगर भीतर जानेगी कि चलो, एक झंझट मिटी।
लड़का मर जाए, तो कौन मरता है! मरने से भी कोई नहीं मरता। और इसने प्रश्न ही पूछ लिया, इसमें गर्दन दबाने की बात आ गई! मगर ये धमकियां हैं। हम छोटे बच्चों को बहुत धमकाते हैं। यह व्यवहार उचित नहीं। यह व्यवहार बिल्कुल ही गलत है। यह हिंसा है। और स्वभावतः इस हिंसा का उत्तर क्या होगा! लड़की के हृदय में क्या भाव उठेगा तुम्हारे प्रति? सम्मान उठेगा? मां के प्रति आदर का भाव पैदा होगा--कि दुश्मनी पैदा होगी?
सोचो जरा। देखो जरा। इसका परिणाम क्या होगा? पिंकी समझेगी कि तुम उसे प्रेम करती हो? समझेगी कि तुम्हारा जरा भी प्रेम नहीं है। धमकी में कहीं प्रेम हो सकता है? भय पैदा हो जाता है। मगर हमारे ये तर्क रहे अब तक।
बाबा तुलसीदास कह गए हैं--"भय बिनु होय न प्रीति"--भय के बिना प्रीति नहीं होती! यह एक वचन काफी है सिद्ध करने को कि तुलसीदास को कोई जीवन का अनुभव नहीं है। महाकवि थे, लेकिन कोई बुद्धपुरुष नहीं।
भय से कहीं प्रीति पैदा होती है? असंभव। यह तो जहर से अमृत पैदा करने
की बात हो गई! भय से तो अप्रीति पैदा होती है, घृणा पैदा होती है। जिसको भी तुम भयभीत करोगे, वह तुम्हारे प्रति घृणा से भर जाएगा। कहे, न कहे; आज न कहे, तो कल कहेगा। ऐसे नहीं कहेगा, तो वैसे कहेगा। कोई न कोई तरकीब निकालेगा। और नहीं भी तरकीब निकली, तो भी उसके भीतर तो तुम्हारे प्रति घृणा भर जाएगी।

पिंकी से क्षमा मांगना। यह बात तो गलत है। मगर यही फैलती जाती है। हमारी जिंदगी का तर्क हो गया है। ये बेहोशी में ही करते हैं हम। यह मां ने कुछ जान-बूझ कर नहीं किया। यह हमारा हिसाब बैठ गया है कि इस तरह से काम होता है। दबा दो! मगर अपने बच्चों को दबाना, तो फिर किसको तुम प्रेम करोगी? किसको सम्मान दोगी?
अब मैं संत के पिता को देखता हूं, उनकी आंखों को देखता हूं। उनकी गीली आंखों को देखता हूं। और मैं जानता हूं कि वे संन्यास में डूब सकते हैं। लेकिन यह पिंकी की मां! जब पिंकी को स्वतंत्रता नहीं दे रही--और पिंकी से कह रही है--"मेरी गर्दन दबा दो"--तो यह पति को स्वतंत्रता देगी! असंभव। यह तो बहुत तूफान मचा देगी। बड़ा उपद्रव हो जाएगा। अभी पिंकी तो नई-नई है जगत में, इसलिए पूछ गई। पिता तो बेचारे पूछेंगे भी नहीं, कि कौन झंझट मोल ले! अब इतनी गुजार दी है--और गुजार देंगे! अब बहुत हो गई, थोड़ी बची है।
मगर ये भय के नाते, नाते नहीं हैं--जंजाल हैं। प्रेम भय नहीं देता, अभय देता है। प्रेम कहता है--"पूछो। जानो। खोजो। जीयो अपने ढंग से। तुम्हें जो सुंदर और सुखद लगे, हमारा उसमें साथ है। हम पर भरोसा रखो कि हम तुम्हारे पीछे हैं। हम तुम्हें साथ देंगे। तुम्हें अपनी जिंदगी अपने ढंग से बनाने का हक है। हमने अपने ढंग से बनाई जिंदगी; तुम्हें अपने ढंग से बनाने का हक है।"
किसी बच्चे पर आरोपण न करो। यह दुनिया बड़ी सुंदर हो सकती है; इसमें बहुत फूल खिल सकते हैं; इसमें हर बच्चा बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकता है। हर बच्चा इतनी क्षमता लेकर पैदा होता है। लेकिन हम उसकी क्षमता को काटते जाते हैं। और कैसे-कैसे ढंग से काटते हैं!
अब पिंकी को हमने अपराध भाव पैदा करवा दिया। अब मां ने उसे इतना डरा दिया कि वह सोचेगी कि यह बात ही पूछ कर उसने पाप किया! नहीं पूछना था। क्यों मां को दुखी कर दिया--और इतना दुखी कि मां आत्महत्या करने को उतारू हो रही है--कि मेरी गर्दन दबा दो! हालांकि यह सब बकवास है। कोई न गर्दन दबाता है। न कोई मरता है।
लेकिन बच्चे इतने से डर जाएंगे, घबड़ा जाएंगे। स्वभावतः अपनी मां को कौन मारना चाहता है! और मां को कौन दुखी करना चाहता है! तो इस भय में पिंकी राजी हो जाएगी। तुम जैसा कहोगे, वैसा ही करेगी। लेकिन तुम इसकी जिंदगी भर को विकृत कर दोगी।
मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा डाक्टर जिसकी सर्जरी सारे जगत में विख्यात थी, जब पचहत्तर वर्ष का हुआ और रिटायर होने लगा, क्योंकि अब उसके हाथ थोड़े-थोड़े कंपने लगे थे। और सर्जन के हाथ नहीं कंपने चाहिए। तो उसके सारे शिष्यों ने... उसके बहुत से विद्यार्थी थे, जो खुद भी बहुत प्रख्यात डाक्टर थे--उन सबने एक समारोह किया।
करीब-करीब अंतर्राष्ट्रीय समारोह था। क्योंकि सारी दुनिया में उसके शिष्य थे। सब इकट्ठे हुए। उन्होंने उत्सव मनाया--नाच-गाना हुआ। शराब बही। भोजन! लेकिन देख कर सब हैरान हुए कि वह वृद्ध डाक्टर बड़ा उदास है! उसके एक विद्यार्थी ने पूछाः जो अब खुद बड़ा डाक्टर हो गया था, कि "आप इतने उदास क्यों हैं? हम तो समारोह मना रहे हैं आपके सम्मान में। आपका विदा समारोह! और आप उदास?"
उसने कहाः "मैं उदास इसलिए हूं कि मैं कभी डाक्टर होना ही नहीं चाहता था। मैं तो चाहता था नर्तक होना। लेकिन मेरे मां-बाप ने मुझे जबरदस्ती मेडिकल कालेज में भर्ती करवा दिया--मेरी इच्छा के खिलाफ। मेरी जिंदगी बेकार गई।"
चकित हुए उसके विद्यार्थी। उन्होंने कहाः "आप क्या कहते हैं! इतने ख्याति प्राप्त आप हैं! आपकी जिंदगी बेकार गई!"
उसने कहाः "ख्याति का क्या करूं? नाम का क्या करूं? जो मैं होना ही नहीं चाहता था, वह हो कर मैं क्या करूं? मैं जगत विख्यात चिकित्सक होने की बजाय बिल्कुल अज्ञात-नाम नर्तक होना पसंद करता। वह मेरे हृदय का भाव होता। वह मेरी आत्मा की अभिव्यक्ति होती। न कोई मेरा नृत्य देखता--कोई चिंता नहीं। मगर मेरे फूल तो खिलते। मैं खिला ही नहीं। मैं एक उधार जिंदगी

जीता रहा। मां-बाप तो कब के मर चुके, मगर मुझे फंसा गए। फिर बात इतनी देर हो गई थी कि अब नर्तक तो हो नहीं सकता हूं। यह जिंदगी तो गई! अगर कोई अगली जिंदगी होगी, तो अब नहीं सुनूंगा।"
तुम थोड़ा सोचो, अगर बुद्ध के मां-बाप ने बुद्ध को रोक लिया होता! पता नहीं चला उनको, नहीं तो रोकते ही। बुद्ध भी रात चुपचाप भाग गए थे। जानते थे कि अगर चुपचाप न गए, तो मुश्किल हो जाएगी।
यशोधरा को, अपनी पत्नी को भी कुछ नहीं कहा। गए थे उसके कमरे तक, द्वार तक। द्वार से झांक कर देखा था। क्योंकि नया-नया बेटा पैदा हुआ था। जाने के पहले एक दफा बेटे को देख लेना चाहते थे।
अपने बेटे को बुद्ध ने नाम दिया था--"राहुल"। "राहुल" बनता है "राहु" से! बुद्ध ने नाम "राहुल" इसीलिए दिया था कि वे संन्यासी की तैयारी कर रहे थे और बेटा पैदा हुआ! तो उन्होंने सोचा कि यह तो ऐसे है, जैसे कि चांद पर राहु लग जाए। अब यह बेटे का मोह मुझे कहीं रोक न ले! इससे अपने को सचेत रखने के लिए उसको राहुल नाम दिया था--कि यह कहीं बेटे का मोह मेरे ऊपर राहु बन कर न छा जाए! कहीं मुझे ग्रहण न लग जाए!
जाते-जाते एक दफा देख लेना चाहते थे कि बेटे का चेहरा तो देख लूं--फिर दोबारा मौका मिले न मिले! मगर बेटा मां की छाती से लगा सोया था। उसका चेहरा नहीं देख पाए। और भीतर जाने की हिम्मत नहीं की कि अगर बेटे का चेहरा देखने की कोशिश की और अगर यशोधरा जाग गई, तो अड़चन हो जाएगी--कि आधी रात तुम कहां जा रहे हो? कहां की तैयारी है? रथ किसलिए तैयार है? तुमने ये वस्त्र घर से बाहर जाने के क्यों पहन रखे हैं? और आधी रात बेटे को देखने क्यों आए हो? सुबह क्यों नहीं आ सकते थे? कहीं कोई झंझट खड़ी न हो जाए! घर जाग न जाए! चुपचाप, बिना बेटे को देखे चले गए।
और बारह साल बाद जब बुद्धत्व को पाकर लौटे, तब भी बाप नाराज थे! पत्नी नाराज थी! बारह साल बाद यह बेटा एक जीता-जागता सूरज होकर लौटा था, लेकिन बाप को नहीं दिखाई पड़ रहा था। बाप तो एकदम गुस्से में थे। एकदम चिल्लाने लगे। नाराज होने लगे। मोह ऐसा है!
बुद्ध खड़े सुनते रहे। घड़ी भर सब सुना। और फिर अपने पिता को कहा कि "एक बार मुझे गौर से तो देखें। मैं वही नहीं हूं, जो गया था। कोई और हूं। कुछ और होकर आया हूं। नया होकर आया हूं। कुछ संदेश लेकर आया हूं। कुछ सत्य ले कर आया हूं। कुछ पाया है, वह आपको भी देना चाहता हूं। इसीलिए आया हूं कि कहीं आपकी जिंदगी बेकार न चली जाए। मैंने तो उपलब्ध कर लिया। मैं तो भरा पूरा हो गया। आप अभी भी खाली हैं। इसलिए आया हूं। कहें तो लौट जाऊं। मगर एक बार मुझे आंख खोल कर तो देख लो। आंखों से आंसू हटाओ, क्रोध हटाओ, ताकि मुझे देख सको।"
बुद्ध के बाप तो गुस्से में थे। और गुस्से में आ गए कि "तू समझता क्या है! हमने ही तुझे पैदा किया; मेरा ही खून है तू, और मुझसे कहता है कि हमें गौर से देखो! क्या मैं तुझे पहचानता नहीं?"
बुद्ध ने कहाः "आप जरूर पहचानते हैं। लेकिन जिसे आप पहचानते थे, वह अब मैं रहा नहीं। मैं एक क्रांति से गुजर गया।"
बाप ने कहाः "जा-जा। ये बातें किसी और को बताना! ये किन्हीं और को समझाना। तू वही है। मैं तेरे चेहरे को देख रहा हूं।" बुद्ध ने कहाः "चेहरा वही है, मैं वही नहीं हूं। और आपको मैं इतनी याद दिला दूं कि आप यह भ्रांति छोड़ दें कि मैं आपसे पैदा हुआ। आपसे गुजरा जरूर। आपसे आया जरूर। आप माध्यम थे। लेकिन आप मेरे मालिक नहीं हैं। आप मेरे स्रष्टा नहीं हैं। स्रष्टा तो कोई और! कोई परम अज्ञात शक्ति!"
यह बात सुन कर बाप थोड़े चौंके। गौर से देखा! बात सच थी। चेहरा तो वही है, मगर आभा बदल गई है। संन्यस्त हुए।
शायद वह पहली घटना थी--बाप ने बेटे से संन्यास लिया। फिर बुद्ध यशोधरा
के पास गए।
आनंद, उनका भिक्षु, उनका शिष्य सदा उनके साथ रहता था--छाया की तरह। बुद्ध ने उससे कहा, "आनंद, तू थोड़ा पीछे छूट जा, क्योंकि अगर तू मौजूद रहेगा, तो यशोधरा बड़े कुलीन घर की लड़की है, तेरी मौजूदगी में वह कुछ भी न

कहेगी। और बारह वर्षों से उसने कितना क्रोध कर रखा है इकट्ठा, वह मैं जानता हूं। उसका मोह बड़ा था। उतना ही क्रोध भी बड़ा होगा। वह आग में जल रही है बारह वर्षों से। किसी से कहा नहीं है। उसे कह लेने दे। निकल जाने दे। रेचन हो जाने दे। तू जरा पीछे छूट जा। अगर तू साथ ही खड़ा रहा, तो वह कुछ भी नहीं कहेगी। झुककर मेरे पैर छुएगी--और गटक जाएगी सारे क्रोध को। भद्र है। कुलीन है। राजघराने की है। यूं तेरे सामने बात कहेगी नहीं। मुंह नहीं उठाएगी घूंघट नहीं उठाएगी; बात कहने की तो बात और है। तू पीछे छूट जा।" आनंद पीछे रह गया।
और सच आनंद चकित हुआ यह जान कर कि वह एकदम पागल की तरह टूट पड़ी बुद्ध पर। चीखी! चिल्लाई! रोई! नाराज हुई! और जो पिंकी की मां ने कहा पिंकी को कि "तूने मुझसे पूछ कर क्यों नहीं पूछा!" वही यशोधरा ने बुद्ध से कहा कि "तुम मुझसे पूछ कर क्यों नहीं गए? मैं तुम्हारी पत्नी थी, मुझसे पूछने में क्या एतराज था?" बुद्ध ने कहा, "तू यह देख कि अगर मैं तुझसे पूछता--तू जाने देती? बारह वर्षों बाद भी इतनी क्रुद्ध हो रही है तू, उसी रात इतनी क्रुद्ध होती। इतना शोरगुल मचा देती--यही चीख-पुकार--कि सारा घर जाग जाता। पिता आ जाते। परिवार आ जाता। जाना मेरा मुश्किल हो जाता। क्षमा मांगता हूं--कि तुझसे बिना पूछे गया। लेकिन अब शांत हो और मैं तेरे लिए कुछ भेंट लाया हूं, वह स्वीकार कर। अगर घर में ही रह जाता, तो यह भेंट मैं कभी ला नहीं सकता था। यह सत्य लाया हूं तुझे देने। यह आनंद लाया हूं तुझे देने। झोली फैला और मैं जो देने आया हूं, वह ले। खाली हाथ नहीं आया हूं। और अब मैं जो लाया हूं, अगर तू ले सकी, तो तू समझेगी कि मेरा जाना योग्य था।"
और यशोधरा ने बाद में क्षमा मांगी। जब समझी--संन्यस्त हो गई। और उसने क्षमा मांगी कि "मुझे माफ कर दो। मैंने अपने मोह में, अपने अज्ञान में जो बातें कहीं--एक बुद्धपुरुष से ऐसी बातें कहीं--मुझे क्षमा कर दो! भूल जाओ। विस्मरण कर दो।"
बुद्ध ने कहाः "मैंने उनको लिया ही नहीं। मैं तो तुझे अवसर दिया था, ताकि तेरा उभार निकल जाए, उफान निकल जाए, तो तू शांत हो सके। आया ही इसलिए, नहीं तो आता ही नहीं--कि जिनको मैंने चाहा है, उनको जब आनंद मुझे मिला है, तो बांटूं। पहले उन को बांटूं, फिर किसी और को बांटूं। तेरी सुध भूला नहीं हूं। तेरा अधिकार पहला है। लेकिन अगर तू कहती है कि पूछ कर जाना था, तो मैं कभी जा ही नहीं सकता था।"
यह शाश्वत कथा है। यह सदा की बात है।
पिंकी की मां ने जो किया, वह कोई भी मां करती। हालांकि किसी भी मां को करना नहीं चाहिए। मूर्च्छा में, बेहोशी में!
लेकिन संत, चिंता न लो। जो भी होता है, अच्छा होता है। इससे पिंकी को
भी समझ आएगी। पिंकी की मां को भी समझ में आएगी। तुम्हारे पिता को भी कुछ बात समझ में आएगी। कुछ इसमें चिंता लेने की बात नहीं है। यूं ही तो समझ आती है। कंटकाकीर्ण मार्ग है, इसी से चल कर तो मंजिल करीब आती है। हंगामा तो मचेगा... !
हंगामा है क्यों बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है।
डाका तो नहीं डाला, चोरी तो नहीं की है।।
ना-तजुर्बा-कारी से, वाइज की ये बातें हैं।
इस रंग को क्या जाने, पूछो तो कभी पी है?
पिंकी की मां भी क्या करे! उसने कभी यह रंग पीया नहीं। उसने कभी यह ढंग जाना नहीं। जो जाना है, जो भाषा उसने सीखी है--गृह की, परिवार की, गृहस्थी
की--वही तो अपने बच्चों को सिखाएगी। और तो उपाय भी नहीं हैं!
हंगामा है क्यों बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है।
डाका तो नहीं डाला, चोरी तो नहीं की है।।
ना-तजुर्बा-कारी से, वाइज की ये बातें हैं।
इस रंग को क्या जाने, पूछो तो कभी पी है?
उस मय से नहीं मतलब, दिल जिससे है बैगाना।
मकसद है उस मय से, दिल ही में जो खिंचती है।।
वां दिल में, कि सदमे दो, यां जी में, कि सब सह लो।

उनका भी अजब दिल है, मेरा भी अजब जी है।।
हर जर्रा चमकता है, अनवारे-इलाही से।
हर सांस ये कहती है, हम हैं तो खुदा भी है।।
सूरज में लगे धब्बा, फितरत के करिश्मे हैं।
बुत हमको कहें काफिर, अल्लाह की मर्जी है।।
हंगामा है क्यों बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है।
डाका तो नहीं डाला, चोरी तो नहीं की है।।
पिंकी ने कुछ बुरा तो नहीं किया। कोई डाका नहीं डाला। कोई चोरी नहीं की। थोड़ा सा अपना पात्र बढ़ाया, कि मैं भी पीऊं; कि मैं कैसे डूब जाऊं। उसके प्रश्न में उसने अपने पात्र को ही बढ़ाया था कि थोड़ा-सा मैं भी पी लूं।
लेकिन मां का भी कोई कसूर नहीं।
ना-तजुर्बा-कारी से, वाइज की ये बातें हैं।
इस रंग को क्या जाने, पूछो तो कभी पी है?
हम तो वही कह सकते हैं, जो हमने जाना है, जो हमने पहचाना है। संभव है इस बहाने, पिंकी के बहाने, उसको भी समझ आए। समझ तो सबको आ सकती है। समझ सबका जन्मसिद्ध अधिकार है। मगर कोई जिद्द ही बांध कर बैठ जाए, तो बात अलग। अगर कोई अंधे होने की कसम ही खा ले, तो बात अलग। कोई अगर आंख बंद करने के लिए तय ही कर लिया हो, तो बात अलग। अन्यथा यहां तो बातें सीधी-साफ हैं।
किसी से मेरी मंजिल का पता पाया नहीं जाता।
जहां मैं हूं, फरिश्तों से वहां आया नहीं जाता।
मेरे टूटे हुए पाए-तलब का, मुझ पे एहसां है।
तुम्हारे दर से उठ के अब कहीं जाया नहीं जाता।।
चमन तुमसे इबारत हैं, बहारें तुमसे जिंदा हैं।
तुम्हारे सामने फूलों से मुर्झाया नहीं जाता।।
हर इक दागे-तमन्ना को कलेजे से लगाता हूं।
कि घर आई हुई दौलत को ठुकराया नहीं जाता।।
मोहब्बत के लिए कुछ खास दिल मखसूस होते हैं।
ये वो नग्मा है जो हर साज पर गाया नहीं जाता।।
यह तो प्रेम का एक अलग ही जगत है। संन्यास जीवन को जीने की एक अलग ही
शैली है।
मोहब्बत के लिए कुछ खास दिल मखसूस होते हैं।
ये वो नग्मा है जो हर साज पर गाया नहीं जाता।।
तैयारी चाहिए इस साज की। साज को पहले बिठालना पड़ता है। तार कसने होते हैं। और जिंदगी सबके साजों को बिगाड़ जाती है। जिंदगी सब के साजों को गलत पाठ पढ़ा जाती है। या तो किसी के तार बहुत कस जाती है कि छुओ, तो टूट जाएं।
या किसी के तार बहुत ढीले कर कर जाती है--कि लाख खींचते रहो, संगीत उठे न। लेकिन अगर यहां आ गए हैं तुम्हारे माता-पिता, तुम्हारी बहन किसी बहाने से, तो यूं ही नहीं लौट जाएंगे। चाहे लौट जाएं--मगर यूं ही नहीं लौट जाएंगे। मेरे टूटे हुए पाए-तलब का मुझपे अहसां है
तुम्हारे दर से उठ कर अब जाया नहीं जाता
बड़ी मुश्किल से जाना होगा। और जाएंगे, तो भी मैं पीछा करूंगा। मैं याद आता रहूंगा। पिंकी ने अच्छा किया कि पूछा। कुछ हर्जा नहीं कि मां खिन्न हुई, नाराज हुई। यह स्वाभाविक है। यह साधारण है। इसमें कुछ चिंता की बात नहीं। वह भी पछताएगी।
शायद ईर्ष्या भी जगी हो। शायद सोचा हो कि "पिंकी ने पूछा और मैंने नहीं पूछा! मैं ही पूछ लेती। इसने पात्र बढ़ा दिया और मैं अटकी ही रह गई!" शायद उसी ईर्ष्या में यह बात निकल आई हो। आदमी का मन बड़े उलझनों से भरा हुआ है, बड़े जालों से। उसे खुद भी पता नहीं होता कि किसलिए क्या बात हो जाती है। इतनी बेहोशी! इतनी गहन बेहोशी है!

तीसरा प्रश्नः ओशो, आप राजनेताओं का इतना मजाक क्यों उड़ाते हैं?

नरेंद्रनाथ! राजनेता किसी और काम के हैं भी तो नहीं। करो भी तो क्या करो! मैंने कम से कम उनके लिए काम निकाल लिया! एक बहाना निकाल लिया! उनके होने के लिए भी एक सार्थकता खोज ली! नहीं तो यूं तो बिल्कुल निकम्मे हैं। किसी मतलब के नहीं। किसी मकसद के नहीं। एकदम थोथे। चलो, मैंने कम से कम कुछ तो अर्थ दिया--उनके निरर्थक जीवन को। इसलिए मजाक उड़ाता हूं।
और इसलिए मजाक उड़ाता हूं कि तुम कहीं राजनीति में न पड़ जाना। राजनीति प्रवंचना है।
राजनीति का अर्थ क्या होता है? राजनीति का अर्थ होता है--दूसरों पर कब्जा पाना। पति पत्नी पर कब्जा कर ले। पत्नी पति पर कब्जा कर ले। मां-बाप बच्चों पर कब्जा कर लें। यह सब राजनीति है।
राजनीति से तुम इतना ही मत समझना कि वे जो दिल्ली की तरफ जाते हैं, वे
ही राजनेता हैं। जो भी दूसरे पर कब्जा करता है, वह राजनीति कर रहा है। छोटे पैमाने पर, बड़े पैमाने पर--यह बात और है। जिसकी जितनी हैसियत! मगर दूसरे पर कब्जा करने की कोशिश में राजनीति है। और अपने पर कब्जा करने की कोशिश में धर्म है।
अपनी मालकियत धर्म है--और दूसरे का मालिक होना अधर्म है। राजनीति अधर्म है। और अधर्म का मजाक न उड़ाओ, तो क्या करो!
मजाक उड़ाता हूं, क्योंकि ये अधर्म के जो गुब्बारे हैं, इनको अगर जरा सुई चुभा दो, उतने में ही फूट जाते हैं। मजाक ही काफी है। और बड़ी चोट करने की कोई जरूरत नहीं है।
एक नेता भाषण दे रहे थेः "आप पिछली सारी बातों को भूल जाइए और नए सिरे
से आगे बढ़िए। हमें अब देश को सुनहरे... ।"
उसी समय पीछे से आवाज आई, "भैयाजी, पहले मेरे उधार के सारे रुपए वापस
दे दीजिए, तब सब कुछ पुराने भुलाने की बात कीजिए। अभी नहीं। पुराना कैसे भूल जाऊं? पहले पैसे तो लौटा दो!"
एक सभा में एक सज्जन अपनी पार्टी के नेता की प्रशंसा करते हुए कह रहे थेः "वे सूरज हैं; हम उनकी किरणें हैं। वे समुद्र हैं; हम उनकी लहरें हैं। वे फूल हैं; हम उनकी खुशबू हैं।" बीच में खड़े हो कर मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः "वे कड़ाही हैं और तुम उनके चमचे हो! बाकी सब बकवास है!"
एक नेताजी ने एक बार अपनी पत्नी को अपने दोस्त मुल्ला नसरुद्दीन के साथ पलंग पर लेटे हुए रंगे-हाथों पकड़ लिया। दूसरी बार की बात है, नेताजी के छोटे बच्चे ने उन्हें खबर दी कि "आपके मित्र नसरुद्दीन के साथ दोपहर को मम्मी बैठक रूम में सोफे पर सोई हुई थीं।"
नेताजी को इस बात से काफी क्रोध आया। एक बार गलती माफ की जा सकती है, किंतु दुबारा नहीं। फिर भी वे किसी तरह संयम साध कर चुप रह गए।
फिर तीसरी बार ऐसा हुआ कि नेताजी के आफिस में हड़ताल हो जाने के कारण
वे शाम को जल्दी घर लौट आए। घर में जो देखा, तो उनका गुस्सा आसमान पर चढ़ गया। किचन में डाइनिंग टेबल पर नसरुद्दीन और उनकी पत्नी बिल्कुल दिगंबर पड़े हुए थे।
नेताजी ने गरज कर कहाः "बेशर्मी की भी हद्द होती है। आखिर में कहां तक बरदाश्त करूं! आज कुछ निर्णय लेना ही पड़ेगा। पहले पलंग पर रासलीला होती थी। फिर सोफे पर। अब डाइनिंग टेबल पर हो रही है! कुल-मर्यादा और संस्कृति नाम तो कोई चीज ही नहीं बची। तुम दोनों कान खोल कर अच्छी तरह से सुन लो। यह मेरा आखिरी फैसला है। चौबीस घंटे के अंदर ही मैं सारे उपद्रव की जड़ को ही समाप्त कर के दम लूंगा।" ऐसा चिल्ला कर नेताजी गुस्से में भनभनाते हुए घर से निकल कर चले गए।
दूसरे दिन सुबह वापस आए। पता है उन्होंने क्या किया? घर के सभी पलंग, सोफे, टेबलें, कुर्सियां तथा अन्य फर्नीचर एक कबाड़ी को सस्ते दामों में बेच दिया। और तब चैन की सांस ली। ऐसे उन्होंने जड़ ही काट डाली। न पलंग, न सोफा, न टेबल। अब करो रासलीला! नेताओं के अपने गणित हैं!
तुम्हीं हो भाषण, तुम्हीं हो ताली, दया करो हे दयालु नेता
तुम्हीं हो बैंगन, तुम्हीं हो थाली, दया करो हे दयालु नेता
तुम्हीं हो इंजन, तुम्हीं हो गाड़ी, रहे अनाड़ी के हम अनाड़ी

दिला दो टी.टी. से बर्थ खाली, दया करो, हे दयालु नेता
तुम्हीं पुलिस हो, तुम्हीं हो डाकू, तुम्हीं हो खंजर, तुम्हीं हो चाकू तुम्हीं हो गोली, तुम्हीं दुनाली, दया करो, हे दयालु नेता
तुम्हीं हो चम्मच, तुम्हीं हो चीनी, तुम्हीं ने ओंठों से चाय छीनी पिला दो काफी की एक प्याली, दया करो हे दयालु नेता
तुम्हीं दल-बदलुओं के हो बप्पा, कभी भजन हो, कभी हो टप्पा
सकल भजन मंडली बुला ली, दया करो, हे दयालु नेता
तुम्हीं बाढ़ हो, तुम्हीं हो सूखा, मरे न क्यों फिर किसान भूखा तुम्हीं हो ट्रैक्टर, तुम्हीं हो ट्राली, दया करो हे दयालु नेता पिटे तो तुम हो, उदास हम हैं, तुम्हारी दाढ़ी के दास हम हैं
कभी रखा ली, कभी मुंडा ली, दया करो हे दयालु नेता
और इन नेताओं का करो भी क्या! उपयोग भी क्या है!
नेताजी के पास है
एक बड़ा कमाल
आश्वासन देने और उसे
पूरा न कर पाने के अफसोस के बीच
डालते हैं जेबों में नोट
निकालते हैं खाली रूमाल!
तुमने जादूगर बहुत देखे होंगे; वे खाली रूमाल डालते हैं और नोट निकाल देते हैं। नेता भी जादूगर है। नोट डालता है--खाली रूमाल निकाल देता है!
इन नेताओं से इतना पीड़ित है देश और यही देश नहीं--सारी दुनिया। मगर लोग इतने मूर्च्छित हैं कि उन्हें पता ही नहीं कि किस तरह उनकी जिंदगी को बरबाद किया जा रहा है! कौन लूट रहा है? कौन उनके जीवन को नष्ट कर रहा है? और मजा ऐसा है कि ये नेता सब सेवक हैं। ये नेता तुम्हारे ही हित के लिए चौबीस घंटे संलग्न हैं। और हित किसी का होता नहीं है! अहित ही अहित होता है। इतने हितेच्छू हैं। इतने हितैषी हैं। जगह-जगह, जहां देखो वहीं, गांधी टोपी लगाए हुए, शुद्ध खद्दर पहने हुए, नेतागण चले जा रहे हैं। और हित कहीं होता दिखाई पड़ता नहीं।
अगर दुनिया में थोड़ी समझदारी हो, तो राजनीति अपने आप कम हो जाए। अगर दुनिया में थोड़ा सा ध्यान का विस्तार हो, तो तुम्हें नेताओं की जरूरत न रह जाए। तुम अंधे हो, इसलिए कोई नेता चाहिए। और नेता खुद ही अंधे हैं।
कबीर ने कहा है, "अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत!" अंधे अंधों को मार्गदर्शन दे रहे हैं! खुद अंधे हैं और ठेल रहे हैं अंधों को--कि चले आओ। बढ़े चलो। आगे बढ़े चलो। और कुओं में गिराएंगे, खड्डों में गिराएंगे। खड्डों में गिरा ही दिया है जगह-जगह!
इनका मजाक न उड़ाओ, तो क्या करो! इनकी प्रशंसा करूं? इनके सम्मान में
दो फूल चढ़ाऊं! इनकी कब्र पर चढ़ा दूंगा दो फूल। इनकी तुरबत को न तरसने दूंगा फूलों से।
मगर इन पर तो जितनी चोटें की जा सकें, करनी जरूरी हैं। और मजाक इन पर चोट करने का एक सभ्य ढंग है। शिष्टाचार भी रह जाता है--चोट भी हो जाती है!

आज इतना ही।

ज्यूं था त्यूं ठहराया
आठवां प्रवचन

इक साधे सब सधै

पहला प्रश्नः ओशो, योगवाशिष्ठ में यह श्लोक हैः
न यथा यतने नित्यं यदभावयति यन्मयः।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति नान्यथा।।
मनुष्य नित्य जैसा यत्न करता है, तन्मय होकर जैसी भावना करता है, और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है; अन्यथा नहीं।
क्या ऐसा ही है?

सहजानंद! ऐसा जरा भी नहीं है। यह सूत्र आत्म-सम्मोहन का सूत्र है-- आत्म-जागरण का नहीं। कुछ "होना" नहीं है। जो तुम हो उसे आविष्कृत करना है। कोहिनूर को कोहिनूर नहीं होना है, सिर्फ उघड़ना है। कोहिनूर तो है। जौहरी की सारी चेष्टा कोहिनूर को निखारने की है--बनाने की नहीं। कोहिनूर पर परतें जम गई होंगी--मिट्टी की उन्हें धोना है। कोहिनूर को चमक देनी है, पहलू देने हैं।
जब कोहिनूर पाया गया था, तो आज जितना उसका वजन है, उससे तीन गुना ज्यादा था। फिर उस पर पहलू देने में, काटने-छांटने में, जो व्यर्थ था उसे अलग करने में, और जो सार्थक था, उसे बचाने में, केवल एक तिहाई बचा है। लेकिन जब पाया गया था, उसका जो मूल्य था, उससे आज करोड़ों गुना ज्यादा मूल्य है। वजन तो कम हुआ--मूल्य बढ़ा।
तुम जो हो, उसका आविष्कार करना है। और यह सूत्र कुछ और ही बात कह रहा है। यह सूत्र आत्म-सम्मोहन का, आटो-हिप्नोसिस का सूत्र है। यह सूत्र कह रहा है, "मनुष्य नित्य जैसा यत्न करता है, तन्मय हो कर जैसी भावना करता है, और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है अन्यथा नहीं।"
तुम अगर भाव करोगे कुछ होने का, सतत करोगे भाव, तो उस भाव से तुम आच्छादित हो जाओगे। आच्छादन इतना गहन हो सकता है कि भ्रांति होने लगे कि मैं यही हो गया।
एक सूफी फकीर को मेरे पास लाया गया था। तीस वर्ष की सतत साधना! फकीर के शिष्यों ने मुझे कहा कि "उन्हें प्रत्येक जगह ईश्वर दिखाई पड़ता है। वृक्षों में, पत्थरों में, चट्टानों में--सब तरफ ईश्वर का ही दर्शन होता है।"
मैंने कहाः "उन्हें ले आओ। तीन दिन मेरे पास छोड़ दो।"
जब वे मेरे पास तीन दिन रहे, तो मैंने उनसे कहा, क्या मैं पूछूं कि "यह
जो ईश्वर तुम्हें दिखाई पड़ता है--दिखाई पड़ता है या तुमने इसकी भावना की है?"
उन्होंने कहाः "इसमें क्या भेद है?"
मैंने कहाः "भेद बहुत बड़ा है। सूरज उगता है, तो दिखाई पड़ता है--तुम्हें भावना नहीं करनी पड़ती कि यह सूरज है! चांद निकलता है, तो तुम्हें दिखाई पड़ता है। तुम्हें भावना नहीं करनी पड़ती कि यह चांद है। सौंदर्य हो, तो दिखाई पड़ता है; तुम्हें भावना नहीं करनी पड़ती कि सौंदर्य है। भावना तो तब करनी पड़ती है, जब दिखाई न पड़ता हो।"
भावना से भ्रांति होती है। सतत कोई भावना करे और तीस साल निरंतर भावना की हो, तो स्वभावतः भावना आच्छादित हो जाएगी।
तो मैंने उनसे कहाः "एक काम करो, भेद साफ हो जाएगा। तीन दिन भावना करना बंद कर दो।"
उनको बात समझ में पड़ी। तीन दिन उन्होंने भावना नहीं की। चौथे दिन मुझ
पर बहुत नाराज हो गए। उन्होंने कहाः "मेरी तीस वर्ष की साधना नष्ट कर दी।" मैंने कहाः "जो तीस वर्ष में साधा हो, अगर तीन दिन में नष्ट होता हो, उसका मूल्य क्या है? तो तुम कहीं पहुंचे नहीं। कल्पना में जी रहे थे। एक स्वप्न निर्मित कर लिया था अपने चारों तरफ। अब तुम्हें वृक्ष दिखाई पड़ते

हैं--परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। क्या हुआ उस परमात्मा का? अगर दिखाई पड़ गया था, तो तीन दिन में खो गया!"
मैंने कहाः "कुछ सीखो। नाराज न होओ। सीखने का यह है कि तीस साल व्यर्थ गए; नाहक तुमने गंवाए। अभी भी देर नहीं हुई। अभी भी जिंदगी शेष है। भावना करना बंद करो।"
"आंखों को निखारो--भावना से लादो मत। भावना के चश्मे मत पहनो।" भावना चश्मे दे सकती है। कोई लाल रंग का चश्मा पहन ले--सारा जगत लाल दिखाई पड़ने लगा! लाल हुआ नहीं; न लाल है, मगर भावना का चश्मा चढ़ गया! उतारो चश्मा और जगत जैसा है, वैसा प्रकट हो जाएगा। सब लाली खो जाएगी।
यह सूत्र व्यक्तित्व को झूठ करने का सूत्र है। मगर इसी सूत्र पर दुनिया के सारे धर्म आरोपित हैं। यह योगवाशिष्ठ की ही भ्रांति नहीं है; यह भ्रांति सारे धर्मों के आधार में पड़ी हुई है।
तुम जाते हो मंदिर में। तुम्हें दिखाई तो पत्थर की मूर्ति पड़ती है, लेकिन भावना करते हो कि राम हैं, कृष्ण हैं, बुद्ध हैं, महावीर हैं। अपनी भावना के सामने झुकते हो तुम। तुम्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है।
जैन के मंदिर में बौद्ध को ले जाओ, उसे झुकने का कोई मन नहीं होता। उसे महावीर बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ते; पत्थर दिखाई पड़ता है। मुसलमान को ले जाओ। तुम जब झुकते हो, तो वह हंसता है कि कैसी मूढ़ता है! पत्थर के बुत के सामने--यह कैसी बुत-परस्ती! यह कैसा अंधापन! पत्थर के सामने झुक रहे हो! मगर तुम पत्थर के सामने नहीं झुक रहे हो। तुमने तो अपनी भावना आरोपित कर रखी है। तुम्हारे लिए तो तीर्थंकर हैं, महावीर हैं!
जैन को मस्जिद में ले जाओ, उसे कोई अहोभाव अनुभव नहीं होता। लेकिन मुसलमान गदगद हो जाता है। यह सत्य किस बात की ओर इंगित करता है?
गणेशजी को देख कर जो हिंदू नहीं है, वह हंसेगा। जो हिंदू है, वह एकदम समादर से भर जाएगा। हनुमानजी को देख कर जो हिंदू नहीं है, वह सोचेगा, यह भी क्या पागलपन है! एक बंदर की पूजा हो रही है! और आदमी बंदर की पूजा कर रहे हैं! शर्म नहीं, संकोच नहीं, लाज नहीं! लेकिन जो हिंदू है, उसने एक भावना आरोपित की है। उसने एक चश्मा चढ़ा रखा है। तुम दुनिया के विभिन्न धर्मों पर विचार करो, तुम्हें बात समझ में आ जाएगी।
जीसस को सूली हुई। एक जैन मुनि ने मुझसे कहा कि "आप महावीर के साथ जीसस
का नाम न लें, क्योंकि कहां महावीर और कहां जीसस! क्या तुलना! जीसस को सूली लगी!" जैन हिसाब से तीर्थंकर को तो कांटा भी नहीं गड़ता है; सूली लगना तो बहुत दूर। जैन हिसाब से तीर्थंकर जब चलते हैं रास्ते पर, तो सीधे जो कांटे पड़े होते हैं, वे तत्क्षण उलटे हो जाते हैं कि कहीं तीर्थंकर के पैर में गड़ न जाएं। क्योंकि कोई पाप तो बचा नहीं, तो कांटा गड़ कैसे सकता है? पाप के कारण दुख होता है। पाप के कारण कांटा गड़ता है। अकारण नहीं कुछ होता। यही तो पूरा कर्म का सिद्धांत है।
और जीसस को सूली लगी, तो जरूर पिछले जन्मों में कोई महापाप किया होगा अन्यथा सूली कैसे लगे!
जैन को अड़चन होती है कि जीसस को महावीर के साथ रखो। इस आदमी को सूली लगी, जाहिर है, कि अकारण सूली नहीं लग सकती, तो जरूर कोई पिछला महापाप इसके पीछे होना चाहिए।
और ईसाई उसी सूली को अपने गले में लटकाए हुए है। उसी सूली के सामने झुकता है। उसके लिए सूली से ज्यादा पवित्र और कुछ भी नहीं है। सूली उसके लिए प्रतीक है जीसस का।
अगर तुम ईसाई से पूछो, महावीर के संबंध में, तो वह कहेगा कि "जीसस के साथ तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि जीसस ने तो मनुष्य-जाति के हित के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया। महावीर ने क्या किया? महावीर तो निपट स्वार्थी हैं। कोई अस्पताल खोला? कोई गरीबों के लिए भोजन जुटाया? बीमारों की सेवा की? कोढ़ियों के पैर दबाए? अंधों को आंखें दीं? लंगड़ों को पैर दिए? क्या किया?"
तुम देखते ही हो कि मदर टेरेसा को नोबलप्राइज मिली। महावीर अगर जिंदा हो, तो नोबलप्राइज मिल सकती है? किस कारण? न तो अनाथालय खोलते हैं। न विधवा

आश्रम खोलते हैं! निपट स्वार्थी हैं! अपने ध्यान और अपने आनंद में लगे हैं! इस स्वार्थी व्यक्ति की पूजा करने का प्रयोजन क्या है? इसने त्याग क्या किया है? और अगर धन-दौलत भी छोड़ी है, तो स्वार्थ के लिए छोड़ी है, क्योंकि धन-दौलत के कारण आत्मानंद में बाधा पड़ती है, ब्रह्मानंद में बाधा पड़ती है। मगर आनंद तो अपना है। इसने किसी दूसरे की चिंता की है इस व्यक्ति ने?
तो महावीर और बुद्ध ईसाइयों के लिए आदरणीय नहीं मालूम होते।
कृष्ण को हिंदू पूर्णावतार कहते हैं और जैन उनको नरक में डाल देते हैं! क्योंकि कृष्ण ने ही युद्ध करवा दिया; महाहिंसा करवा दी। अर्जुन तो बिल्कुल मुनि होने के करीब ही था! वह तो सब छोड़ कर भाग रहा था, त्याग रहा था। कृष्ण उसे घसीट लाए। एक व्यक्ति को जो जैन होने के करीब था--भ्रष्ट कर दिया! कृष्ण को दंड देना जरूरी है।
अब तुम जरा देखो! हिंदू कहते हैं पूर्णावतार। और उनका कहना, उनके चश्मे की बात है। पूर्णावतार इसलिए कि कृष्ण में जीवन की समग्रता प्रकट हुई है। राम को भी पूर्णावतार नहीं कहते हिंदू। क्योंकि राम की मर्यादा है। मर्यादा यानी सीमा। कृष्ण अमर्याद हैं। उनकी कोई सीमा नहीं है। महावीर त्यागी-व्रती, मगर इनका त्याग-व्रत संसार से भयभीत है। ये संसार को छोड़ कर त्याग को उपलब्ध हुए हैं, ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। कृष्ण तो संसार में रह कर ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। यह असली कसौटी है। आग में बैठे रहे और परम शांति को अनुभव किया।
आग से भाग गए! भगोड़े हो! जो कृष्ण को मानने वाला है, वह महावीर और बुद्ध
को भगोड़ा कहेगा। जिंदगी में जूझो; जिंदगी चुनौती है। इस चुनौती से भागते हो--अवसर गंवाते हो। यह कायरता है। यह पीठ दिखा देना है।
कृष्ण ने जिंदगी से पीठ नहीं दिखाई। इसीलिए अर्जुन को भी रोका कि क्या भागता है! क्या कायरपन की बातें करता है! क्या नपुंसकता की बातें करता है! क्या तू क्लीव हो गया! उठा गांडीव। छोड़ यह अहंकार--कि मेरे द्वारा हिंसा हो रही है। अपने को बीच से हटा ले; परमात्मा का माध्यम भर हो जा। अपने अहंकार को बीच में न ला।
तो हिंदू के लिए कृष्ण पूर्णावतार हैं। उसका अपना चश्मा है। जैन के लिए कृष्ण नर्क में डालने योग्य हैं। अवतार की तो बात ही छोड़ो! आदमियों से भी गए-बीते हैं! सभी आदमी भी नरक में नहीं जाते। महापापी ही नरक में जाते हैं। कृष्ण ने महापाप करवा दिया। क्योंकि जैन के हिसाब के लिए तो चींटी भी मारना पाप है। और इस व्यक्ति ने कोई एक अरब, सवा अरब आदमियों की हत्या करवा दी! इसी के कारण हत्या हुई। तो इतनी बड़ी महाहिंसा का कौन जिम्मेवार होगा? अपने-अपने चश्मे हैं।
और मैं कहता हूंः सत्य उसको दिखाई पड़ता है, जो सारे चश्मे उतार कर रख देता है। जो न हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है। ये तो सब भावना की बात है। तुम अपनी भावना को आरोपित कर लेते हो। तो जो तुमने आरोपित कर लिया है, जरूर दिखाई पड़ने लगता है। मगर दिखाई पड़ता है वैसा ही, जैसा सपना दिखाई पड़ता है। दिखाई पड़ता है वैसा ही, जैसे शराब के नशे में कुछ-कुछ दिखाई पड़ने लगता है।
मुल्ला नसरुद्दीन रोज शराबघर जाता। चकित थे लोग कि हमेशा जब भी शराब पीने बैठता, तो अपनी जेब से एक मेंढक निकाल कर टेबल पर रख लेता! उसने मेंढक पाला हुआ था। कई बार लोगों ने पूछा कि "इसका राज क्या है?"
पीता रहता शराब। पीता रहता। फिर एकदम से शराब पीना बंद कर देता। मेंढक खीसे में रखता। घर चला जाता।
एक दिन शराब की दुकान के मालिक ने कहा कि "आज मेरी तरफ से पीयो। मगर यह राज अब बता दो। अब हमारी उत्सुकता बहुत बढ़ती जा रही है। माजरा क्या है? यह मेंढक को बार-बार लाते हो। इसको बिठा लेते हो!"
मुल्ला ने कहाः "मामला कुछ भी नहीं है। राज छोटा सा है। यह गणित है। जब
यह मेंढक मुझे दो दिखाई पड़ने लगता है, तब मैं समझ जाता हूं कि बस, अब रुक जाना चाहिए। अब खतरे की सीमा आ गई! जल्दी से इसको--दोनों को उठा कर खीसे में रखता हूं और अपने घर की तरफ चला जाता हूं, क्योंकि अब जल्दी घर पहुंच

जाना चाहिए, नहीं तो कहीं रास्ते में गिरूंगा। जब तक एक दिखाई पड़ता रहता है, तब तक पीता हूं। जब दो दिखाई पड़ता है, तो बस!"
मुल्ला अपने बेटे को भी शराब पीने के ढंग सिखा रहा था। बाप वही सिखाए,
जो जाने। और तो क्या सिखाए! शराबी शराब पीना सिखाए। हिंदू हिंदू बनाए। जैन जैन बनाए। बौद्ध बौद्ध बनाए। जो जिसकी भावना! तो अपने बेटे को लेकर शराबघर गया। कहा कि "एक बात हमेशा ख्याल रखना। देखो--शराब पीना शुरू करो।" और कहा कि "वे जो उस टेबल पर आदमी बैठे हैं दो, जब चार दिखाई पड़ने लगे तब रुक जाना!" उसके बेटे ने कहा कि "पिताजी, वहां सिर्फ एक ही आदमी बैठा हुआ है! आपको अभी दो दिखाई पड़ रहे हैं!"
यह मुल्ला तो पीए ही हुए है। इसको तो दो दिखाई पड़ ही रहे हैं! अब यह कह रहा है, जब चार दिखाई पड़ने लगें, तो बस, पीना बंद कर देना! यह तो नशे में है ही।
नशे में जो दिखाई पड़ता है, वह सत्य नहीं है। हां, सतत यत्न से तुम नशा पैदा कर सकते हो। सतत भावना से तुम अपने भीतर की रासायनिक प्रक्रिया बदल सकते हो। ये मनोविज्ञान के सीधे-सादे सूत्र हैं।
अगर बार-बार तुम सोचते ही रहो, सोचते ही रहो, तो स्वभावतः उस सोचने का परिणाम यह होगा कि तुम्हारे भीतर भावना की एक पर्त बनती जाएगी।
एक बहुत बड़ा सम्मोहनविद फ्रांस में हुआ। वह अपने मरीजों को... उसने बहुत मरीजों को सहायता पहुंचाई। वह उनको कहता, "बस, एक ही बात सोचते रहो कि रोज, दिन ब दिन ठीक हो रहा हूं। सुबह से बस यही सोचो, पहली बात यही सोचो उठते वक्त। और रात सोते समय तक आखिरी बात यही सोचते रहो कि मैं ठीक हो रहा हूं। दिन ब दिन ठीक हो रहा हूं।"
तीन महीने बाद मरीज आया। उस चिकित्सक ने पूछा कि "कुछ लाभ हुआ?" उसने कहाः "लाभ तो हुआ। दिन तो बिल्कुल ठीक हो गया, मगर रात बड़ी मुश्किल है!" अब दिन ब दिन ठीक हो रहा हूं--सो उसने बेचारे ने दिन का ही हिसाब रखा।
"सो दिन तो", उसने कहा कि "बिल्कुल ठीक गुजर जाते हैं, क्योंकि भावना बिल्कुल मजबूत कर ली है। चौबीस घंटे एक ही भावना करता हूं कि दिन बिल्कुल ठीक। मगर रात! रात बड़ी बेचैनी आ जाती है।" वह जो दिन भर की बीमारी है, वह भी इकट्ठी हो कर रात फूटती है।
"सोना खराब हो गया। नींद हराम कर दी है। क्या सूत्र तुमने दिया!"
यह मनोवैज्ञानिक ने सोचा ही न था कि "दिन" में यह सिर्फ दिन को ही गिनेगा--रात छोड़ देगा!
मेरे पास एक दफा एक युवक लाया गया। उसके पिता, उसके मां रो रहे थे। उन्होंने कहा कि हम थक गए! विश्वविद्यालय से इसको हटाना पड़ा। इसको एक भ्रांति हो गई है। एक मक्खी इसके भीतर घुस गई है--इसको भ्रांति हो गई है। यह मुंह खोल कर सोता है, तो इसको भ्रांति हो गई कि मुंह खुला था और मक्खी अंदर चली गई। शायद मक्खी चली गई भी हो। वह तो निकल भी गई। एक्सरे करवा चुके। डाक्टरों से चिकित्सा करवा चुके। मगर यह मानता ही नहीं। यह कहता है, वह भनभना रही है। भीतर चल रही है। बस, ये चौबीस घंटे यही राग लगाए रखता है कि यह इधर पैर में घुस गई अंदर! इधर हाथ में आ गई! यह देखो, इधर आ गई--इधर चली गई। इसको कोई दूसरा काम ही नहीं बचा है; न सोता है, न सोने देता है। न खाता है, न खाने देता है! मक्खी भनभना रही है! सिर में घुस जाती है! सिर से पैर तक चलती रहती है! चिकित्सकों ने कह दिया, भई, यह सब भ्रांति है। हम कुछ भी नहीं कर सकते। किसी ने आपका नाम लिया, तो आपके पास ले आए। मैंने कहा, "कोशिश कर के देखें।"
मैंने कहाः "यह कहता है, तो ठीक ही कहता होगा। जरूर मक्खी घुस गई होगी।"
उस युवक की आंखों में एकदम चमक आ गई। उसने कहाः "आप पहले आदमी हैं, जो समझे। कोई मानता ही नहीं मेरी। जिसको कहता हूं, वही कहता है--पागल हो गए हो! अरे, पागल हो गया हूं--कैसे पागल हो गया हूं! मुझे बराबर भनभनाहट सुनाई पड़ती है। चलती है। कभी छाती में घुस जाती है। कभी पैर में चली जाती है। कभी सिर में! मेरी मुसीबत कोई नहीं समझता। अब नहीं आती तुम्हारे एक्सरे में,

तो मैं क्या करूं! मगर मुझे अपना अनुभव हो रहा है। अपना अनुभव मैं कैसे झुठला दूं। लाख समझाओ मुझे!"
"मेरा सिर खा गए समझा-समझा कर! कि मक्खी मुझे सता रही है। और बाहर के समझाने वाले मुझे सता रहे हैं। ये मां-बाप समझाते हैं। मुहल्ले भर में जो देखो वही समझाता है। डाक्टर समझाते हैं। जहां ले जाते हैं, वहीं लोग समझाते हैं--भई, छोड़ो यह बात। कहां की मक्खी! अगर घुस भी गई होगी, तो मर-मरा गई होगी। कोई ऐसे भनभना सकती है अंदर! मगर मैं क्या करूं! भनभनाती है। मक्खी मानती नहीं--मैं मान भी लूं, तो क्या होता है!"
मैंने कहाः "तुम बिल्कुल ठीक कहते हो। मक्खी अंदर घुसी है। जब तक निकाली न जाए, कुछ हो नहीं सकता। तो तुम लेट जाओ।"
आंख पर मैंने उसकी पट्टी बांध दी। और मैं भागा पूरे घर में खोजबीन की
कि किसी तरह एक मक्खी पकड़ लूं। बामुश्किल एक मक्खी पकड़ पाया। उसकी पट्टी खुलवाई। उसको मक्खी दिखाई। उसने कहा, "अब यह कोई बात हुई!" अपने बाप से बोला, "देखो, अब यह मक्खी कहां से निकली? कहां गए वे एक्सरे!"
मैंने उनके बाप को, मां को कहा था कि "तुम बिल्कुल चुप रहना। यह मत कहना कि मैंने मक्खी पकड़ी। इसके भीतर से निकाली है।" उन्होंने कहा, "भई हमें माफ करो। हमसे गलती हुई। तुम ठीक थे; हम गलत थे।"
उसने कहाः "लाइए मक्खी; मुझे दीजिए। मैं अपने उन सबको दिखाने जाऊंगा।
अब बिल्कुल सन्नाटा है। न कोई भनभनाहट। अब है ही नहीं मक्खी भीतर", वह खुद ही कहने लगा कि "जब मक्खी भीतर है ही नहीं, निकल गई... । यह रही मक्खी, तो बात खतम हो गई।"
तब से वह ठीक हो गया। तब से वह स्वस्थ हो गया।
एक भावना गहन हो जाए, तो जरूर उसके परिणाम होने शुरू होंगे। परिणाम सच्चे हो सकते हैं। यह रुग्ण हुआ जा रहा था; दीन हुआ जा रहा था, हीन हुआ जा रहा था। बात झूठी थी, मगर परिणाम तो सच हो रहे थे।
जैसे कि कोई रस्सी में सांप को देख कर भाग खड़ा हो। गिर पड़े। पैर फिसल जाए, तो हड्डी टूट जाए। हड्डी टूटना तो सच है, मगर रस्सी में सांप झूठ था। और यह भी हो सकता है कि हार्ट अटैक हो जाए। भाग खड़ा हो जोर से; वजनी शरीर हो; गिर पड़े। हार्ट अटैक हो जाए। घबड़ा जाए। मर भी सकता है आदमी--उस सांप को देख कर, जो था ही नहीं!
मगर इसको दिखाई पड़ा। इसको दिखाई पड़ा, बस, उतना पर्याप्त है इसके लिए। हालांकि इसने भ्रांति कर ली थी। कल्पना कर ली थी। इसके भीतर से ही आरोपित हुआ था।
यह सूत्र सारे धर्मों को भ्रष्ट किया है। इस तरह के सूत्रों ने ही आदमी को गलत रास्ते पर लगा दिया है। "बस, भावना करो!"
भावना से तुम जरूर परिणाम लाने शुरू कर दोगे। अगर तुमने भावना की मजबूती से तो परिणाम आने शुरू हो जाएंगे। लेकिन भावना चूंकि झूठ है इसलिए कभी भी खिसक सकती है। तुम जो मकान बना रहे हो, उसकी कोई बुनियाद नहीं है। तुम रेत पर महल खड़ा कर रहे हो, जो गिरेगा--बुरी तरह गिरेगा। और ऐसा गिरेगा कि तुम्हें भी चकनाचूर कर जाएगा।
मैं तुम्हें भावना करने को नहीं कहता सहजानंद! मैं तो कहता हूंः निर्विचार हो जाओ, निर्भाव हो जाओ, निर्विकल्प हो जाओ। सब भावना को जाने दो। सब विचार को जाने दो। शून्य हो जाओ। शून्य ही ध्यान है। निर्विचार ही ध्यान है। और तब जो है, वह दिखाई पड़ेगा। जब तक विचार है, तब तक कुछ का कुछ दिखाई पड़ता रहेगा। विचार विकृत करता है। विचार बीच में आ-आ जाता है। विचार के कारण तुम्हें कुछ का कुछ दिखाई पड़ने लगता है। जो नहीं है, वह दिखाई पड़ने लगता है। जो है, वह नहीं दिखाई पड़ता। तुम ख्याल करो, उपवास कर लो दो दिन का, और फिर बाजार में चले जाओ। उपवास के बाद तुमको बाजार में सिर्फ होटलें, रेस्टोरेंट, चाय की दुकानें, भजिए की गंध--इसी तरह की चीजें एकदम दिखाई पड़ेंगी, जो कभी नहीं दिखाई पड़ती थीं। क्योंकि दो दिन का उपवास तुम्हारे भीतर की मनोदशा बदल देगा। अब भोजन ही भोजन दिखाई पड़ेगा।
जर्मनी के प्रसिद्ध कवि हाइन ने लिखा है कि मैं एक दफा जंगल में तीन दिन के लिए भटक गया। गया था शिकार को, रास्ता भूल गया। साथियों से छूट गया।

तीन दिन भूखा रहा। और जब तीसरे दिन रात पूर्णिमा का चांद निकला, तो मैं चकित हुआ कि जिस चांद में मुझे हमेशा अपनी प्रेयसी का चेहरा दिखाई पड़ता था, वह बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ा। मुझे दिखाई पड़ी एक सफेद रोटी आकाश में तैर रही है! चांद में रोटी दिखाई पड़ी! किसी को चांद में रोटी दिखाई पड़ी? भूखे को दिखाई पड़ सकती है। तीन दिन से जो भूखा है, उसको चांद एक सफेद रोटी की तरह तैरता हुआ मालूम होगा। अब कहां की सुंदर स्त्री वगैरह! भूखे आदमी को क्या करना है सुंदर स्त्री से! इसीलिए तो उपवास का इतना प्रभाव बढ़ गया। उपवास तरकीब है वासना को दबाने की। जब तुम भूखे रहोगे--इक्कीस दिन अगर भूखे रहोगे स्त्री वगैरह सब भूल जाएंगी। स्त्री को देखने के लिए स्वस्थ शरीर चाहिए। पुरुष को देखने के लिए स्वस्थ शरीर चाहिए।
यह तरकीब हाथ में लग गई धार्मिकों के, कि अपने को बिल्कुल भूखा रखो, अपनी ऊर्जा को क्षीण कर लो--इतनी क्षीण कर लो कि बस, जीने योग्य रह जाए। जरा भी ज्यादा न हो पाए। जरा ज्यादा हुई कि तो फिर खतरा है। फिर वासना उभर सकती है। मगर इससे कोई वासना से मुक्त नहीं होता। यह सिर्फ दमन है। यह भयंकर दमन है।
उपवास तरकीब है दमन की। भूखा आदमी भूल ही जाएगा। भूखे को सिर्फ रोटी दिखाई पड़ती है--और कुछ नहीं दिखाई पड़ता। भरे पेट आदमी को बहुत कुछ दिखाई पड़ने लगता है--जो भूखे को नहीं दिखाई पड़ता। और जब तुम्हारे जीवन की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तब तुम्हें कुछ और दिखाई पड़ना शुरू होता है--जो जरूरतों के रहते नहीं दिखाई पड़ सकता।
जरूरतें जब तक हैं, तब तक जरूरतें बीच में आती हैं। इस बात को ख्याल में लो सहजानंद! तुम्हें नाम मैंने दिया सहजानंद! सहज का अर्थ होता है, जो है ही, उसको जानना है। उसे भावित नहीं करना है। उसे कल्पित नहीं करना है।
उसके लिए यत्न भी नहीं करना है। सहज है।
धर्म सहज है, क्योंकि धर्म स्वभाव है। है ही हमारे भीतर। परमात्मा तुम्हारे भीतर विराजमान है। तुम जरा अपने विचार एक तरफ हटा कर रख दो।
तुमसे कहा गया है--विश्वास करो। मैं तुमसे कहता हूं--विश्वास छोड़ो।
क्योंकि विश्वास एक विचार है। और विचार अगर सतत करोगे, तो वैसा दिखाई पड़ने लगेगा। मगर वैसा होता नहीं। सिर्फ तुम्हें दिखाई पड़ता है। तुम्हारी भ्रांति है। तुम्हारी कल्पना है।
और कल्पना सुंदर हो सकती है, प्यारी हो सकती है, मधुर हो सकती है। तुमने मीठे सपने देखे होंगे। सुस्वादु सपने देखे होंगे। लेकिन सपना सपना है। जागोगे--टूट जाएगा।
सपने देखने के लिए ही लोग जंगलों में भागे; उपवास किया। क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक सत्य है आज--वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित--कि आदमी को अकेला छोड़ दो, तीन सप्ताह में, उसकी कल्पना बहुत प्रखर हो जाती है। क्यों? क्योंकि जब दूसरों के साथ रहता है, तो दूसरों की मौजूदगी उसे कल्पनाशील नहीं होने देती। उसे बिठा दो हिमालय की एक गुफा में। क्या करेगा बैठा- बैठा! सिर्फ कल्पना करेगा। और तो कुछ करने को बचा नहीं। और यथार्थ से उसके सारे संबंध छूट जाएंगे। यथार्थ से तो भाग आया वह। अब एकांत में बैठा-बैठा कल्पना करता रहेगा। अपने से ही बातें करने लगेगा धीरे-धीरे।
तुमने देखा होगा पागलखानों में जाकर, पागल अपने से ही बातें करते रहते हैं! तुम उनको पागल कहते हो। और उसको तुम धार्मिक कहते हो, जो ईश्वर से बातें कर रहा है! कहां का ईश्वर? कल्पित! लेकिन वह ईश्वर से बातें कर रहा है! खुद ही वह बोलता है, खुद ही जवाब देता है। यह एकांत में संभव है। एकांत हो--और भूखा हो--ये दो चीजें अगर तुम पूरी कर लो, तो तुम्हारी कोई
भी कल्पना सच मालूम होने लगेगी। लेकिन यह अपने को धोखा देने का उपाय है।
धर्म नहीं है--आत्मवंचना है।
यह सूत्र इस लिहाज से महत्वपूर्ण है कि इस सूत्र में सारे धर्म का धोखा आ गया है।
"ना यथा यतने नित्यं यदभावयति यन्मयः।
मनुष्य नित्य जैसा यत्न करता है, तन्मय होकर जैसी भावना करता है, वैसा
ही हो जाता है।"

"यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति नान्यथा।।
वैसा ही हो जाता है अन्यथा नहीं।"
और मन की भावना का बड़ा प्रभाव है कुछ चीजों पर। शरीर पर तो बहुत प्रभाव है। तुम एक छोटा सा प्रयोग करके देखो। अपने हाथों को बांध कर बैठ जाओ। अंगुलियों को अंगुलियों में फंसा लो। दस आदमी बैठ जाओ। अंगुलियों में अंगुलियां फंसा कर और दसों दोहराओ कि "अब हम कितना ही उपाय करें, तो भी हम हाथ को खोल न सकेंगे।" यह छोटा सा प्रयोग है, जो कोई भी कभी भी कर सकता है। "हम कितनी ही कोशिश करें, हाथ को हम खोल न सकेंगे। लाख कोशिश करें, हाथ को हम खोल न सकेंगे।" दस मिनट तक यह बात दोहराते रहो, दोहराते रहो, दोहराते रहो। और दस मिनट के बाद पूरी ताकत लगा कर हाथ को खोलने की कोशिश करना। तुम हैरान हो जाओगे। दस में से कम से कम तीन आदमियों के हाथ बंधे रह जाएंगे। वे जितना खींचेंगे, उतनी ही मुश्किल में पड़ जाएंगे। पसीना-पसीना हो जाएंगे, हाथ नहीं खुलेंगे।
तीस प्रतिशत, तैंतीस प्रतिशत व्यक्ति सम्मोहन के लिए बहुत ही सुविधापूर्ण होते हैं। तैंतीस प्रतिशत व्यक्ति बड़े जल्दी सम्मोहित हो जाते हैं। और यही सम्मोहित व्यक्ति तुम्हारे तथाकथित धार्मिक व्यक्ति बन जाते हैं। ये ही तुम्हारे संत! ये ही तुम्हारे फकीर! इनके लिए कुछ भी करना आसान है। जब अपना ही हाथ बांध लिया खुद ही भावना करके और अब खुद ही खोलना चाहते हैं, नहीं खुलता। और एक मजा हैः जितनी वे कोशिश करेंगे और नहीं खुलेगा, उतनी ही यह बात गहरी होती जाएगी कि अब मुश्किल हो गई। हाथ तो बंध गए, अब नहीं खुलने वाले। घबड़ा जाएंगे। हाथ को खोलने के लिए अब इनके पास कोई उपाय नहीं है। अब हाथ को खोलने के लिए इनको पूरी प्रक्रिया को दोहराना पड़ेगा।
अब इनको खींचातानी बंद करनी चाहिए। अब इनको फिर दस मिनट तक सोचना चाहिए कि "जब मैं हाथ खोलूंगा, तो खुल जाएंगे। खुल जाएंगे--जरूर खुल जाएंगे।" दस मिनट तक ये पुनः भाव करें। खींचे नहीं। खींचेंगे, तो मुश्किल हो जाएगी, क्योंकि खींचने से सिद्ध होगा नहीं खुलते हैं। "नहीं खुलते हैं"--तो नहीं खुलने की बात और मजबूत होती चली जाएगी कि नहीं खुल सकते हैं। अब मैं कुछ भी करूं, नहीं खुल सकते हैं।
खींचें न। अब तो बैठ कर सोचें वही, जो पहले सोचा था उससे उलटा, कि "अब मैं जब खोलूंगा दस मिनट के बाद, तो बराबर खुल जाएंगे; निश्चित खुल जाएंगे।
कोई संदेह नहीं; खुल जाएंगे।" तब इनके दस मिनट के बाद हाथ खुलेंगे। तुम प्रयोग करके देख सकते हो। दस मित्रों को इकट्ठा कर के बैठ जाओ। तुमने शायद कभी सोचा न हो कि तुम भी उन तैंतीस प्रतिशत में एक हो सकते हो।
इस तरह का आदमी किसी भी तरह की बीमारियों के जाल में फंस सकता है।
मेडिकल कालेजे.ज में यह अनुभव की बात है कि विद्यार्थी जिस बीमारी के संबंध में पढ़ते हैं, बहुत से विद्यार्थियों को वही बीमारी होनी शुरू हो जाती है। जब वे पेटदर्द के संबंध में पढ़ेंगे और उनको मरीजों के पेटदर्द दिखाए जाएंगे, और उनसे पेट की जांच करवाई जाएगी--अनेक विद्यार्थियों के पेट गड़बड़ हो जाएंगे। वे कल्पित करने लगते हैं कि "अरे, कहीं वैसा ही दर्द मुझे तो नहीं हो रहा है!" अपना ही पेट दबा-दबा कर देखने लगते हैं! और जब पेट को दबाएंगे, तो कहीं न कहीं दर्द हो जाएगा। अहसास होगा कि दर्द हो रहा है। घबड़ाहट शुरू हो जाएगी।
मेडिकल कालेज में यह आम अनुभव की बात है कि जो बीमारी पढ़ाई जाती है, वही बीमारी फैलनी शुरू हो जाती है विद्यार्थियों में।
सूफियों में एक कहानी हैः जुन्नैद नाम का फकीर... । जुन्नैद प्रसिद्ध फकीर मंसूर का गुरु था गांव के बाहर एक झोपड़े में रहता था, बगदाद के बाहर।
कहानी बड़ी प्यारी है। कहानी ही है, ऐतिहासिक तो हो नहीं सकती, मगर बड़ी मनोवैज्ञानिक है।
एक दिन उसने देखा कि एक काली छाया बड़ी तेजी से बगदाद में जा रही है।
दरवाजे के बाहर ही उसका झोपड़ा था नगर के। उसने कहाः "रुक! कौन है तू?" तो उस काली छाया ने कहाः "मैं मौत हूं। और क्षमा करें, बगदाद में मुझे पांच सौ व्यक्ति मारने हैं।" फकीर ने कहा, "जो उसकी मर्जी।" मौत अंदर चली गई।

पंद्रह दिन के भीतर पांच सौ नहीं, पांच हजार आदमी मर गए! फकीर बड़ा हैरान हुआ कि पांच सौ कहे थे और पांच हजार मर चुके!
जब मौत वापस लौटी पंद्रह दिन के बाद, तो उसने कहाः "रुक। बेईमान! मुझसे झूठ बोलने की क्या जरूरत थी! कहा पांच सौ, और मार डाले पांच हजार!"
उसने कहाः "क्षमा करें। मैंने पांच सौ ही मारे। बाकी साढ़े चार हजार अपने आप मर गए। मैंने नहीं मारे। वे तो दूसरों को मरते देख कर मर गए!"
जब महामारी फैलती है, तो सभी लोग महामारी से नहीं मरते। कुछ तो देख कर
ही मर जाते हैं! इतने लोग मर रहे हैं, मैं कैसे बच सकता हूं! इतने लोग बीमार पड़ रहे हैं, मैं कैसे बच सकता हूं!
तुमने एक मजे की बात देखी कि डाक्टर दिन भर लगा रहता है मरीजों की दुनिया में और नहीं मरता। बीमारी--और बीमारी के बीच पड़ा रहता है और इसको बीमारी नहीं पकड़ती। और तुमको जरा में बीमारी पकड़ जाती है! छूत की बीमारी! एकदम तुम्हें छू जाती है। और डाक्टर दिन भर न मालूम किस-किस तरह के मरीजों का पेट दबा रहा है; हाथ देख रहा है। नब्ज पकड़ रहा है। इंजेक्शन लगा रहा है। और बीमारी नहीं पकड़ती! और तुम्हें बीमारी पकड़ जाती है। तुम्हारा भाव, बस तुम्हें पकड़ा देता है।
यह देख कर भी तुम्हें ख्याल में आता होगा कि डाक्टरों में तुम एक तरह
की सख्ती पाओगे। तुम लाख रोओ-धोओ; तुम्हारी पत्नी बीमार पड़ी है, तुम लाख रोओ-धोओ और तुम्हें लगेगा कि डाक्टर बिल्कुल उदासीन है। उसको उदासीन होना पड़ता है, नहीं तो वह कभी का मर चुके। उसको उदासीनता रखनी पड़ती है, सीखनी पड़ती है। वह उसके व्यवसाय का अंग है, अनिवार्य अंग है। उसको एक उदासीनता की पर्त ओढ़नी पड़ती है।
अब यहां तो रोज ही कोई मर रहा है। कोई तुम्हारी अकेली पत्नी मर रही है! रोज कोई मरता है। न मालूम कितने बीमार आते हैं! यहां अगर एक की बीमारी से वह आंदोलित होने लगे, तो वह खुद ही मर जाए। कभी का मर जाए! तो वह धीरे-धीरे कठोर हो जाता है। सख्त हो जाता है। उसके चारों तरफ एक पर्त गहरी हो जाती है, जिस पर्त को पार कर के कीटाणु भी प्रवेश नहीं कर सकते।
डाक्टर तुम्हें कठोर मालूम होगा। नर्सें तुम्हें कठोर मालूम होंगी।
और तुम्हें लगता है कि यह बात तो ठीक नहीं! डाक्टर को तो दयावान होना चाहिए। नर्सों को तो दयावान होना चाहिए। होना तो चाहिए, मगर वे बचेंगे नहीं। उनके बचने का एक ही उपाय है कि वे थोड़ी सी कठोरता रखें। वे अप्रभावित रहें। कौन मरा, कौन जीया... यूं समझें कि जैसे फिल्म में कहानी देख रहे हैं। कुछ लेना-देना नहीं। साक्षीभाव रखें, तो ही जिंदा रह सकते हैं। नहीं तो जिंदा रहना असंभव है। उनको भी जीना है, और उनके जीने के लिए यह अनिवार्य है कि वे एक कठोरता का कवच ओढ़ लें।
यह सूत्र अर्थपूर्ण है इस दृष्टि से कि इसी सूत्र के कारण सारे धर्म गलत हो गए हैं। मेरा यहां प्रयास यही है कि तुम्हें इस सूत्र से ऊपर उठाऊं। मेरी घोषणा समझो।
मैं कह रहा हूं कि तुम्हारा स्वभाव पर्याप्त है। तुम्हें कुछ और होना नहीं है। इसलिए यत्न क्या करना है! भावना क्या करनी है! तुम हो। तुम्हें जो होना चाहिए वह तुम हो ही। तुम्हें अपने भीतर जाग कर देखना है कि मैं कौन हूं। कुछ होना नहीं है। जो हो, उसको ही पहचानना है। आत्म-परिचय करना है। आत्मज्ञान करना है।
आत्मज्ञान के लिए भावना की जरूरत नहीं, विचारणा की जरूरत नहीं; यत्न
की जरूरत नहीं। आत्मज्ञान के लिए निर्विचार होना है; प्रयत्न-शून्य होना है। दौड़ना नहीं, बैठना है। भागना नहीं ठहरना है। न शरीर में कोई क्रिया रह जाए, न मन में कोई क्रिया रह जाए। दोनों निष्क्रिय हो जाएं। बस, ध्यान का सरगम बज उठेगा।
चित्त में विचार नहीं, देह में क्रिया नहीं--उसी अक्रिया की अवस्था में तुम्हारे भीतर जो पड़ा है हीरा--दमक उठेगा। जो सूरज छिपा है--उघड़ आएगा। बदलियों में छिपा है, प्रकट हो जाएगा; क्षितिज के ऊपर उठ आएगा। तुम आलोक से भर जाओगे। और यह कोई बाह्य उपलब्धि नहीं है। यह तुम्हारी निजता है, तुम्हारा स्वभाव है, तुम्हारी सहजता है। इस सहजता में ही आनंद है सहजानंद!

दूसरा प्रश्नः ओशो, यह जीवन क्या है? इस जीवन का सत्य क्या है? कहां- कहां नहीं खोजा, लेकिन हाथ खाली के खाली हैं।

पुरुषोत्तम! खोजोगे, तो हाथ खाली ही रहेंगे। और "कहां-कहां" खोजोगे तो खाली ही रहेंगे। "कहां-कहां" खोजने का मतलब--बाहर-बाहर खोजना। काशी में, कि काबा में, कि कैलाश में। गीता में, कि कुरान में, कि बाइबिल में।
कहते हो--"कहां-कहां नहीं खोजा!" इसीलिए तो खाली हो। झांकना है अपने भीतर--कहां-कहां नहीं खोजना है। सब खोज छोड़ दो। बैठ रहो। अपने भीतर ठहर जाओ। ज्यूं था त्यूं ठहराया! उस स्थिरता में, उस स्थितप्रज्ञ की अवस्था में, उस परम स्वास्थ्य में... ।
"स्वास्थ्य" का अर्थ है--स्वयं में ठहर जाना। स्वस्थ। स्व में स्थित
हो जाना--तुम पाओगे।
और मजा यह है--उसे ही पाना है, जिसे पाया ही हुआ है। उसे ही खोजना है, जो मिला ही हुआ है। तुम उसे ले कर ही आए हो। वह तुम्हारे जन्म के साथ आया है।
जन्म के पहले भी तुम्हारा था; अब भी तुम्हारा है; मृत्यु के बाद भी तुम्हारा होगा। मगर तुम भागते फिरो सारी दुनिया में, तो स्वभावतः चूकोगे।
क्योंकि भीतर तो झांकने का अवसर न मिलेगा।
अब तुम पूछते होः "यह जीवन क्या है?"
यह प्रश्न इसलिए उठ रहा है कि तुमने जीवन को भीतर से जी कर नहीं देखा। बुद्धि में बस, सोच रहे हो कि जीवन क्या है? जैसे कि कोई उत्तर मिल जाएगा! जीवन कोई ऐसी चीज नहीं है कि बुद्धि उत्तर दे दे। जीवन तो जीने में है। जीवन कोई वस्तु नहीं है; इसका विश्लेषण नहीं हो सकता--कि टेबल पर रख कर और इसका तुम विश्लेषण कर डालो, कि परखनली में रख कर और इसकी जांच-पड़ताल कर लो; कि तराजू पर तौल लो, कि गजों से नाप लो!
यह जीवन तो तुम्हारे भीतर है। तुम जीवित हो--और पूछते हो, "जीवन क्या है?" तुम सुगंधित हो--और पूछते हो "सुगंध क्या है!" तुम चैतन्य हो--और पूछते होः "जीवन क्या है?" यही है जीवन--जो तुम हो।
पूछते होः "जीवन का सत्य क्या है? कहां-कहां नहीं खोजा?"
खोजते रहो; जन्म-जन्म से खोज रहे हो। खोज-खोज कर तो खोया है। अब खोज छोड़ो।
मैं यहां खोज छोड़ना सिखाता हूं। बैठ रहो। मौन हो जाओ। शब्दों में मत तलाशो। शास्त्रों में मत तलाशो। वहां शब्द ही पाओगे। और शब्द सब थोथे हैं। अपने शून्य में विराजो। और उसी शून्य में आविर्भाव होगा।
और जिसे कहीं नहीं पाया, उसे अपने घर में पाओगे। वह पहले से ही तुम्हारा अतिथि हुआ बैठा है! अतिथि भी क्यों कहो--आतिथेय है। वही तुम्हारा मालिक है, जिसकी तुम खोज में चले हो। जो खोजने चला है, उसे ही खोजना है।
वो दिल नसीब हुआ, जिसको दाग भी न मिला।
मिला तो गमकदा, जिसमें चिराग भी न मिला।।
गई थी कहके, मैं लाती हूं जुल्फे-यार की बू।
फिरी तो बादे-सबा का दिमाग भी न मिला।।
असीर करके हमें क्यों रिहा किया सैयाद।
वो हम सफीर भी छूटे, वो बाग भी न मिला।।
भर आए महफिले-साकी में क्यों न आंख अपनी।
वो बेनसीब हैं, खाली अयाग भी न मिला।।
चिराग लेकर, इरादा था, वख्त ढूंढेंगे।
शबे-फिराक थी, कोई चिराग भी न मिला।।
खबर को यार की भेजा था, गुम हुआ ऐसा।
हवासे-रफ्ता का अब तक सुराग भी न मिला।।
जलाल बागे-जहां में वो अंदलीब हैं हम।
चमन को फूल मिले, हमको दाग भी न मिला।।
भटकोगे बाहर, तो यही दशा होगी।
भर आए महफिले-साकी में क्यों न आंख अपनी।

वो बेनसीब हैं, खाली अयाग भी न मिला।
खाली प्याला भी नहीं मिलेगा। शराब से भरा हुआ प्याला तो बहुत दूर-- खाली प्याला भी न मिलेगा।
चिराग ले के, इरादा था, वख्त ढूंढेंगे।
शबे-फिराक थी, कोई चिराग भी न मिला।।
यह बात कुछ चिराग लेकर ढूंढने की नहीं है पुरुषोत्तम! ढूंढने में ही लोग व्यस्त हैं! ढूंढने में ही लोग परेशान हैं। ढूंढने में ही लोग चूक रहे हैं।
राबिया एक सूफी फकीर स्त्री निकलती थी रास्ते से। जिस रास्ते से रोज निकलती थी, वहां एक दूसरा फकीर हसन मस्जिद के सामने हमेशा बैठा रहता था-- आकाश की तरफ हाथ उठाए, झोली फैलाए। चिल्लाता था, "हे प्रभु, द्वार खोलो!" राबिया ने कई बार इस हसन को यूं मस्जिद के सामने प्रार्थना करते देखा था। एक दिन उससे न रहा गया। बड़ी हिम्मत की औरत थी। जाकर हसन को झकझोर दिया और कहा कि "चुप रह। बंद कर यह बकवास। मैं तुझसे कहती हूं--दरवाजा खुला है। और तू नाहक चिल्ला रहा है कि दरवाजा खोलो। दरवाजा खोलो! तू अपनी धुन में मस्त है। दरवाजा खोलो--दरवाजा खोलो--इसी में लगा है। दरवाजा खुला है! आंख खोल। बकवास बंद कर। दरवाजा कभी बंद नहीं था।"
एक सम्राट का वजीर मर गया। उसे एक वजीर की जरूरत थी। कैसे वजीर चुना जाए! सारे देश में खोज-बीन की गई। तीन बुद्धिमान व्यक्ति राजधानी लाए गए। अब राजा को चुनना था इन तीन में से कोई एक।
एक अलमस्त फकीर से उसने पूछा कि, "आप ही कोई रास्ता बताओ। कैसे चुनूं? तीनों महाबुद्धिमान हैं। बड़े मेधावी हैं। तय करना मुश्किल है कि कौन किससे ज्यादा है! एक से एक बढ़ कर हैं सब। मैं बड़ी उलझन में पड़ गया हूं-- किसको चुनूं, किसको छोडूं? तीनों चुनने जैसे लगते हैं। लेकिन आदमी तो एक ही चाहिए!"
फकीर ने उसे एक तरकीब बताई। और वह तरकीब काम आ गई।
उन तीनों को एक कमरे में बंद किया गया और उन तीनों से कहा गया... । सम्राट खुद गया कमरे में। उसने कहा कि मैं दरवाजा बंद कर के बाहर जा रहा हूं। इस दरवाजे पर ताला नहीं है। देखो, ताले की जगह गणित के अंक लिखे हुए हैं। यह एक पहेली है। इस पहेली को जो हल कर लेगा, वह इस दरवाजे को खोलने में समर्थ हो जाएगा। सो तुम यह पहेली हल कर लोगे, तो जो पहले निकल आएगा पहेली हल कर के, वही वजीर हो जाएगा।
तीनों को छोड़ कर दरवाजा बंद करके सम्राट बाहर बैठ गया। दो तो एकदम से हिसाब-किताब लगाने में लग गए। आंकड़े लिखे उन्होंने और बड़े गणित के काम में लग गए। और एक कोने में जाकर आंख बंद कर के बैठ गया।
उन दोनों ने उसकी तरफ देखा कि यह पागल क्या कर रहा है! अरे, यह समय आंख बंद कर के बैठने का है। हल कैसे होगी पहेली? पर उन्होंने सोचा, अच्छा ही है कि एक प्रतियोगी खतम हुआ। वह तो अपनी धुन में मस्त... । वह पहेली ऐसी थी कि हल न हो। वह पहेली तो हल होने वाली थी नहीं। वे लगे रहे--पहेली में उलझते गए, उलझते गए! जाल बड़ा होता गया।
और वह आदमी बैठा रहा चुपचाप--बैठा रहा। एकदम से उठा। उन्हें पता ही नहीं चला कि वह आदमी कब बाहर निकल गया। वह दरवाजा बंद था ही नहीं! वह सिर्फ अटका था। वह आदमी शांत बैठा रहा। शांत बैठा रहा। उसने क्या किया? वह तो सिर्फ मौन बैठा। उसने सारे विचार अलग कर दिए। उसने तो ध्यान किया।
और ध्यान की एक अदभुत खूबी है कि दृष्टि निर्मल हो जाती है। दृष्टि पारदर्शी हो जाती है। अंतर्दृष्टि खुल जाती है।
अचानक उसे भीतर से बोध हुआ कि दरवाजा अटका है। पहेली सब शरारत है। पहेली उलझाने का ढंग है। वह उठा। उसने कहा कि सबसे पहले तो यही देख लेना चाहिए कि दरवाजा बंद भी है या नहीं! फिर पहेली हल करने में लगना।
वह उठा। उसने हाथ लगाया कि दरवाजा खुल गया! वह बाहर निकल गया। वे दोनों तो उलझे ही रहे पहेली सुलझाने में, जो सुलझने वाली थी ही नहीं। उनको तो तब नींद टूटी, जब सम्राट उस आदमी को लेकर भीतर आया, और उसने कहा, "भाइयो,

अब हिसाब-किताब बंद करो। जिसको बाहर निकलना था, वह निकल चुका है। वह वजीर चुन लिया गया है। अब तुम क्या कर रहे हो! अपने घर जाओ!"
उन्होंने कहाः "वह निकला कैसे! क्योंकि वह तो सिर्फ आंख बंद किए बैठा था!" सम्राट ने कहाः "वह फकीर ने भी मुझसे कहा था कि उन तीनों में जो ध्यान करने में समर्थ होगा, वह बाहर आ जाएगा। जो गणित बिठालने में बैठेंगे, वे अटक जाएंगे। जो तर्क लगाएंगे, वे भटक जाएंगे। क्योंकि यह दरवाजा यूं है, जैसे जिंदगी।"
जिंदगी कोई गणित नहीं; कोई तर्क नहीं। जिंदगी बड़ा खुला राज है। जीओ-- मौन से, शांति से, परिपूर्णता से--तो खुला राज है। मगर उलझ सकते हो तुम। प्रेम को जानने का एक ढंग है--प्रेम में डूबो। लेकिन स्वभावतः जो होशियार आदमी है, चालबाज आदमी है, वह कहेगा, "पहले मैं जान तो लूं कि प्रेम क्या है। फिर डूबूंगा!" बस, चूकेगा फिर। जिसने सोचा कि पहले जान लूं--प्रेम क्या है... । कैसे जानेगा प्रेम! प्रेम करके ही जाना जाता है। और तो जानने का कोई उपाय नहीं है। या है कोई उपाय?
मिठास का अनुभव तो स्वाद में है--और कोई उपाय नहीं। प्रकाश का अनुभव आंख खोलने में है। आंख बंद कर के कोई बैठा रहे और कहे कि "आंख तब खोलूंगा, जब मैं जान लूं कि प्रकाश क्या है? है भी या नहीं! तब आंख खोलूंगा।" वह सदा ही आंख बंद किए बैठा रहेगा। वह अंधा ही बना रहेगा।
अरे, आंख खोलो! तुम कहते हो, "जीवन क्या है?" और जीवित हो तुम! जरा भीतर आंख खोलो। जीवन धड़क रहा है। कौन धड़क रहा है तुम्हारे हृदय में? यह धड़कन किसकी? ये श्वासें किसकी? यह कौन प्रश्न पूछ रहा है? यह कौन खोजता फिरा है?
एक मुअम्मा है, समझने का न समझाने का।
जिंदगी काहे को है, ख्वाब है दीवाने का।।
हुश्न है जात मेरी, इश्क सिफअत है मेरी।
हूं तो मैं शमा, मगर भेष है परवाने का।।
जिंदगी भी तो पशीमां है यहां ला के मुझे।
ढूंढ़ती है कोई हीला मेरे मर जाने का।।
अब उसे दार पे ले जा के सुला दे साकी।
यूं बहकना नहीं अच्छा तेरे मस्ताने का।।
हमने छानी हैं बहुत दैरो-हरम की गलियां।
कहीं पाया न ठिकाना तेरे दीवाने का।।
किसकी आंखें दमे-आखिर मुझे याद आती हैं।
दिल मुरक्का है, छलकते हुए पैमाने का।।
हर नफस उम्रे-गुजश्ता की है, मैयत "फानी"।
जिंदगी नाम है मर-मर के जीए जाने का।।

"जिंदगी नाम है मर-मर के जीए जाने का!" जिंदगी को जानना है, तो प्रतिपल अतीत के प्रति मरते जाओ। अतीत को मत ढोओ, अतीत के प्रति मर ही जाओ। जो नहीं हो गया--नहीं हो गया। अतीत के प्रति मर जाओ और भविष्य के प्रति बिल्कुल ही रस न लो। इन दो चक्कियों के पाट के बीच ही जिंदगी दबी जा रही है--अतीत और भविष्य।
जिंदगी है वर्तमान। जिंदगी है--अभी और यहां। और तुम कहीं-कहीं भटक रहे हो! अतीत की स्मृतियों में--भविष्य की कल्पनाओं में! "ऐसी थी जिंदगी; ऐसी होनी चाहिए जिंदगी!" और चूक रहे हो उससे--जैसी है जिंदगी।
"हमने छानी हैं बहुत दैरो-हरम की गलियां।" मंदिरों और मस्जिदों की गलियां छानते रहो, छानते रहो--खाक मिलेगी। "कहीं पाया न ठिकाना तेरे दीवाने का।" पाओगे नहीं। कुछ भी न पाओगे।
हूं तो मैं शमा, मगर भेष है परवाने का।।
हुश्न है जात मेरी, इश्क सिफअत है मेरी।
हूं तो मैं शमा, मगर भेष है परवाने का।।
भेष में ही मत भटक जाना। यह शरीर तो सिर्फ वस्त्र है। यह मन भी और भीतर
का वस्त्र है। उसके भीतर--शरीर और मन के भीतर जो साक्षी बैठा है, वही!

"हूं तो मैं शमा"--वह ज्योति है अनंत, शाश्वत, कालातीत; "मगर भेष है परवाने का!" इस भेष को अगर देखोगे, तो भूल हो जाएगी। भेष कुछ है और जो भीतर छिपा है, वह कुछ और। न तुम देह हो, न तुम मन हो। तुम चैतन्य हो। तुम सच्चिदानंद हो।
तुम्हारा नाम प्यारा है पुरुषोत्तम! "पुरुषोत्तम" का अर्थ समझते हो! पुरुष कहते हैं, पुर कहते हैं नगर को। और पुरुष कहते हैं, उस नगर के भीतर जो बसा है उसको। पुरुष का संबंध स्त्री-पुरुष से नहीं है। स्त्री भी पुरुष है; पुरुष भी पुरुष है। पुरुष का संबंध है, यह जो नगर है मन का... ।
और नगर बड़ा है मन का। बड़ा विस्तार है इसका! और यह देह भी कुछ छोटी नहीं। इस देह की भी बड़ी आबादी है। बंबई की आबादी बहुत थोड़ी है। तुम्हारी देह में कोई सात करोड़ जीवाणु हैं। बंबई की आबादी तो अभी एक करोड़ भी पूरी नहीं। टोकियो की आबादी है एक करोड़। टोकियो से सात गुनी आबादी है तुम्हारी।
यह देह सात करोड़ जीवित अणुओं का नगर है, विराट नगर है। इस छोटी सी देह में बड़ा राज छिपा है।
और मन का तो तुम विस्तार ही न पूछो। जमीन से आकाश के कुलाबे मिलाता रहता है। इसका फैलाव कितना है!
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि एक-एक मन की इतनी क्षमता है कि पृथ्वी पर जितने शास्त्र हैं, जितने ग्रंथ हैं, जितनी किताबें हैं, जितने पुस्तकालय हैं--एक आदमी याद कर सकता है--इतनी क्षमता है! और थोड़ी-बहुत किताबें नहीं हैं।
सिर्फ ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में इतनी किताबें हैं कि अगर हम
एक किताब के बाद एक किताब को रखते चले जाएं, तो जमीन के सात चक्कर पूरे हो जाएंगे। इतनी ही किताबें मास्को की लाइब्रेरी में हैं। और दुनिया में बहुत बड़ी-बड़ी लाइब्रेरियां हैं।
ये सारे पुस्तकालय भी एक आदमी याद कर सकता है, इतनी क्षमता है; इतना तुम्हारे मस्तिष्क का फैलाव हो सकता है। और इस मस्तिष्क और इस देह के भीतर छिपा बैठा है जीवन, चैतन्य।
पुरुष यानी इस पुर के भीतर जो बसा है; वह जो इस पुर के भीतर केंद्र पर बैठा हुआ है। और जब तुम इसे जान लेते हो, तो पुरुषोत्तम हो जाते हो। तब तुम साधारण पुरुष नहीं रह जाते। उत्तम हो जाते हो। तुम शिखर छू लेते हो।
मत खोजो कहीं और। जो भीतर है, उसे बाहर खोजोगे--चूकोगे। वहां है ही नहीं, तो पाओगे कैसे!
दैरो-हरम की गलियां छानते रहो--खाक मिलेगी। भीतर झांको।
स्वयं को जान लेना सब कुछ जान लेना है। और जो स्वयं को नहीं जानता, वह कुछ भी जान ले, कुछ भी नहीं जानता।
"इक साधे सब सधै, सब साधे सब जाए!" तुम एक को साध लो, बस। यह जो तुम्हारे भीतर पुरुष है, इसको ही पहचान लो। इतना काफी है। और तुम्हारा जीवन रोशन हो जाएगा। जगमगा उठेगा। दीपावली हो जाएगी। और ऐसे दीये, जो फिर बुझते नहीं। और ऐसी रोशनी जो फिर कभी धीमी नहीं होती। जो प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होती चली जाती है। इसी परम ज्योति का नाम परमात्मा है। आत्मा का ही परम रूप परमात्मा है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, श्री कम्मू बाबा एक सूफी फकीर थे, जिनका दो साल पहले देहांत हो गया। वे गोरेगांव बंबई में रहते थे, जहां पर अब उनकी मजार है। मेरी अंतरात्मा मानती है कि वे प्रबुद्ध संत थे, जिन्होंने सत्य को समझा था। दया और करुणा के समुद्र थे। सभी धर्म व समाज के व्यक्ति उनके पास जाते और शांति पाते थे। खूब मस्त फकीर थे। उन्होंने मेरे बहुत प्रयास करने पर मुझे एक सूफी कलाम दिया। उसके सवा साल बाद ही उनका देहांत हो गया। उन्हें कुछ पूछ न पाया। क्योंकि मरने के एक साल पहले वे बिल्कुल बच्चे की तरह हो गए थे। कलाम किस ढंग से पढ़ना है, इसका उन्होंने कोई सुनिश्चित तौर-तरीका व नियम नहीं बताया। जब इच्छा हो, जहां हो, उनका दिया कलाम पढ़ सकते हैं।

मैं कुछ समय से आपसे बहुत अधिक प्रभावित हूं, परंतु सोचता हूं कि यदि मैंने आपसे संन्यास लिया, तो कहीं श्री कम्मू बाबा तथा उनके दिए गए सूफी कलाम का तिरस्कार तो न होगा? कभी यह भी सोचता हूं कि शायद इस कलाम की ही अनुकंपा से और सदगुरु कम्मू बाबा के फजल से ही मेरी आपके प्रति इतनी आसक्ति बढ़ गई हो! इस स्थिति में कृपया मेरा मार्गदर्शन कीजिए। मुझे इस द्वंद्व से मुक्त कीजिए।

अजयकृष्ण लखनपाल! पहली तो बात यहः सदगुरु बंधन नहीं है--मुक्ति है। सदगुरु से भी बंध जाओगे, तो तुमने मुक्ति को भी जंजीरों में ढाल लिया। मैं हूं आज। मुझसे जो सीख सको, सीख लो। जो जान सको--जान लो। और अगर तुमने मुझसे कुछ सीखा और जाना--और वह अधूरा रह गया, तो वही रुक तो नहीं जाना है। कल फिर खोजना। जब मैं न रहूं, तो फिर किसी जीवित गुरु को खोजना।
अगर तुमने एक बार जीवित गुरु को पहचाना हो; थोड़ी भी उसकी छाया पाई हो, थोड़ी भी उससे किरण झलकी हो, तो यह द्वंद्व उठेगा ही नहीं। क्योंकि दो सदगुरु भिन्न नहीं होते। हजार सदगुरु भी भिन्न नहीं होते। हजार शून्यों को भी पास ले आओ, तो एक ही शून्य बनता है।
नहीं, तुम उन्हें भी नहीं पहचाने। तुम मुझे भी नहीं पहचानते हो। तुम मानते हो कि तुमने उन्हें पहचाना। अगर पहचाना होता, तो यह द्वंद्व ही खड़ा न होता। तब तुम तत्क्षण मुझे पहचान लेते। तब देर ही न थी।
लेकिन हमारी धारणाएं बड़ी अजीब हैं। हमने तो सदगुरुओं के साथ भी बंधन
ही खड़े कर लिए। कोई महावीर से बंध गया। तो पच्चीस सौ साल हो गए, पीढ़ी दर पीढ़ी बंधा हुआ है! अब महावीर का कहीं नामोनिशान न रहा। जो महावीर के पास थे, उन्होंने कुछ पाया--जरूर पाया। लेकिन अब पच्चीस सौ साल में जो परंपरागत रूप से महावीर को मान रहे हैं, उनके पास क्या है?
सत्य की कोई परंपरा नहीं होती।
और सारे सदगुरुओं का संदेश एक है। इसलिए तिरस्कार कभी होता ही नहीं।
जब मैं न रहूं और तुम्हारे लिए कुछ अधूरा रह जाए, तो जरूर किसी सदगुरु
को खोजना। वह मेरा तिरस्कार नहीं है। सच तो यह है कि वही मेरा सम्मान होगा। वही मेरा सम्मान होगा। क्योंकि तुमने इतना पाया था कि अब तुम उसे पूरा करने के लिए आतुर हो रहे हो।
लेकिन सदगुरुओं के नाम से बहुत से तो झूठे गुरु चलते हैं। वे यही सिखाते हैं कि गुरु यानी वैसा ही संबंध है, जैसा पति-पत्नी का। कि एक को चुन लिया, तो बस, एक के ही! ये झूठे गुरु तुम्हारा बंधन बन जाते हैं। इनका आग्रह वही है, जो पति-पत्नियों का है। ये तुम्हें अपनी संपत्ति बना लेते हैं। ये तुम्हारे मालिक होकर बैठ जाते हैं।
और इनको डर होता है कि कहीं तुम हट न जाओ। तो ये तुम्हारे भीतर अपराधभाव पैदा करते हैं कि अब किसी और को मत चुनना। किसी और को चुनना अपमान होगा मेरा! और तुम किसी और को चुनोगे, तो तुम्हारे भीतर ये अपराध के भाव को छोड़ जाएंगे। एक भीतर घाव कर जाएंगे।
नहीं; सदगुरु यह नहीं करता। सदगुरु का यह काम ही नहीं है। सदगुरु का काम इतना है कि तुम्हारी मुक्ति होनी चाहिए। तुम्हारे जीवन में सौभाग्य का उदय होना चाहिए। कहां से होता है, किस बहाने होता है--इस पर अटकेगा सदगुरु?
सूफी कलाम से होता है; कि ध्यान से होता है; मेरे पास होता है--कि किसी
और के पास होता है--इससे क्या फर्क पड़ता है! अगर मैं तुम्हें चाहता हूं, अगर मैंने तुम्हें प्रेम दिया है, तो मैं यही चाहूंगा कि तुम मुक्त हो जाओ--किसी भी बहाने सही! सब बहाने हैं! उस पार जाना है--किस नाव में बैठते हो, किसकी नाव में बैठते हो, कौन मांझी है--इससे क्या फर्क पड़ता है!
उस पार जाना है। और अगर तुम अभी इसी पार हो, और तुम्हारे गुरु उस पार चले गए, तो किसी नाव में बैठना पड़ेगा। अब वह नाव काम नहीं आएगी। अब वह सूफी कलाम तुम्हारे काम नहीं आएगा।
वह सूफी कलाम इतना ही अगर कर गया कि तुम फिर किसी और गुरु को पहचान लो,
तो पर्याप्त है। बहुत है। इतना काम हो गया। धन्यवाद दो--कि उसने तुम्हें

इतनी दृष्टि दे दी; उसने तुम्हें इतना बोध दे दिया कि तुम अब मांझी को पहचान सकते हो; कि तुम नाव पहचान सकते हो। इतनी तुम्हें आंख दे दी।
इसमें द्वंद्व की कोई संभावना नहीं है अजयकृष्ण लखनपाल!
तुम पूछते होः "मैं कुछ समय से आपसे बहुत अधिक प्रभावित हूं। परंतु सोचता हूं कि यदि मैंने आपसे संन्यास लिया... !" और संन्यास क्या मुझसे लिया जाता है? या किसी और से लिया जाता है? ये सब तो बहाने हैं।
जैसे हम खूंटी पर कोट को टांग देते हैं। अब किस खूंटी पर कोट को टांगते हैं--इससे क्या फर्क पड़ता है। कोट टांगना है। खूंटी न मिले, तो खीली पर भी टांग देते हैं। और खीली न मिले, तो दरवाजे पर भी टांग देते हैं। टांगना है। कुछ न मिले, तो कुर्सी पर ही रख देते हैं। कहीं न कहीं टांगना है। सवाल है कोट को टांगना!
संन्यास का इतना ही अर्थ है--अहंकार को समर्पित करना। किसी भी बहाने
कर दो।
अहंकार एक झूठ है। लेकिन तुमसे छूटता नहीं। तो सदगुरु कहता है--"लाओ, मुझे दे दो। तुमसे छूटता नहीं--मुझे दे दो! चलो यह भेंट मुझे चढ़ा दो। यह बीमारी मुझे दे दो।"
"तुमसे नहीं छूटता। तुम समझते हो हीरे-जवाहरात हैं। तो चलो, मैं लिए लेता हूं।" है तो कुछ भी नहीं; खाली हवा है। हवा से फूला गुब्बारा है। संन्यास का इतना ही अर्थ होता है--अहंकार का समर्पण। इसमें क्या मेरा--और क्या तेरा! मैं तो सिर्फ एक निमित्त हूं। यहां छोड़ दो या कहीं और छोड़ देना। जहां मौज आ जाए, वहां छोड़ देना। मगर इतना ध्यान रखो... ।
तुम कहते जरूर हो कि "तुम्हारी अंतरात्मा मानती है कि वे प्रबुद्ध संत थे।" मगर जानती नहीं--मानती ही होगी। अगर तुम जानते होते, तो यह द्वंद्व उठता ही नहीं। तुम तत्क्षण मुझे पहचान लेते। जिसने एक दीया देख लिया जलता हुआ, क्या वह दूसरे जलते हुए दीये को देख कर पहचान नहीं पाएगा कि यह जलता हुआ दीया है!
लेकिन जिसने बुझा दीया--माना हो--कि जला हुआ दीया है--उसको अड़चन होगी।
वह कैसे तय करे कि यह भी जला है कि नहीं! उसने ज्योति तो देखी नहीं। रही हो--न रही हो; मानी थी। रही हो--तो भी मानी थी। न रही हो, तो भी मानी थी। उसकी मान्यता थी।
तुम्हारे मानने से कम्मू बाबा का सिद्ध-पुरुष होना या न होना कुछ भी संबंधित नहीं है। तुम मानो कि सिद्धपुरुष थे, तो तुम्हारी मान्यता है। तुम मानो कि नहीं सिद्ध-पुरुष थे, तो तुम्हारी मान्यता है। इससे कम्मू बाबा के संबंध में कुछ खबर नहीं मिलती। इससे सिर्फ तुम्हारी धारणा का पता चलता है। और तुम्हारी धारणा के कारण ही अड़चन आ रही है। तुम अपनी अतीत की धारणा को पकड़े हुए बैठे हो। और अड़चन क्या है?
अड़चन यह नहीं है कि कम्मू बाबा का तिरस्कार हो जाएगा। समझने की कोशिश करना अजयकृष्ण लखनपाल! अड़चन यह है कि तुम अपने अतीत में कोई भूल किए हो, यह मानने की तैयारी नहीं है। मेरा अतीत और भूल भरा हो सके? कि मैंने और गलत को पहचाना हो? कभी नहीं। अहंकार कहता है, ऐसा हो नहीं सकता। तुम और गलत को मानो! तुमने जब माना, तो ठीक ही माना था।
यह सवाल कम्मू बाबा को छोड़ने और नहीं छोड़ने का नहीं है। यह सवाल तुम्हारे अतीत के अहंकार को छोड़ने और नहीं छोड़ने का है। अड़चन वहां आ रही है।
मगर अहंकार बड़ा चालबाज है। वह सीधा-साधा सामने खड़ा नहीं होता। नहीं
तो तुम पहचान लोगे। वह पीछे से आता है। वह तुम्हें पीछे से पकड़ता है! वह तरकीब से पकड़ता है। वह बड़ी होशियारी से पकड़ता है। वह दूसरे के कंधे पर रख कर बंदूक चलाता है। अब वह कम्मू बाबा के कंधे पर बंदूक रख कर चला रहा है! कम्मू बाबा तो रहे नहीं, तो वह कह भी नहीं सकते कि भैया, मेरे कंधे पर बंदूक मत रखो। अब तुम्हारी मर्जी, किसी के भी कंधे पर रख लो।
वह कम्मू बाबा के कंधे पर बंदूक रख कर चला रहा है तुम्हारा अहंकार। वह
कह रहा है, "संन्यास मत लेना। कम्मू बाबा का तिरस्कार हो जाएगा!" असल बात

यह है कि वह यह कह रहा है कि "संन्यास मत लेना, नहीं तो मुझे त्यागना पड़ेगा!"
कम्मू बाबा से क्या लेना-देना! और कम्मू बाबा को अगर तुम पहचानते थे,
तो संन्यास में क्षण भर की देरी करने की कोई जरूरत नहीं है; कोई आवश्यकता नहीं है। दो ज्योतियां अलग-अलग नहीं होती। हो ही नहीं सकतीं। ज्योति का स्वरूप एक है।
उस बार भी तुम चूक गए; कम्मू बाबा के साथ भी तुम चूक गए। इस बार भी मत चूक जाना। तब तुम चूक गए मान्यता के कारण। जान न पाए और मान लिया।
हमें सदियों से यही सिखाया गया है--"मान लो।" हम से यह कहा जाता है कि "मान लो, तो जान सकोगे।" इससे बड़ी झूठ कोई बात नहीं हो सकती।
जरा सोचो! "मान लो तो जान सकोगे"--यह हमारे सारे धर्मों का आधार बन गया है। लेकिन जिसने मान लिया, वह अब क्या खाक जानेगा! अब जानने को क्या बचा? मान ही लिया। निष्कर्ष ही ले लिया।
जानने में तो मुक्त मन चाहिए। कोई निष्कर्ष नहीं चाहिए। कोई धारणा नहीं। कोई विश्वास नहीं, कोई अविश्वास नहीं। जानने के लिए तो खुले मन से यात्रा करनी होती है--कि "मुझे कुछ पता नहीं।"
जिसको पहले से ही पता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है--वह कभी नहीं जान पाएगा। उसका गलत और ठीक--हमेशा बीच में आ जाएगा। वह वही भूल करेगा, जो योगवाशिष्ट के सूत्र की है।
तुमने मान लिया था; तुम चूक गए उनको जानने से। मुझे मत मान लेना--नहीं
तो मुझे भी चूक जाओगे। यहां तो जानने की बात है; मानने की बात नहीं है। जानो--फिर मानना। मानना पीछे है--जानना पहले है।
और कम्मू बाबा को आड़ मत बनाओ।
लखनपाल! डर कुछ और हैं। लेकिन हम डरों को भी सुंदर वेश पहनाते हैं। अब तुमने कितना सुंदर वेश पहनाया!
डर होगा कि कहीं मां दुखी न हो। लेकिन वह तुम न कहोगे। भय कुछ और होगा--
कि लोग क्या कहेंगे! कि पागल हो गए!
अजयकृष्ण लखनपाल उद्योगपति हैं--बड़े उद्योगपति हैं। मरफी रेडियो को बनाने के कारखाने के मालिक हैं। तो डरते होंगे कि लोग क्या कहेंगे! कि अजयकृष्ण तुम भी पागल हो गए! तुम भी दीवाने हो गए! ये गैरिक वस्त्र पहन कर चले आ रहे हो!
मां है। मां मुश्किल में डाल देगी। पत्नी से तो तलाक हो गया है। यह अच्छा हुआ! यह बहुत ही अच्छा हुआ! एक अड़चन तो हटी। लेकिन मां! मां दिक्कत देगी। वे तुमने सवाल नहीं उठाए। वे असली सवाल हैं। बेचारे कम्मू बाबा को क्यों घसीट रहे हो! क्यों मुर्दों को बीच में ला रहे हो! मजारों को बीच में खड़ा मत करो। जरा जांच-परख करो भीतर।
और अहंकार है, जो यह कह रहा है कि तुमने कम्मू बाबा को माना था। अब बदल रहे हो? बेईमानी कर रहे हो! दगाबाजी कर रहे हो! गद्दारी कर रहे हो! यह भाषा ही राजनीति की है। यह भाषा धर्म की नहीं है।
अगर तुमने कम्मू बाबा को जाना था, और वह ज्योति विदा हो गई--महाज्योति में लीन हो गई--तो मेरी तरफ गौर से देखो। वही ज्योति फिर मौजूद है।
ज्योति तो हमेशा वही है। बुद्ध की हो। महावीर की हो। कृष्ण की हो। कबीर की हो। नानक की हो। ज्योति तो सदा वही है। क्योंकि सत्य एक है। इसलिए कैसा तिरस्कार! किसका तिरस्कार! तिरस्कार हो ही नहीं सकता ज्योति के जगत में। लेकिन अहंकार यह बात मानने को राजी नहीं होता कि मैंने जिसको पकड़ा था, वह भ्रांति थी; कि मैं कभी भूल कर सकता हूं; कि मैंने अतीत में कभी भूल की है। अहंकार अतीत पर जीता है; अतीत उसका भोजन है, उसका पोषण है। और मैं कहता हूं--अतीत से बिल्कुल छुटकारा पा जाओ। उसमें कम्मू बाबा भी आ जाएंगे।
और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कम्मू बाबा सिद्धपुरुष नहीं थे। इससे कुछ लेना-देना नहीं है तुम्हें। सिद्धपुरुष थे, तो क्या करोगे! सिद्धपुरुष नहीं थे, तो क्या करोगे! जो भी थे--गए उस पार। इस पार अब नाव नहीं है।

अभी मेरी नाव इस पार है। बैठना हो--बैठ जाओ। कल चली जाएगी, फिर पछताओगे, फिर रोओगे! फिर यह द्वंद्व खड़ा होगा कि मैंने यह क्या किया! मैं बैठ क्यों न गया इस नाव में? इतना प्रभावित था! तब फिर तुम किसी से पूछोगे जा कर कि अब और एक मुश्किल से गई। दो आदमियों से प्रभावित था--एक कम्मू बाबा, और एक मैं। और अब तीसरे को कैसे चुनना! दो को चुना नहीं--अब तीसरे को कैसे चुनना? यूं ही तुम जिंदगी भर भटकते रहोगे। मांझी अपनी नावें उस पार ले जाते रहेंगे, तुम इसी पार अटके रहोगे।
इतना मैं तुमसे कह सकता हूं कि संन्यास अपूर्व कीमिया है--अहंकार के विसर्जन की, अतीत के विसर्जन की, नव-जन्म की। साहस हो, तो डूब जाओ। और कोई बहाने न खोजो।
जरूर कम्मू बाबा ने तुम्हें जो कलाम दिया था, उसकी वजह से ही तुम मेरे पास आ गए होओगे।
प्रत्येक सदगुरु अपने शिष्यों के लिए इंतजाम कर जाता है। अगर न बैठ पाएं उसकी नाव में, चूक जाएं, भटक जाएं, समय पर न पहुंच पाएं, देर-अबेर कर दें--तो यूं न हो कि पीछे उनके लिए कोई उपाय न रह जाए। इतनी सूझ तो दे जाता है, इतना बोध दे जाता है कि वे फिर किसी और को पहचान लेंगे; किसी और मांझी को पहचान लेंगे।
द्वंद्व छोड़ो। लेकिन डर कुछ और होगा। डर मेरे हिसाब में यह है कि मां
से तुम डरे हुए हो। मां दुखी न हो जाए! ...
अब देखा, संत महाराज की तीन दिन से मैं बात कर रहा था। कल उनकी बहन ने, पिंकी ने संन्यास लेने का तय कर लिया। उनके पिता यहां मेरे सामने बैठे रो रहे थे। आंसू की धार लगी हुई थी। और संत से उन्होंने कहा भी कि "अब अमृतसर जाने की कोई इच्छा नहीं होती। वहां दुख ही दुख है। अब यहीं रुक जाने का मन होता है।"
संत ने कहाः "कौन कहता है जाओ। रुक जाओ। जिंदगी तो रह लिए वहां। और अब अमृतसर में है क्या! अमृत यहां है--सर वहां है! अब क्या करोगे अमृतसर में रह कर? रुक जाओ।"
तब तक सब ठीक था। तभी उनकी बेटी ने पिंकी ने आकर पूछा कि "मैं संन्यास
ले लूं!" बस, सब तिरोहित हो गया भाव। उसका हाथ पकड़ा। घसीट कर उसको जबरदस्ती रिक्शे में डाल लिया। भीड़ भी लग गई। लोगों ने समझाया भी कि "यह क्या कर रहे हैं!" संत ने भी कहा कि "वह चौबीस साल की है, यह क्या कर रहे हैं?"
मगर वे तो फिर भूल ही गए उस क्रोध में कि "यह मेरी चीज है!"... लड़की तुम्हारी "चीज" है? चीज? आदमी को "चीज" कहते हमें शर्म भी नहीं आती। आत्मा को चीज बना देते हैं! मगर हम सदियों से यह कहते रहे हैं। कन्यादान करते हैं! जैसे चीज हो कोई। "कन्यादान!" "स्त्रीधन" कहते हैं हम--कि स्त्री तो धन है।
हमने स्त्रियों का कितना अपमान किया है! चौबीस वर्ष की लड़की--कब इसको मुक्ति दोगे कि अपने ढंग से सोच सके? मगर उसको घसीट लिया।
संत ने कहा भी कि उसको अगर संन्यास लेना है, तो लेने दें। और अभी तो आप
ही कहते थे कि जाने का मन नहीं होता। और वह भी यही कह रही है कि "मेरा भी जाने का मन नहीं है अब! आपको जाना हो, तो जाएं। मैं यहां रुक जाना चाहती हूं।"
आगबबूला हो गए। फिर उन्होंने देर नहीं की। पूना उन्हें खतरनाक मालूम पड़ा, कि कहीं उनकी चीज--उनकी लड़की कहीं हाथ से न छूट जाए! ठीक यहां से जाकर होटल में से सामान निकाल कर वे भाग ही खड़े हुए! संत जब तक होटल में पहुंचा, तो वे अपना सामान टैक्सी में रख रहे थे!
संत ने कहा कि "इतनी जल्दी क्या है!" उन्होंने कहा, "बस, अब बात ही मत करो। मैं एक मिनट यहां नहीं रुक सकता। यह तो खतरनाक मामला है!"
तत्क्षण अमृतसर चले गए, जहां दुख ही दुख है--उनके ही हिसाब से! और वह लड़की भी नहीं जाना चाहती, और वे भी नहीं जाना चाहते।
लेकिन जब लड़की ने कहा कि मैं संन्यास लेना चाहती हूं, तब उनके अहंकार
को चोट लग गई। और जब लड़की ने जिद्द की कि "मैं यहीं रुक जाना चाहती हूं, अब आपके साथ मुझे जाना भी नहीं है", तब तो भारी आघात हो गया। यूं खुद भी यहां

रहना चाहते थे! और पछताएंगे अमृतसर जाकर कि यह मैंने क्या किया! दुखी होंगे। सरल आदमी थे। मगर कितने ही सरल हों, हैं तो सरदार ही! तो सरलता को भूल गए। एक क्षण में सरदार वापस आ गया! अतीत यूं हमले करता है। इस तरह आता है अंधड़-तूफान की भांति कि तुम्हें उड़ा ले जाता है।
लड़की को जबरदस्ती घसीट कर ले गए। अब संत को डर है कि वे शायद श्रीनगर न
गए हों! बजाय अमृतसर जाने के। क्योंकि श्रीनगर में उन्होंने लड़का खोज रखा है। वे शायद यहां से सीधे श्रीनगर जाएंगे और तत्क्षण लड़की की शादी कर देंगे, ताकि उनकी झंझट मिट जाए--ताकि "चीज" किसी और की हो जाए! फिर वे जानें! और मुझे भी लगता है, वे यही करेंगे। और जीवन भर लड़की को दुखी करेंगे और खुद दुखी रहेंगे।
और अब यहां आने की हिम्मत भी नहीं जुटा सकेंगे। क्या मुंह ले कर आएंगे! यह जो दुर्व्यवहार किया उन्होंने अपनी बेटी के साथ! और संत से कहा कि "अगर अपनी बहन को यहां लाना हो, तो अमृतसर आना। वहां तुम्हें मजा चखाऊंगा!"
सरदार हैं! और तलवार बेचने का धंधा करते हैं! सो कृपाण निकाल लेंगे वे, अगर संत गए वहां। ऐसे संत भी अगर पुराने संत होते, तो यहीं कृपाण निकल जाती!
संत भी जब पहले-पहले यहां आए थे, तो ध्यान कम करते थे, कृपाण ज्यादा चलाते थे! ध्यान में! एकदम तलवार चला देते थे! जब संत पहले-पहले ध्यान करते थे, तो वहां स्थान खाली हो जाता था। आस-पास दस-पंद्रह लोग एकदम हट जाते थे। क्योंकि वे इस तरह तलवार चलाते थे! मुझसे कई दफा लोगों ने कहा भी कि "यह किस तरह का ध्यान है! यह तो आदमी किसी को मार ही डालेगा!" क्या करें--वे भी सरदार थे। अब तो "संत" हो गए हैं; "सरदार" वगैरह सब खो गया। नहीं तो कृपाण वे भी चला सकते थे!
मैं बलसाड़ में एक शिविर ले रहा था। कोई पांच सौ लोग शिविर में सम्मिलित थे। और एक सरदार जी भी सम्मिलित थे। जब सक्रिय ध्यान मैंने करवाया और मैंने कहा कि "अब जो भी दिल में हो--निकाल डालो!" तो उस सरदार ने इस तरह से घूंसेबाजी की कि पांच सौ के पांच सौ ध्यानी छंट कर खड़े हो गए अलग। सरदार अकेला! पांच सौ को हटा दिया! मैदान खाली! क्योंकि कई को चोटें मार दीं! वह घूंसे चलाए!
जब ध्यान खतम हुआ, तो सरदार ने देखा कि बात क्या हुई! अकेले ही रह गए!
सब लोग खड़े हो कर देख रहे हैं दूर से कि अब करना क्या! तब उसे शर्म लगी। मेरे पैरों पर गिर पड़ा और कहा, "मुझे माफ करें। आपने कहा कि अब दिल खोल कर निकाल दो, तो जो भरा था, मैंने निकाल दिया। अब किसी को चोट वगैरह लगी हो, तो मुझे माफ करना, क्योंकि मैं किसी को मारना नहीं चाहता था। मगर जो दिल में भरा था... । जब आपने कहा--निकाल ही दो--और समग्रता से निकाल दो, तो फिर मैंने कहा--अब क्या कंजूसी करना! यह पहली दफा तो मौका आया। निकाल दो!"
अजयकृष्ण लखनपाल, द्वंद्व कहीं और है; वह अहंकार और तुम्हारी चेतना
के बीच है; वह अतीत और वर्तमान के बीच है। अब कम्मू बाबा तुम्हारे लिए सिर्फ अतीत के प्रतीक रह गए हैं। मैं वर्तमान हूं। और मैं तुमसे यह कहता हूं कि सदा वर्तमान के प्रति निष्ठा रखना, क्योंकि वर्तमान ही परमात्मा है। अतीत तो गया। सांप तो निकल गया, अब तो सिर्फ रेत पर निशान रह गए! पूजते रहो चाहे तो। तुम्हारी मर्जी--फूल चढ़ाते रहो। लेकिन जो जा चुका--जा चुका। अब तुम कितना ही कम्मू बाबा का कलाम पढ़ते रहो, कुछ भी न होगा।
कलाम में कुछ नहीं होता; जादू होता है सदगुरु में। इसलिए अक्सर यह हुआ है--अक्सर क्या, हमेशा यह हुआ है कि जो सूत्र महावीर की मौजूदगी में लोगों के जीवन में दीये जला दिए, वही सूत्र पच्चीस सौ साल में किसी की जिंदगी में दीये नहीं जला सके। वही सूत्र! वही के वही सूत्र! जादू था महावीर में, तो जिस सूत्र को कह दिया, उसी में जादू आ गया। वह जादू था महावीर में। वह महावीर के भीतर था जादू। उस जादू में डूब कर जो सूत्र आया, उसमें ही थोड़ा जादू लिपटा आ गया। वह शून्य था भीतर; वह समाधि थी भीतर--उसमें डुबकी मार कर जो भी शब्द आया, वह भी उसी माधुरी से भर कर आया। थोड़ा अमृत उसमें भी बह आया। थोड़ी बूंदा-बांदी उसमें भी हो गई। जिस पर पड़ गईं वे बूंदें, वह जीवित हो

उठा। लेकिन अब पच्चीस सौ साल से तोतों की तरह लोग उसी को दोहरा रहे हैं। अब उसमें कुछ भी नहीं है। बात कुछ भी नहीं है।
तुमने इस पर ख्याल किया कि दवा कम काम करती है, चिकित्सक ज्यादा काम करता है। दवा में जादू नहीं होता, जादू चिकित्सक में होता है। और अगर कभी ठीक चिकित्सक जिससे तुम्हारी श्रद्धा का तालमेल बैठ जाए, मिट्टी भी थमा दे, तो औषधि हो जाती है। और जिससे तुम्हारी श्रद्धा का तालमेल न बैठा हो, तुम्हें अमृत भी पिलाए, तो जहर हो जाएगा।
अगर तुम सच में ही मुझसे प्रभावित हो, तो अब सोचो मत। अगर सच में ही प्रभावित हो, तो छलांग लो। अब मत पूछो कि "फिर सोचता हूं कि मैंने आपसे संन्यास लिया, तो कहीं कम्मू बाबा और उनके दिए सूफी कलाम का तिरस्कार तो न होगा!"
यही सम्मान होगा। तिरस्कार कैसे होगा! तिरस्कार होता ही नहीं सदगुरु का। तुम करना भी चाहो, तो नहीं होता। सदगुरु का तिरस्कार किया ही नहीं जा सकता। और यह तो कोई सवाल ही नहीं तिरस्कार का। यह तो सम्मान होगा। यह तो जहां तक यात्रा तुम्हारी रुक गई है, उससे आगे बढ़ना होगा। इससे कम्मू बाबा की आत्मा कहीं भी होगी, तो आनंदित होगी। तुम पर फूल बरसा देगी। इसमें द्वंद्व कुछ भी नहीं है।
लेकिन हां, अगर कोई और द्वंद्व भीतर छिपें हों कि "लोग क्या कहेंगे!"
वह तुम मुझसे भी नहीं कह सकते; पूछ भी नहीं सकते कि "लोग क्या कहेंगे; कि मां क्या कहेगी; परिवार क्या कहेगा; साझीदार क्या कहेंगे!" लौट कर बड़ौदा जाओगे, तो बड़ौदा के लोग कहेंगे, "अरे! यह तुम्हें क्या हो गया!"
औरों की तो बात छोड़ दो, मेरे संन्यासी जब अपने घर जाते हैं, तो उनके बच्चे उनसे पूछते हैं कि "पापा! आपका भी दिमाग खराब हो गया! यह आपको क्या हो गया!"
मेरे एक मित्र संन्यास लेकर वाराणसी गए, वहां उनका घर, पंद्रह दिन बाद उनकी खबर आई कि अस्पताल से लिख रहा हूं, क्योंकि मेरे परिवार के लोगों ने मुझे अस्पताल में भरती करवा दिया है और कारण यह है कि मैं जिंदगी भर का दुखी आदमी, उदास आदमी, जब लौट कर आया, तो नाचता हुआ आया। जब घर उतरा तांगे से, तो नाचता हुआ, गीत गाता हुआ अंदर गया! पत्नी ने कहा कि "अरे, क्या पागल हो गए!" घर भर के लोग इकट्ठे हो गए। मुहल्ले भर के लोग आ गए कि "हो क्या गया तुम्हें! अच्छे-भले गए थे!"
तो उनको बहुत हंसी आई। उन्होंने कहा कि "मैं अच्छा-भला गया था! अच्छा- भला होता, तो जाता ही क्यों? अरे, रोता हुआ गया था! हंसता हुआ आया हूं। मूर्खो! जब मैं रो रहा था, तब तुम कोई आए न। और अब जब मैं हंस रहा हूं, तो तुम समझ रहे हो, मैं पागल हो गया!"
वे तो बिल्कुल ही समझ गए कि बिल्कुल हो गया पागल! बिल्कुल गया काम से! पकड़ कर बिस्तर पर लिटा दिया!
तो उन्होंने मुझे लिखा कि मैं हंसने लगा! खिलखिलाहट छूटने लगी मुझे
कि हद्द हो रही है! मजा आ रहा है! यह भी खूब रही! जिंदगी दुख में गई। कोई सहानुभूति को भी न आया। आज हंसता हुआ आया हूं, तो मुझे बिस्तर पर लिटा रहे हैं जबर्दस्ती!
मोहल्ले के लोगों ने कहाः "लेटो। डाक्टर को बुलाओ!" "अरे", मैंने कहाः "क्या पागल हो गए हो! मुझे डाक्टर मिल गया!"
मगर वे बोले कि "तुम चुप रहो। तुम बात ही न करो। तुम तो आंखें बंद कर के विश्राम करो। तुम थोड़ा आराम करो!"
डाक्टर को बुला लिया। डाक्टर को देख कर उनको और हंसी आई। डाक्टर नब्ज देख रहा है, स्टेथोस्कोप लगा कर देख रहा है! तो उनको हंसी... । डाक्टर ने कहाः "हंसना बंद करो। मुझे पहले जांच करने दो।"
उन्होंने कहा कि "हंसी इसी बात की आ रही है कि जांच करने को कुछ है नहीं। जब जांच करने को बहुत कुछ था, तब कहां थे? तब कोई न आया!"
डाक्टर ने भी कहा पत्नी को कि "बात खतरनाक है। शारीरिक कोई मामला नहीं है। मानसिक कोई गड़बड़ है। अस्पताल में ही भरती कर देना ठीक है!"

तो उन्होंने अस्पताल से ही लिखा है कि अस्पताल में पड़ा हूं। हंस रहा हूं! दवाइयां ले रहा हूं! अजीब यह दुनिया है। यहां हंसी क्षमा नहीं की जा सकती। यहां आनंद बरदाश्त नहीं किया जा सकता। यहां दुख स्वीकार है सभी को, क्योंकि सभी दुखी हैं।
अजयकृष्ण लखनपाल, अवसर है, चूको मत। कहीं फिर पीछे पछतावा न हो। फिर पछताए होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत!

आज इतना ही।

ज्यूं था त्यूं ठहराया
नौवां प्रवचन

आचरण नहीं--बोध से क्रांति

पहला प्रश्नः ओशो,
जमाना हो गया घायल
तेरी सीधी निगाहों से
खुदा ना खासता तिरछी
नजर होती तो क्या होता?

मोहम्मद हुसैन! सीधी नजर काफी हो, तो तिरछी नजर की जरूरत क्या! और सीधे-सीधे जो काम हो जाए, वह तिरछे होने से नहीं होता। तिरछा होना तो मन की आदत है; सीधा होना हृदय का स्वभाव।
मैं जो कह रहा हूं, वह दो और दो चार जैसा सीधा-साफ है। जिसकी समझ में न आए, उसकी समझ तिरछी होगी, उसके भीतर विकृतियों का जाल होगा। अगर तुम्हारे पास भी सीधा-सादा हृदय हो, तो मेरी बात का तीर ठीक निशाने पर पहुंच ही जाएगा, पहुंच ही जाना चाहिए। प्रेम से सुनोगे तो सुनते-सुनते ही क्रांति घट जाएगी।
मेरे सकूने-दिल को तो होना ही था तबाह
उनकी भी एक निगाह का नुकसान हो गया
ऐसा नुकसान मैं नहीं करता। जिसको बदलना है, जिसके भीतर आतुरता है, अभीप्सा है बदलने की, वह तो जरा से इशारे में बदल जाता है।
मेरे सकूने-दिल को तो होना ही था तबाह
उनकी भी एक निगाह का नुकसान हो गया
जो तैयार ही हो कर आया है मिटने को, उस पर एक नजर का भी नुकसान क्यों करना! और जो तैयार हो कर ही आया है मिटने को, वही मिटेगा; शेष तो व्यर्थ की बातों में ही उलझे रह जाएंगे। शेष तो ऐसी बातों में उलझे रह जाएंगे, जिनसे उनका कोई प्रयोजन न था।
आदमी की मूढ़ता ऐसी है कि कांटों को चुन लेता है, फूलों को छोड़ देता है। रातों को गिन लेता है, दिनों को छोड़ देता है। दुखों को पकड़ लेता है, आनंद का जाम भी लिए उसके सामने बैठे रहो--देखेगा ही नहीं। ऐसे व्यक्ति के जीवन में प्रार्थना नहीं उठ सकती। ऐसे व्यक्ति के जीवन में तो शिकायतें ही शिकायतें होंगी।
सो.जे-गम दे के मुझे उसने ये इर्शाद किया।
जा तुझे कश्मकशे-दहर से आजाद किया।।
वो करें भी तो किन अलफाज में तेरा शिकवा।
जिनको तेरी निगहे-लुत्फ ने बर्बाद किया।।
इतना मानूस हूं फितरत से कली जब चटकी।
झुक के मैंने ये कहा, मुझसे कुछ इर्शाद किया?
मुझको तो होश नहीं, तुमको खबर हो शायद।
लोग कहते हैं कि तुमने मुझे बर्बाद किया।।
वे जो प्यासे हैं परमात्मा के, उनको तो इतनी भी खबर नहीं होती--
मुझको तो होश नहीं, तुमको खबर हो शायद
लोग कहते हैं तुमने मुझे बर्बाद किया।
उन्हें तो पता भी नहीं चलता। और यह बर्बादी बर्बादी नहीं है। यह तीर
का चुभ जाना मृत्यु नहीं है--अमृत की घटना है।
वो करें भी तो किन अलफाज में तेरा शिकवा।
जिनको तेरे निगहे-लुत्फ ने बर्बाद किया।।
उसकी निगाह बर्बाद करे, तो आबादी है। उसकी निगाह मिटा दे, तो नया जन्म है।
और मेरी तो अपनी कोई निगाह नहीं। जो शांत और मौन होकर मेरे पास बैठेगा, उसको उसकी निगाह ही दिखाई पड़ेगी। और उसकी निगाह तो सीधी-साफ है।

मैं तो बांस की पोंगरी समझो। गीत उसका है। सुनने वाला चाहिए। मोहम्मद हुसैन! तुमने ठीक देखा, ठीक सुना, ठीक पहचाना।
ये दौरे-मसर्रत, ये तेवर तुम्हारे।
उभरने से पहले, न डूबें सितारे।।
भंवर से लड़ो, तुंद लहरों से उलझो।
कहां तक चलोगे किनारे-किनारे।।
मोहम्मद हुसैन! अगर लग गई बात, तो अब किनारे-किनारे न चलो। अब डूबो इस
गैरिक सरिता में। अगर हो गए घायल, तो अब भागना मत। अब जागो।
ये दौरे-मसर्रत, ये तेवर तुम्हारे।
उभरने से पहले, न डूबें सितारे।।
भंवर से लड़ो, तुंद लहरों से उलझो।
कहां तक चलोगे किनारे-किनारे।।
अजब चीज है ये मोहब्बत की बाजी।
जो हारे वो जीते, जो जीते वो हारे।।
स्याह नागिनें बन के डसती है किरणें।
कहां कोई ये रोजे-रोशन गुजारे।।
सफीने वहां डूब कर ही रहे हैं।
जहां हौसले नाखुदाओं ने हारे।।
कई इन्कलाबात आए जहां में।
मगर आज तक दिन न बदले हमारे।।
"रजा" सैले-नौ की खबर दे रहे हैं।
उ.फुक को ये छूते हुए तेज धारे।।
ये दौरे-मसर्रत, ये तेवर तुम्हारे।
उभरने से पहले, न डूबें सितारे।।
भंवर से लड़ो तुंद लहरों से उलझो।
कहां तक चलोगे किनारे-किनारे।।
अगर घायल हुए हो, तो अब और तरह के विचारों को बीच में मत आने देना। लाख विचार आएंगे, क्योंकि हमारा अतीत एकदम से नहीं छोड़ देता। जकड़ता है, पकड़ता है। जंजीरें भी छोड़ने को एकदम से राजी नहीं होतीं। उनकी मालकियत जाती है। कारागृह की दीवालें भी रुकावट डालेंगी कि कहां जाते हो! हमें छोड़ कर जाते हो! यह गद्दारी, यह धोखा! हम ही तुम्हारी सुरक्षा हैं। बाहर खुले आकाश में बहुत तड़फोगे, बहुत परेशान होओगे। रुक जाओ। मान जाओ। अतीत सब तरह के जाल फेंकेगा। सुंदर सुंदर जाल। सुनहरे जाल--शब्दों के, शास्त्रों के, सिद्धांतों के, हिंदू होने के, मुसलमान होने के, ईसाई होने के, जैन होने के। और अटका लेता है आदमी को। छोटी-छोटी बातों में अटका लेता है। और आदमी सोचता है, बड़ी होशियारी की बातें कर रहा है।
स्वामी शांतिस्वरूप भारती ने पूछा है कि "आपकी अध्यात्म और धर्म पर बातें तो हमें बहुत प्यारी लगती हैं। मगर राजनीति या समाज पर जब आप कुछ कह देते हैं, तो मैं राजी नहीं हो पाता। इससे अपराधभाव पैदा होता है। अब मैं क्या करूं?"
अपराधभाव दो ही ढंग से मिट सकता है। या तो संन्यास छोड़ दो। अगर तुम्हें राजनैतिक और सामाजिक विचारों को पकड़ने का इतना आग्रह है; तुम्हें अपने विचार इतने पकड़ने का आग्रह है, तो छोड़ दो वे मधुर बातें। अपराधभाव से मुक्त हो जाओगे। संन्यास से मुक्त हो जाओ। और या फिर अगर सच में ही अध्यात्म और धर्म की बातें तुम्हें इतनी प्यारी लगती हैं, तो इतनी भी कीमत नहीं चुका सकते कि दो कौड़ी के अपने राजनैतिक विचार और सामाजिक धारणाओं को छोड़ दो!
और क्या तुम्हारे राजनैतिक विचार और क्या तुम्हारी सामाजिक धारणाएं! अपना बोध नहीं है--समाज का तुम्हें क्या खाक बोध होगा? अपनी पहचान नहीं है और सोचते तुम यह हो कि राजनीति पर तुम्हारी कोई दृष्टि हो सकती है! सिर्फ बुद्धों के सिवाय समाज और राजनीति के संबंध में भी जो लोग कुछ कहते हैं, वह उनकी मूढ़ता से ही निकलेगा।

और मजा यह है कि हम नहीं चाहते कि बुद्धपुरुष कुछ भी राजनीति और समाज
के संबंध में कहें, क्योंकि कम से कम हम यह तो मानते ही हैं कि उस दिशा में तो हमारी ही दृष्टि ठीक है। बुद्धपुरुषों को बोलने की जरूरत ही क्या है! वे तो अपना अध्यात्म सम्हालें।
मेरे साथ होना है, तो पूरे-पूरे। अधूरे-अधूरे--अपने को धोखा मत दो। मैं तुम्हें छुट्टी देने को तत्क्षण राजी हूं। छोड़ दो संन्यास; अपराध-भाव से मुक्त हो जाओ। बचा लो अपनी राजनीति। बचा लो अपनी सामाजिक धारणाएं! अगर उनकी कोई कीमत है--तो ठीक है। कीमती चीज को बचा लेना चाहिए। और अगर उनकी कोई कीमत नहीं है; दो कौड़ी की हैं--और दो कौड़ी की ही हैं--तो फिर तुम्हें जो प्यारा लग रहा है उसके लिए कुर्बान कर दो। कैसा अपराधभाव!
मैं कुछ बातें जरूर ऐसी कहता हूं, जो तुम्हारी परीक्षाएं हैं। मेरे अपने ढंग हैं आदमियों को तौलने के, परखने के, बदलने के। मैं कुछ ऐसी बातें जरूर कहूंगा, जो तुम्हारी धारणाओं के विपरीत जाती रहें। अध्यात्म तो हवाई बात है। उसमें तो तुम बड़े जल्दी राजी हो जाते हो। अब मोक्ष में तुम्हें झगड़ा भी क्या! ध्यान से तुम्हें विरोध भी क्या! सब मीठा-मीठा है। और सब सुंदर ही होगा। कुछ तुम्हारी वहां तो गति नहीं है। आकाश में तुम्हारी कोई गति नहीं है। इसलिए वहां तो तुम बड़े जल्दी राजी हो जाते हो।
शायद उन बातों से भी तुम्हारे अहंकार की तृप्ति हो रही हो--कि देखो, मैं संन्यासी हो गया। अब देखो, मैं अध्यात्म का पथिक हो गया। अब मेरी यात्रा परमात्मा की तरफ चल रही है। अब मैं मोक्ष पाने के लिए अग्रणी हो रहा हूं। अब दूर नहीं है मंजिल।
लेकिन तुम्हारी दो कौड़ी की धारणाएं हैं कि कोई राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का सदस्य है। उसको मैंने कुछ कह दिया--चोट लग गई। कि कोई जनता पार्टी का सदस्य है, उसको मैंने कुछ कह दिया और चोट लग गई।
मैं कुछ ऐसी बातें कहता ही रहूंगा। वे मेरे छांटने के ढंग हैं। जिनको नाव से उतर जाना है, उनको मैं उतार ही देना चाहता हूं। मैं ऐसे लोगों को नाव में रखना ही नहीं चाहता, जो अपराधभाव से भरे हों। जिनके भीतर किसी तरह का द्वंद्व हो--इसके पहले कि वे जगह रोकें, मैं उनको मुक्त कर देना चाहता हूं।
मगर लोग बड़े समझदार हैं!
लुधियाना से आए हुए एक जैन मित्र ने पूछा है कि "किसी बुद्धपुरुष ने कभी भी अपने प्रवचन के लिए फीस नहीं लगाई?"
वह बुद्धपुरुषों की गलती थी, इसमें मैं क्या करूं! इसलिए तुम जैसे नालायक उनके साथ जुड़ गए। मैं वह गलती नहीं करूंगा। मेरे अपने जीने का ढंग हैं। किसी बुद्धपुरुष से मुझे क्या लेना-देना। वे अपने ढंग से जीए; मुझसे तो पूछा नहीं! मैं उनसे क्यों पूछूं!
महावीर को नग्न रहना था, वे नग्न रहे। बुद्ध तो नग्न नहीं रहे। कृष्ण
तो नग्न नहीं रहे। ये सज्जन उनके पास पहुंच गए होते। और जरूर लुधियाना से लोग उनके पास पहुंचते रहे होंगे! पंजाब में तो एक से एक अदभुत लोग पैदा होते हैं।
बुद्ध से लोग जाकर पूछते थे कि महावीर ने तो वस्त्र छोड़ दिए। आपने वस्त्र क्यों नहीं छोड़े? और महावीर से लोग पूछते थे कि बुद्ध ने वस्त्र नहीं छोड़े; आपने वस्त्र क्यों छोड़े? कृष्ण तो बांसुरी बजा रहे हैं! आपकी बांसुरी कहां है? और राम तो धनुषबाण लिए खड़े हैं। और आप नंग-धड़ंग खड़े हैं! हर बुद्धपुरुष का अपना ढंग होगा। बुद्धुओं को छांटने का मेरा अपना ढंग है। मैं बुद्धुओं पर मेहनत नहीं करना चाहता।
और जैन हैं, तो गरीब तो नहीं होंगे। पांच-दस रुपये बचाने के लिए ऐसे दीवाने हो रहे हैं! यह नहीं दिखाई पड़ेगा उन्हें कि हम पांच-दस रुपये बचाने की बात कर रहे हैं। मगर बात को यूं छिपाएंगे कि किसी बुद्धपुरुष ने तो फीस लगाई नहीं! पांच-दस रुपये बचाने हैं कुल जमा। और बुद्धपुरुषों ने तुम्हें क्या समझाया--कि परिग्रह मत रखना। तुमसे कम से कम पांच-दस रुपये का परिग्रह छुटवा रहा हूं--और क्या! इतना भी नहीं छूटता! और क्या खाक छोड़ोगे!

और मैं कोई भिखारी नहीं हूं, इसलिए दान मांगता नहीं; फीस लेता हूं।
भीख क्यों मैं मांगूं? मैं कोई भिखारी हूं! तुम्हें भीख देने का मजा है।
तुम चाहते होओगे कि कोई भीख मांगे। तो तुम्हें मजा तो रहे--कि हमने दान दिया! वह अकड़ भी तुम्हारी यहां नहीं टिकने वाली। वह अहंकार भी तुम्हारा मैं यहां सुरक्षित नहीं रखता।
यहां तो भीतर आना है, तो तुम्हें अपनी उत्सुकता जाहिर करनी पड़ेगी। और तुम आ रहे हो। तुम्हें कोई जबरदस्ती बुला नहीं रहा है। तुम्हारी आकांक्षा हो--आओ। और तुम्हें पैसा बचाना हो, तो मत आओ। लेकिन मुझे सलाह मत दो। मैं किसी की सलाह कभी माना नहीं। और मुझे जो सलाह देने की हिम्मत करता है, वह क्या खाक मुझसे कुछ सीख कर जा सकेगा!
जो यहां सलाह देने आया है, वह सलाह कैसे ले सकेगा? एक ही काम कर लो, तो बहुत! इतनी बुद्धिमानी न दिखाओ! मुझे अपने ढंग से जीना है। अपने ढंग से ही जीऊंगा। इस तरह के कूड़ा-कर्कट को मैं यहां पसंद भी नहीं करता।
उन्होंने लिखा है, "अब तो आपका आश्रम आत्मनिर्भर हो गया है। अब फीस क्यों?" जैसे कि इनके द्वारा आत्मनिर्भर हो गया हो! जैसे कि तुम्हारी फीस से आत्मनिर्भर हो गया हो!
और तुम्हें क्या पता इस आश्रम को कितना बड़ा होना है। यह आश्रम कभी भी इतना आत्मनिर्भर नहीं हो जाएगा कि इसको फीस की जरूरत न रहे। क्योंकि यह विकासमान है। यह तो बढ़ता ही चला जाएगा। यह फैलता ही चला जाएगा। इस आश्रम में कम से कम एक लाख संन्यासी तो होने ही चाहिए। इससे कम क्या चलेगा! और तुम पांच-दस रुपये के लिए मरे जा रहे हो। मगर तुम यही सोच रहे हो कि तुमने बड़ी कीमत की बात कही है।
जरा मुझसे कुछ बातें कहने के पहले सोच लिया करें। यहां सलाह नहीं चलेगी। मुझे पता है, मैं क्या कर रहा हूं, क्यों कर रहा हूं।
गुरजिएफ ने अपनी पहली किताब छापी; तो उसके दाम रखे उसने--एक हजार रुपये। उस जमाने में, आज से पचास साल पहले, एक हजार रुपया बहुत कीमती चीज थी। आज से डेढ़ सौ साल पहले ब्रिटिश गवर्नमेंट ने पूरा का पूरा कश्मीर गुलाब सिंह को, कर्णसिंह के दादा-परदादा को, सिर्फ तीस लाख रुपये में बेच दिया था। पूरा कश्मीर! और आज से तीन सौ साल पहले पूरा न्यूयार्क वहां के आदिवासियों ने परदेश से आए हुए लोगों के लिए सिर्फ तीस रुपये में बेच दिया था--पूरा न्यूयार्क!
आज से पचास साल पहले हजार रुपये की बड़ी कीमत थी। जो भी लेने की सोचता किताब, उसकी हिम्मत न होती। हजार रुपये! लोग गुरजिएफ से पूछते कि "किसी बुद्धपुरुष ने कभी अपनी किताबों के ऐसे दाम नहीं रखे?" गुरजिएफ कहता, "उनकी वे जानें। मेरी मैं जानता हूं।"
जो आदमी हजार रुपये नहीं चुका सकता, उसकी कोई अभीप्सा नहीं है। उसकी कोई आकांक्षा नहीं है। सत्य मुफ्त नहीं मिलता। और तुम भाषा समझते हो धन की। धन की ही एकमात्र भाषा तुम समझते हो। उसको ही छोड़ने में तुम्हारी आत्मा एकदम कष्ट पाने लगती है।
तो गुरजिएफ ने अपनी किताब... एक हजार पन्नों की किताब है। उसमें सौ पन्ने भूमिका के कटवा रखे थे। और बाकी नौ सौ पन्ने जुड़े हुए थे; काटे नहीं थे। तो वह कहता कि "तुम ले जाओ। सौ पन्ने पढ़ लेना। अगर न जंचें, तो अपने हजार रुपये वापस ले जाना और किताब वापस कर देना। अगर जंचें तो ही आगे के पन्ने काटना। नहीं तो काटना मत। काट लिए, तो फिर किताब वापस नहीं लूंगा।" लेकिन वे सौ पन्ने इतने अदभुत थे कि मुश्किल था कि आदमी बिना काटे बच जाए। मगर उसने तो बात साफ कर दी थी कि सौ पन्ने पढ़ लो। मुफ्त पढ़ लो। फिर आगे मत काटना। अपने पैसे वापस ले जाना। किताब लौटा देना।
तुमने एक दिन सुन लिया। अगर बात न जमती हो, अगर तुम्हें दस रुपये, पांच रुपये बहुत प्यारे लगते हों--अपने पैसे बचाओ और लुधियाना भागो वापस। यहां क्या कर रहे हो? क्यों समय खराब कर रहे हो?
लेकिन ये छोटी-छोटी बातें, ये टुच्ची बातें तुम्हें भारी मूल्य की मालूम पड़ती हैं। दस रुपये देने में घबड़ाते हो और परमात्मा को खोजने निकले

हो! और जब मैं तुम्हारा अहंकार मांगूंगा, तो क्या करोगे! जेब खाली कर नहीं सकते और जब मैं तुमसे कहूंगा कि अपने प्राण ही खाली कर दो--कैसे कर सकोगे? ये मेरी अपनी विधियां हैं; मेरे अपने उपाय हैं। और मैं किसी बुद्धपुरुष का अनुकरण नहीं हूं। मैं अपने ढंग का आदमी हूं। और अपने ढंग से ही जीऊंगा।
मोहम्मद हुसैन, तुमने कहा--
जमाना हो गया घायल
तेरी सीधी निगाहों से
खुदा न खासता तिरछी
नजर होती तो क्या होता?
पूछता हूं कि तुम घायल हुए कि नहीं? जमाने को जाने दो। जमाने से क्या लेना-देना। मोहम्मद हुसैन घायल हुए कि नहीं? अगर घायल हुए हो, तो फिर रंग जाओ इस रंग में। और अगर घायल नहीं हुए हो, तो फिर इंतजाम करूं तिरछी निगाहों का!

दूसरा प्रश्नः ओशो, मेरे गुरु स्वामी लटपटानंद ब्रह्मचारी कहा करते थेः दुग्धाहार और फलाहार का सात्विक आहार किया करो। सुबह ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर ओम का जाप किया करो। अपने पास वस्त्र केवल तीन ही रखो। और कुछ संग्रह न करो। हर स्त्री को अपनी मां-बहन-बेटी की तरह देखो। और मन में बुरे विचार न आने दो। और लंगोट के पक्के रहो। लेकिन मेरे गुरु लटपटानंद जल्दी ही स्वर्गवासी हो गए और मैं अभी तक सत्य के मार्ग पर उनकी शिक्षा के अनुसार नहीं चल पाया। और अब आपकी बातें मुझे आकर्षित करती हैं। और विचित्र भी लगती हैं और एक तरह का संदेह भी मन में पैदा करती हैं कि सत्य की खोज के लिए अनुशासन चाहिए या उन्मुक्त जीवन? मेरी उम्र अभी छब्बीस वर्ष की है और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का समय भी आ गया है। मैं दुविधा में हूं कि संन्यास लूं अथवा विवाह करूं? कृपया मार्गदर्शन दें।

कन्हैयालाल द्विवेदी! मथुरा निवासी हैं। सो तुम समझ सकते हो! ... ये तुम्हारे गुरु लटपटानंद ब्रह्मचारी स्वर्गवासी नहीं हो सकते; नरकवासी हुए होंगे। ऐसे लटपटानंदों के लिए स्वर्ग में स्थान नहीं है।
और क्या-क्या मूढ़ता की बातें तुमसे कही हैं! दुग्धाहार--सात्विक आहार! शास्त्रों में लिखा है, सो दोहरा रहे होंगे तोतों की तरह। लेकिन दुग्धाहार सात्विक आहार नहीं है। क्योंकि दूध शरीर से निकलता है, जैसे खून शरीर से निकलता है। इसीलिए तो दूध पीने से खून जल्दी बढ़ जाता है। क्योंकि दूध में खून को बढ़ाने वाली शक्ति है, क्षमता है। दूध मां का खून ही है। और अपनी मां का पीओ--तो ठीक! गौ-माता का पी रहे हो!
गौ-माता का दूध तुम्हारे लिए नहीं है। ये लटपटानंद किसका दूध पीते रहे? गौ-माता का? यह गौ-माता का दूध गौ-पुत्रों के लिए है। यह बछड़ा-बछड़ियों के लिए है। यह लटपटानंदों के लिए है नहीं। कोई गाय नहीं कहती कि "आओ बेटा लटपटानंद, दूध पीओ!" यह गऊ के साथ अनाचार है, बलात्कार है। जबरदस्ती उसका दूध छीना जा रहा है। उसके बच्चे का दूध छीना जा रहा है!
और यह भी ध्यान रखना कि गौ का दूध पीओगे, तो सांड हो जाओगे। क्योंकि वह सांडों के लिए है; आदमियों के लिए नहीं। जितना ज्यादा दूध पीओगे, उतनी ही कामवासना सताएगी। सात्विक कैसे हो जाएगा! क्योंकि जितना दूध पीओगे, उतनी ही शरीर में ऊर्जा होगी। और ऊर्जा भी सांडों जैसी होगी। क्योंकि वह दूध बना सांडों के लिए था; तुम्हारे लिए बना नहीं था।
फिर लंगोट कस कर बांधो! लंगोट के पक्के रहो! पहले दूध पीओ--फिर लंगोट
के पक्के रहो!
दुग्धाहार सात्विक आहार कतई नहीं है। मैं नहीं कहता कि मत पीओ। मगर
यह जान कर पीना कि यह सात्विक आहार नहीं है। इस भ्रांति में मत रहना कि दुग्धाहार सात्विक आहार है।
ईसाइयों का एक संप्रदाय है--क्वेकर--वे दूध नहीं पीते। चाय भी बिना दूध के पीते हैं। काफी भी बिना दूध की पीते हैं। वे दूध को मांसाहार ही

मानते हैं। और मैं उनसे राजी हूं। वे ठीक कहते हैं। तुम्हारे सारे ऋषि- मुनि गलत बकवास करते रहे हैं। क्वेकर ठीक कहते हैं। क्योंकि दूध प्राणी- आहार है--एनीमल फुड है। चाहे मांस खाओ, चाहे खून पीओ--चाहे दूध पीओ! सात्विक क्या है दूध में?
और यह भी तुमने देखा कि आदमी को छोड़ कर कोई जानवर एक उम्र के बाद दूध नहीं पीता। और तुम छब्बीस साल के हो गए और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अवसर आ गया, और अभी भी दूध पी रहे हो?
बछड़े, बछियां एक समय तक दूध पीते हैं, इसके बाद घास चरते हैं। तुम घास
कब चरोगे? गृहस्थाश्रम में प्रवेश होने का अवसर आ गया--अब घास चरो! अब गौ- माता का दूध काफी पी लिए। काफी सता लिए गौ-माता को। अब घास खाने का समय आ गया! और अभी मौसम अच्छा। हरा घास उपलब्ध है! जी भर कर चरो!
आदमी को छोड़ कर कोई पशु पृथ्वी पर बचपन की एक उम्र के बाद दूध नहीं पीता। जब भोजन करने के योग्य हो गए, तो अब दूध पीने की क्या जरूरत? दूध तो छोटे बच्चे के लिए है। वह जो कि भोजन नहीं पचा सकता, उसके लिए है। लटपटानंद--इनके लिए दूध है? इनसे भोजन नहीं पचता था?
लेकिन मूर्खतापूर्ण बातें अगर पुरानी हों, तो हमें लगता है कि सही होनी ही चाहिए। और तब तुम्हें मेरी बातें विचित्र भी मालूम होंगी। क्योंकि तुम गलत सत्संग में रहे हो। तुम नासमझी के वातावरण में पले हो। मथुरा की हवा तुम्हें खराब कर गई। यह सदियों से दूषित हवा है। और ये लटपटानंद तुमको मिल गए! और क्या-क्या बातें तुम्हें सिखा गए--कि सुबह ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर ओम का जाप किया करो!
जरा वैज्ञानिक विश्लेषण समझो, वैज्ञानिक अन्वेषण समझो। प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग समय में उठना उचित है। शास्त्र अक्सर बूढ़े लोगों ने लिखे हैं। स्वभावतः, उन दिनों बुढ़ापे का बड़ा आदर था। बूढ़े होने में बड़ी कीमत थी। हालांकि बूढ़े होने में कोई कीमत नहीं। गधे भी बूढ़े होते हैं। घोड़े भी बूढ़े होते हैं। बूढ़े होने में कोई कीमत नहीं है। और गधा बूढ़ा होकर और भी बड़ा गधा हो जाता है। और कुछ भी नहीं होता।
बूढ़े होने से क्या होगा! मूर्ख आदमी बूढ़ा होकर महामूर्ख हो जाता है। कोई बूढ़े होने से बुद्धिमत्ता नहीं आती। उम्र का बुद्धिमत्ता से कोई संबंध नहीं है। लेकिन शास्त्र बूढ़ों ने लिखे हैं।
बूढ़े ज्यादा देर नहीं सो पाते। और उन दिनों न बिजली थी, न रोशनी थी--जब शास्त्र लिखे गए--सूरज डूबा--कि रात हो गई! सूरज डूबा, कि सोने का समय आ गया। जब जल्दी सो जाओगे, तो दो बजे, तीन बजे नींद खुल जाएगी। बूढ़े आदमी की तो खुल ही जाएगी।
बच्चा मां के पेट में चौबीस घंटे सोता है। उसको ब्रह्ममुहूर्त में मत जगा देना, नहीं तो उसकी जिंदगी ही खराब हो जाएगी; वह अपंग हो कर पैदा होगा। छोटे बच्चे तेईस घंटे सोएंगे। फिर बाईस घंटे। फिर इक्कीस घंटे। फिर बीस घंटे। फिर अठारह घंटे। जवान होते हुए आदमी आठ घंटे, सात घंटे के करीब आ जाएगा। यह भी प्रत्येक व्यक्ति का अलग-अलग होगा।
बुढ़ापे में आदमी चार घंटे, तीन घंटे, दो घंटे--बहुत हो जाएगा। क्यों? क्योंकि नींद का संबंध शरीर के विकास पर निर्भर है।
जब बच्चे का शरीर निर्मित होता है मां के पेट में, तो उसको चौबीस घंटे सोना पड़ता है। शरीर में इतना काम चल रहा है कि अगर उसकी नींद टूटेगी, तो शरीर के विकास में बाधा पड़ेगी। वह सोया रहता है; शरीर में विकास होता रहता है।
जो विकास मां के पेट में नौ महीने में होता है, फिर पूरी जिंदगी में भी
उस गति से विकास नहीं होता। इसलिए नींद जरूरी है।
चिकित्सक के पास जाओ; पूछो उससे; अगर कोई बीमारी हो गई है, तो पहला काम है--नींद जरूरी है। क्योंकि नींद नहीं होगी ठीक से, तो बीमारी को पूरा करने का शरीर को अवसर नहीं मिलेगा।
सोने का अर्थ हैः सब कार्यक्रम बंद हो गया; सब क्रियाकलाप बंद हो गया।
अब शरीर को मौका है कि अपनी स्वास्थ्यदायी शक्तियों का उपयोग कर ले। अब कोई उलझन नहीं, दुकानदारी नहीं; बाजार नहीं; कीर्तन-भजन नहीं। अब शरीर को

बिल्कुल अवसर है कि अपनी ऊर्जा को फिर से जीवंत कर ले। इसलिए जवान आदमी को सात-आठ घंटे सोना ही चाहिए। इससे कम सोएगा, तो नुकसान पहुंचेगा उसको।
फिर प्रत्येक व्यक्ति के सोने का अलग-अलग काल गहरा होता है। वैज्ञानिक खोज से यह पता चला है कि बाईस घंटे तो शरीर का एक तापमान रहता है। और दो घंटे के लिए रात में शरीर का तापमान कम से कम दो डिग्री नीचे गिर जाता है। वे दो घंटे सर्वाधिक गहरी नींद के घंटे हैं। किसी का दो बजे से चार बजे के बीच गिरता है। किसी का तीन बजे से पांच बजे के बीच गिरता है। किसी का चार से छह के बीच गिरता है। किसी का पांच से सात के बीच गिरता है। उन दो घंटों को अगर तुम ठीक से नहीं सोए, तो तुम दिन भर उदास रहोगे, खिन्न रहोगे, बेचैन रहोगे, परेशान रहोगे। वे दो घंटे तो गहरी नींद में जाने ही चाहिए।
और वे चूंकि प्रत्येक व्यक्ति के अलग-अलग हैं, इसलिए कोई नियम नहीं बना सकता कि ब्रह्ममुहूर्त में ही उठ आना। हो सकता है तुम्हारे लिए वे ही दो घंटे सर्वाधिक मूल्यवान हों। इसलिए तुम्हें अपना ही निरीक्षण करना होगा कि मेरी नींद सबसे ज्यादा गहरी कब होती है। जब तुम्हारी नींद सर्वाधिक गहरी होती है, उसको तोड़ना ही मत अन्यथा तुम अपने शरीर की दुश्मनी कर रहे हो। और फिर शरीर उसके बदले लेगा। शरीर तुम्हें फिर छोड़ेगा नहीं। शरीर की प्रकृति के विपरीत जाओगे, तो घातक बीमारियां होंगी। शरीर जल्दी ही क्षीण हो जाएगा, रुग्ण हो जाएगा, वृद्ध हो जाएगा।
इसलिए मैं कुछ नहीं कह सकता कि ब्रह्ममुहूर्त में जगना या नहीं। तुम जांच कर लेना। अक्सर तो यह होता है कि ब्रह्ममुहूर्त में तुम जबरदस्ती उठते हो, क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है। खींचतान कर अपने को उठा लेते हो। नींद आ रही है और उठ गए हो। ठंडे पानी में नहा कर नींद को भगा रहे हो। फिर किसी तरह बैठ कर झपकी खा रहे हो और ओंकार का मंत्र जप रहे हो!
और ओंकार का मंत्र जपोगे, तो और झपकी आएगी, क्योंकि मंत्र जपने से नींद आने का संबंध है।
किसी भी चीज को बार-बार दोहराओगे, तो नींद पैदा होती है। इसलिए मां अपने बच्चे के पास लोरी गाती है। लोरी का अर्थ इतना ही होता है कि एक ही शब्द को दोहराए जाती है कि सो जा बेटा--मुन्ना बेटा, राजा बेटा! कुछ एकाध दो शब्दों को दोहराए चली जाती। थोड़ी देर में बेटा सो जाता है। मां सोचती है कि शायद मेरे सुमधुर संगीत के कारण सो रहा है! चाहे ये देवी कर्कशा हों! बेटा इसलिए सो गया है कि वह जो बकवास लगा रखी थी--कि राजा बेटा! मुन्ना बेटा! राजा बेटा--मुन्ना बेटा! उसको कब तक सुने! घबड़ा कर भीतर सरक गया; नींद में डूब गया--कि हे माताराम! छुट्टी दो! तुम्हारी भी छुट्टी, मेरी भी छुट्टी!
तुम क्या करोगे ओंकार का जाप? बैठ कर दोहराओगे--ओम ओम ओम। दोहराने से सिर्फ तंद्रा आएगी।
और अगर ब्रह्ममुहूर्त में जबरदस्ती उठ आए हो--और अभी जवान हो, तो जबरदस्ती ही उठोगे--तब तो और भी नींद आएगी। इससे अपराध-भाव पैदा होगा। तुम्हारी तथाकथित धार्मिक धारणाएं तुम्हें अपराध-भाव से भर देती हैं। फिर तुम्हें यह बेचैनी होगी कि ब्रह्ममुहूर्त में मैं सजग क्यों नहीं हो पाता! नींद क्यों आती है?
और लटपटानंद जैसे लोगों से जा कर पूछोगे, तो वे कहेंगे, तामसी वृत्ति! सात्विक आहार करो। बुरे विचारों को मन में मत आने दो। जैसे कि बुरे विचारों को मन में आने देना या न आने देना तुम्हारे वश की बात है! बुरे विचार आएंगे, तो तुम क्या करोगे?
और मजा तुम देखते हो एक तरफ कहते हैं, तुम्हारे स्वामी लटपटानंद ब्रह्मचारी--"मन में बुरे विचार न आने दो, और लंगोट के पक्के रहो!" जब बुरे विचार नहीं आते, तो लंगोट के पक्के रहने की क्या जरूरत! यह तो बड़ी उलटी बात हो गई। जब बुरे विचार आते ही नहीं, तो अब लंगोट ढीला भी रखो, तो क्या हर्जा है! लंगोट न भी पहनो, तो चलेगा। जब बुरे विचार आते ही नहीं, तो बात ही खतम हो गई; जड़ ही टूट गई। अब यह "लंगोट के पक्के" रहने में क्या मतलब है! लेकिन इस तरह की गधापच्चीसी की बातों को धर्म समझा जाता है।

और बुरे विचार न आएं, इसके लिए क्या रास्ता बताया तुम्हारे लटपटानंद ने? उनके खुद भी अभी मिटे नहीं होंगे। बुरे विचार न आना सिवाय साक्षीभाव के और किसी भी तरह से समाप्त नहीं होता।
ओंकार का पाठ करोगे; राम-राम जपोगे--इससे बुरे विचार बंद नहीं होंगे। क्योंकि इससे साक्षीभाव पैदा नहीं होता। यह तो सब बकवास है। यह व्यर्थ बकवास है। यह खुद ही बुरा विचार है। साक्षीभाव का तो अर्थ यह है कि जो भी विचार आते हों--बुरे कि अच्छे--जाग कर सिर्फ देखते रहो। "यह विचार आया। यह उठा। यह सामने खड़ा हो गया। यह विदा होने लगा। यह गया! यह गया। यह गया। दूसरा आ गया।" जैसे रास्ते के किनारे कोई राह को चलते हुए देखे। कार गुजरी। बस गुजरी। बैलगाड़ी आई। लोग गुजर रहे हैं। इधर-उधर जा रहे हैं। तुम्हें फिकर नहीं यह कहने की कि कौन अच्छा है, कौन बुरा है; कौन साधु, कौन असाधु। तुम सिर्फ देख रहे हो। सिर्फ द्रष्टामात्र। बस, इतना ही होश रखना कि मैं द्रष्टा हूं।
लंगोट वगैरह बांधने की कोई जरूरत नहीं है। यह तो द्रष्टा होने से नीचे गिर जाना है। यह तो कर्ता हो जाना है। लंगोट कस कर बांध रहा है--कौन बांध रहा है? तुम कर्ता हो गए। यह तुमने अपने साथ जबरदस्ती कर ली। और जबरदस्ती के परिणाम बुरे होने वाले हैं। जबरदस्ती यानी दमन।
"लंगोट के पक्के रहो"--इसका मतलब होता हैः जबरदस्ती करते रहो अपने साथ। अपने को कस-कस कर बांधते रहो। अपने चारों तरफ जंजीरें खड़ी कर लो। इस दमन के बुरे परिणाम होने वाले हैं। और हुए हैं।
यह देश जितना पाखंडी हो गया है, दुनिया में कोई देश नहीं है। ये तुम्हारे इसी तरह के गुरु, स्वामियों, तथाकथित संतों-महंतों की कृपा है कि यह देश पाखंड-शिरोमणि हो गया है। पृथ्वी पर कोई देश इतना पाखंडी नहीं है। क्योंकि पृथ्वी पर किसी देश में इस तरह की मूर्खताओं का इतना पुराना जाल नहीं है।
चंदूलाल की अपनी पत्नी गुलाबो से एक दिन नोक-झोंक हो गई और वे गुलाबो
से बोले, "देखो, इस तरह अंट-शंट न बको अन्यथा मैं सभी मित्रों को बता दूंगा कि शादी के पहले भी तुम्हारे साथ मेरे संबंध थे!"
"हां, बता दो। डर किसे है। और मैं भी लोगों को बता दूंगी कि तुम कोई पहले व्यक्ति नहीं हो, जिसके साथ मैं सोई थी!"
सचाइयां कुछ और हैं, छिपावटें कुछ और हैं!
चंदूलाल ने अपनी पत्नी से कहाः "आज पड़ोस वाली दुकान से कोई चीज भूल कर
मत खरीदना।"
"क्यों?" पत्नी ने पूछा।
"इसलिए कि वह उल्लू का पट्ठा हमारा तराजू ही एक दिन के लिए मांग कर ले गया है!"
यहां दुकानदार दो तरह के तराजू रखते हैंः खरीदने के लिए एक तरह का तराजू, बेचने के लिए और तरह का तराजू।
ट्रेन से उतरते हुए स्वामी मटकानाथ ब्रह्मचारी--रहे होंगे तुम्हारे लटपटानंद ब्रह्मचारी जैसे ही, ने एक छाता उठाया और बगल में दबा कर आगे बढ़ने लगे कि अचानक उन्हें एक आदमी ने पकड़ा और कहा, "स्वामीजी, क्या आपका नाम नंदलाल है?"
"जी नहीं। लेकिन क्यों?"
"बात यह है स्वामी जी कि यह जो छाता आप ले जा रहे हैं, यह नंदलाल का है।
और वह मैं हूं!"
अब स्वामी जी से एकदम सीधा-सीधा कैसे कहो कि छाता चुराओ मत! तो बेचारे नंदलाल को यह रास्ता निकालना पड़ा, यूं उलटा कान पकड़ना पड़ा--कि आपका नाम नंदलाल तो नहीं है! यहां ऊपर कुछ है, भीतर कुछ है।
चंदूलाल कलकत्ता गए। दो-तीन महीने लग जाने वाले थे; धंधे के काम से गए थे। बड़ी चिंता थी गुलाबो की। अभी-अभी शादी हुई थी चंदूलाल की। जवान स्त्री को कैसे अकेला छोड़ जाएं?
भारतीय शास्त्र कहते हैं, जब स्त्री मां-बाप के पास हो, तो पिता उसकी रक्षा करे। और जब विवाहित हो जाए, तो पति उसकी रक्षा करे। और जब बूढ़ी हो

जाए, तो बेटे उसकी रक्षा करें। क्या गजब का देश है! यहां रक्षा ही रक्षा की जरूरत है, जैसे चारों तरफ भक्षक बैठे हुए हैं! छोटी बच्ची हो, तो बाप रक्षा करे। जवान हो, तो पति रक्षा करे। बूढ़ी हो जाए, फिर भी रक्षा की जरूरत है। क्योंकि ये जो ब्रह्मचारी घूम रहे हैं; लंगोटी कस कर बांधे हुए हैं; इनसे खतरा है ही।
यह जो तथाकथित धार्मिक जाल फैला हुआ है, यह जो पाखंड फैला हुआ है--जहां मुखौटे लगाए हुए लोग बैठे हैं, इनसे डर तो है ही। यह संत-महात्माओं का देश! यह ऋषि-मुनियों का देश! यहां देवता पैदा होने को तड़पते हैं! शायद इसीलिए तड़पते होंगे!
तो चंदूलाल चिंतित थे कि किसकी रक्षा में छोड़ जाएं पत्नी को! आखिर उन्होंने सोचा कि ब्रह्मचारी मटकानाथ, उनके गुरु, इससे योग्य और कौन आदमी होगा! यही उनकी शिक्षा कि लंगोट के पक्के रहो! इतनी शिक्षा देते हैं लंगोट के पक्के रहने की; खुद तो लंगोट के पक्के होंगे ही। और अक्सर जो लंगोट के पक्के नहीं हैं, वे ही लंगोट के पक्के होने की शिक्षा देते हैं। वे जोर-जोर से चिल्ला कर तुमको ही नहीं समझा रहे हैं; अपने को भी समझा रहे हैं।
यह दुनिया बहुत अजीब है!
बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि अगर कहीं चोरी हो जाए, तो जो आदमी बहुत शोरगुल मचा रहा हो कि "पकड़ो चोर को। मारो चोर को। कहां गया! कौन है!" उसको पहले पकड़ लेना। क्योंकि बहुत संभावना यह है कि इसी ने चोरी की हो।
यह तो मैंने बहुत बाद में पढ़ा।
जब मैं छोटा बच्चा था, तो मेरे गांव में तरबूज-खरबूज बड़े सुंदर होते हैं। दूर-दूर तक उनकी ख्याति है। मेरे गांव में जो नदी बहती है, तरबूजों- खरबूजों के स्वादिष्ट होने के कारण उस नदी का नाम भी "शक्कर" हो गया है। नदी का नाम ही शक्कर! इतनी मिठास तरबूजों-खरबूजों में होती है। और एक ककड़ी तो खास होती है--"शक्कर ककड़ी", जो हिंदुस्तान में कहीं होती ही नहीं। लाजवाब है वह! मैंने सारे देश में घूम कर तरबूज-खरबूज चखे हैं, लेकिन बात सच है कि "शक्कर" में जो, उस नदी के किनारे जो तरबूज-खरबूज होते हैं, उनका कोई मुकाबला नहीं।
तो बचपन से ही मैं तरबूज-खरबूज चुराने जाता था। बर्ट्रेंड रसल को तो बहुत बाद में मैंने पढ़ा। मगर यह तरकीब मैं पहले ही से उपयोग करता था। दो-चार लड़कों को लेकर घुस जाना तरबूज-खरबूज चुराने। और कभी पकड़ने की नौबत आ जाए, कि मालिक आ जाए, तो मालिक के साथ हो जाना। इतने जोर से शोरगुल मचाना कि "पकड़ो। छोड़ो मत। यह आदमी हमेशा घुसता है!" और मैं वहीं खड़ा रहूं, बाकी तो भाग खड़े हों।
स्वभावतः वह मालिक समझे कि यह आदमी तो चुरा सकता ही नहीं। यह तो यहीं खड़ा हुआ है। और साथ उसका दूं मैं, मालिक का--कि पकड़ो। पुलिस में ले जाओ!
एक तरबूज-खरबूज के खेत में बार-बार यह हुआ। आखिर उसने कहा कि "हर बार
जब भी मैं आता हूं, तब यह छोकरा हमेशा ही यहां होता है! और हमेशा ही चिल्लाता है कि पकड़ो!"
उसने मुझसे पूछा, "लेकिन यह माजरा क्या है--कि जब भी मेरे खेत में चोरी होती है, तुम हमेशा ही यहीं होते हो! और तुम हमेशा ही मेरा साथ देते हो। एकाध बार हो, तो संयोगवश। हो सकता है, तुम यहां रहे हो! मगर हमेशा! और आधी रात को!"
तो मैंने कहा कि "मैं यहीं घूमता रहता हूं कि कहीं किसी की चोरी वगैरह
न हो जाए!"
उसने कहा कि "तुम्हारा भी अजीब हिसाब है! तुम चोरी किसी की न हो जाए... !"
मैंने कहा, "इसीलिए कि गांव में कोई बच्चा चोरी न कर पाए, मैं यहीं घूमता हूं। आधी रात तक चक्कर लगाता रहता हूं। किसी के खेत में चोरी नहीं होनी चाहिए।"
उसने मुझे दो तरबूज भेंट किए। उसने कहा, "बेटा, ऐसे ही--इसी तरह जीवन होना चाहिए! सात्विक जीवन!"

बेचारे चंदूलाल ने सोचा कि स्वामी मटकानाथ ब्रह्मचारी की ही रक्षा में छोड़ जाएं पत्नी को। सो छोड़ गए।
जब तीन महीने बाद वापस लौटे, तो तार वगैरह देने में तो चंदूलाल मानते नहीं। कौन खर्चा करे! एकदम चले आए धड़ल्ले से। भीतर पहुंच गए। देखा तो ब्रह्मचारी मटकानाथ पत्नी से प्रेम कर रहे हैं!
आगबबूला हो गए चंदूलाल। पत्नी की गर्दन पकड़ ली और कहा कि "बस, नाता- रिश्ता खतम। गोली मार दूंगा। यह सीता-सावित्री का देश--और यह तेरा व्यवहार! यह धोखेबाजी! और कसम खाई थी तूने, जब गया था मैं कलकत्ता, कि धोखा नहीं देगी!"
पत्नी तो घबड़ा गई। कुछ बोल न निकला! घिग्घी बंध गई।
और तभी चंदूलाल स्वामीजी की तरफ मुड़ा और कहा कि "स्वामीजी, हे भूतपूर्व गुरुदेव! कम से कम इतना शिष्टाचार तो बरतो कि जब मैं अपनी पत्नी से बात कर रहा हूं, तब तो तुम कम से कम यह दंड-बैठक लगाना बंद कर दो! तुम प्रेम ही किए जा रहे हो! मैं उसकी गर्दन दबा रहा हूं! तुम यह भी नहीं फिकर कर रहे कि मैं मौजूद हूं। कम से कम अभी तो रुक जाओ!"
मगर दमित लोग। मौका पा जाएं, तो रुक नहीं सकते। लंगोट के पक्के लोग-- खतरनाक। इनसे जरा सावधान रहना।
और सदियों से यह होता रहा है। तुम्हारे सारे पुराण इन कथाओं से भरे हैं। तुम्हारे ऋषि-मुनि इसी तरह के जीवन जीए हैं। तुम्हारे देवता भी आकाश से उतर आते हैं! उनके पास सुंदर उर्वशियां हैं, मेनकाएं हैं, उनसे भी ऊब जाते हैं; जमीन पर आ जाते हैं। किसी ऋषि-मुनि की पत्नी को धोखा दे जाते हैं। किसी ऋषि-मुनि की पत्नी के साथ व्यभिचार कर जाते हैं। यह तुम्हारी सनातन परंपरा है! यह तुम्हारा सनातन धर्म है!
यह धोखाधड़ी इसलिए पैदा होती है कि मौलिक रूप से हम किसी आत्मिक क्रांति से तो गुजरते नहीं; बस, ऊपर से आरोपण कर लेते हैं।
अब तुम्हारे स्वामी तुमसे कह गए हैं कि "अपने पास केवल तीन ही वस्त्र रखो और कुछ संग्रह न करो।" संग्रह का संबंध "कितनी चीजें तुम रखते हो", इससे नहीं है। तुम्हारा तीन से इतना मोह हो सकता है, जितना किसी का अपने पूरे साम्राज्य से न हो।
जनक के जीवन में यह प्यारी कथा है। एक संन्यासी उसके गुरु के द्वारा भेजा गया कि "जा, अंतिम शिक्षा तू जनक से ग्रहण कर।" उसे तो बहुत दुख हुआ। गुरु ने कहा था, इसलिए बेमन से आया। दुख इसलिए हुआ कि मैं संन्यासी, और इस भोगी सम्राट से, जो धन, यश, पद-प्रतिष्ठा की दौड़ में लगा है--इससे शिक्षा लेने जाऊं! मगर गुरु ने कहा, तो मजबूरी थी, तो गया। और जब पहुंचा जनक के दरबार में, तो और दंग रह गया। वहां महफिल जमी थी। शराब चल रही थी। नृत्य हो रहा था। जनक बीच में बैठे थे। दरबारी मस्त हो कर डोल रहे थे। जाम पर जाम चल रहे थे।
जाम चलने लगे दिल मचलने लगे
बाद मुद्दत वो महफिल में क्या आ गए!
जैसे गुलशन में बहार आ गई। बज्म लहरा गई!
वहां तो शराबघर का वातावरण था। संन्यासी तो बहुत बेचैन हुआ। लेकिन जनक ने कहा, "अब आ गए हो, तो कम से कम रात रुको, विश्राम करो। सुबह चले जाना।"
सुबह संन्यासी को लेकर पीछे ही बहती हुई नदी में स्नान करने जनक गया। कपड़े दोनों ने उतार कर रखे। स्वामी के पास तीन ही कपड़े रहे होंगे। कपड़े बाहर रखे तट पर और दोनों नदी में उतरे। और जब दोनों नदी में उतरे, तो स्वामी एकदम चिल्लाया कि "देखो, क्या हो गया! तुम्हारे महल में आग लगी है!" सम्राट ने कहा, "लगी रहने दो। इस संसार में तो सभी चीजों को नष्ट हो जाना है। हम अपना स्नान जारी रखें!"
स्वामी ने तो एकदम दौड़ लगा दी किनारे की तरफ। वह बोला कि "तुम जानो तुम्हारा महल जाने। मेरे तीन कपड़े! वे बिल्कुल दीवाल के पास रखे हैं। कहीं जल न जाएं!"

सम्राट ने कहा, "थोड़ा सोचो। मेरा महल जल रहा है और तुम सिर्फ तीन कपड़ों
के पीछे भागे जा रहे हो! किसकी आसक्ति ज्यादा है? किसका मोह ज्यादा है?" आसक्ति और मोह का संबंध मात्रा से नहीं होता। आसक्ति और मोह का संबंध बोध से होता है। तुम तीन कपड़ों से बंध सकते हो। एक लंगोटी से बंध सकते हो। उस एक लंगोटी को ऐसे पकड़ सकते हो, जैसे कि कोई साम्राज्य हो। और कोई व्यक्ति पूरे साम्राज्य के रहते अलिप्त रह सकता है। अलिप्त होने में अपरिग्रह है; लिप्त होने में परिग्रह है।
मात्राओं में मत उलझो। मात्राओं से क्रांति नहीं होती।
गरीब आदमी, भिखमंगा, अपनी रूखी-सूखी रोटी को भी ऐसे कस कर पकड़े रखता है, उतना ही काफी है; उसमें ही उसका सारा मोह लग जाता है। लेकिन हम गणित से जी रहे हैं। हम मात्रा की भाषा में सोचते हैं। और जीवन की क्रांति गुणात्मक होती है--मात्रात्मक नहीं, परिमाणात्मक नहीं।
ये क्या पागलपन की बातें हैं कि अपने पास केवल तीन ही वस्त्र रखो। अरे, तीन रखो कि तेरह रखो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। सवाल यह है कि तुम वस्त्र नहीं हो--यह स्मरण रखो। वस्त्र ही नहीं; तुम शरीर भी नहीं हो--यह स्मरण रखो। शरीर ही नहीं; तुम मन भी नहीं हो--यह स्मरण रखो। फिर जितने वस्त्र रखना हो, रखे रहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। पहनोगे तो एक ही वस्त्र। कोई अंतर नहीं पड़ता।
लेकिन बड़ा अजीब हिसाब है इस देश का। हम उलझ गए हैं बाहरी बातों में।
और हमारे सब मापदंड बाहरी हो गए। तो हम पूछते हैं कि झोपड़े में है, तो महात्मा है। और महल में है... तुम जनक से चूक जाते। जनक तुम्हें महात्मा नहीं मालूम होते। जनक सच में ही महात्मा थे। तुम्हारे बहुत से महात्माओं से कई गुने ज्यादा, गुणात्मक रूप से भिन्न थे।
कृष्ण तो साम्राज्य के बीच रहे। तीन कपड़े थे कृष्ण के पास--तुम सोचते हो? लेकिन मुक्त--परिपूर्ण मुक्त। और जिनके पास तीन कपड़े हैं, वे मुक्त हैं? तब तो ये सारे देश में जो बिल्कुल नंगे-भूखे हैं, इन सबको स्वर्ग मिलने वाला है! फिर तो पशु-पक्षी जिनके पास एक भी वस्त्र नहीं हैं, ये तो तुम से आगे रहेंगे। लटपटानंद पीछे छूट जाएंगे! गधे-घोड़े आगे निकल जाएंगे! स्वर्ग में पहले गधे-घोड़े प्रवेश करेंगे; फिर कहीं लग जाए मौका लटपटानंद को, तो लग जाए; क्योंकि वे तीन कपड़े तो पकड़े ही होंगे! और लंगोट तो कस कर बांधा ही होगा उन्होंने!

तुम्हें मेरी बातें विचित्र लग सकती हैं, क्योंकि मेरी बातें सत्य हैं और सत्य सदा विचित्र लगता है।
अब क्या पागलपन की बात है कि वे तुम से कहते थे कि "हर स्त्री को अपनी मां-बहन-बेटी की तरह देखो!" मां का क्या मतलब होता है? मां का मतलब होता है--तुम्हारे पिता की पत्नी! हर स्त्री को अपने पिता की पत्नी समझोगे, कुछ पिता का भी विचार करो! पिता को नरक भिजवाना है!
बेटी का क्या मतलब होता है? बिना पत्नी के बेटी कहां से लाओगे? और जब सभी स्त्रियां तुम्हारी बेटियां होंगी, तो कोई चमत्कार करना पड़ेगा, तब बेटी पैदा होगी।
बेटी, कि मां, कि बहन--सब कामवासना के ही रिश्ते हैं। मां भी कामवासना
का ही रिश्ता है; तुम्हारे पिता की पत्नी है वह। तुमसे उससे पैदा हुए हो। कामवासना से ही पैदा हुए हो। और बहन से भी कामवासना का ही रिश्ता है। तुम एक ही गर्भ से आए हो; एक ही कामवासना के स्रोत से आए हो। और क्या रिश्ता है? और बेटी का क्या मतलब? --कि तुम्हारी कामवासना से जो पैदा होगी।
सिर्फ पत्नी को छोड़ कर बाकी सबको बचा लिया। और बिना पत्नी के तीनों नहीं हो सकते। यह मजा देखो! यह जरा मूढ़ता देखो! पत्नी से ही मां हो सकती है; और पत्नी से ही बेटी हो सकती है। और पत्नी के ही होने से बहन हो सकती है। उसी पत्नी को छोड़ दिया और बाकी तीनों बचा लिए! वृक्ष तो काट दिया, पत्ते बचा लिए, फूल बचा लिए, फल बचा लिए! इनमें प्राण न रह जाएंगे।

और जिस व्यक्ति को साक्षीभाव है, वह क्यों ऐसा सोचे कि कोई बहन है, कोई मां है, कोई बेटी है; स्त्री स्त्री है; न पत्नी, न बहन, न मां, न बेटी। ये नाते ही क्यों बांधने? इन नातों से मुक्त होना है--कि ये नाते बनाने हैं! सिर्फ पत्नी भर से भय है इन तथाकथित ब्रह्मचारियों को। और किसी से भय नहीं है। उस पत्नी से बचने के लिए क्या-क्या तरकीबें निकालते हैं!
मैंने सुना है, चंदूलाल... रास्ते पर भीड़-भाड़ थी। सरकस की तरफ लोग जा रहे थे। सरकस का पहला शो छूटा था। दूसरा शुरू होने का था। तो बड़ी भीड़मभक्का थी। एक सुंदर स्त्री को देख कर संयम न साध सके। लंगोट ढीला हो गया! कुछ ज्यादा नहीं किया, एक च्यूंटी ले दी। अब च्यूंटी ऐसा कोई बहुत बड़ा पाप नहीं है। मगर स्त्री ने चीख-पुकार मचा दी एकदम; हालांकि स्त्री भी वहां गई ही इसलिए होगी कि कोई च्यूंटी ले दे। क्योंकि सजी-बजी... ऐसी सजी- बजी कि कोई च्यूंटी न ले, तो दुखी लौटे घर। कोई धक्का न मारे, तो सोचे कि अब मैं सुंदर नहीं दिखाई पड़ती! तो मेरा सारा साज-सिंगार व्यर्थ गया!
तो चंदूलाल ने उसकी आकांक्षा पूरी कर दी। च्यूंटी ले दी। मगर एक पुलिसवाले ने पकड़ लिया और ऐसी कुटाई की चंदूलाल की कि चीं बुलवा दी! जमीन पर गिरा कर छाती पर बैठ गया! उसने भी मौका नहीं छोड़ा। उसको पिटाई करने में मजा आ रहा होगा! उसने यह मौका देख कर पिटाई कर दी। धर्म की रक्षा के लिए तो पिटाई की जा सकती है! और भीड़ ने भी उसका साथ दिया। और भीड़ ने भी रसीद किए कुछ हाथ। क्योंकि ऐसा मौका कौन छोड़े! जिन-जिन के दिल में गुबार था, जिन-जिन को क्रोध था--किसी पर भी रहा हो--उन्होंने चंदूलाल की पिटाई कर दी। कपड़े फट गए। लहूलुहान हो गया मुंह। खरोंचें आ गईं।
और वह पुलिसवाला छाती पर बैठा है और दे रहा धमाधम और कह रहा कि "देख, अब
आज से हरेक स्त्री को अपनी मां-बहन-बेटी समझ।"
और तभी गुलाबो वहां आई। और चंदूलाल से बोली कि "ऐ पप्पू के पिता, ज्यादा चोट वगैरह तो नहीं आई?"
चंदूलाल ने पुलिसवाले की तरफ देखा और कहा कि "नहीं बहनजी, बिल्कुल चोट नहीं आई!"
जब सभी स्त्रियों को अपनी बहनजी मानना है, और पुलिसवाला यहीं बैठा है! अभी फिर चढ़ बैठेगा छाती पर कि फिर तुमने हरकत की! तो वह गुलाबो, अपनी पत्नी तक को बहनजी कह रहा है!
यह क्या पागलपन है! यह जबरदस्ती के आरोपण, जबरदस्ती का आचरण! कोई आवश्यकता नहीं है किसी स्त्री को मां मानने की, या बहन मानने की, या बेटी मानने की, या पत्नी मानने की। कोई आवश्यकता नहीं है। वह वह है; तुम तुम हो। पुरुषों के बाबत नहीं कहते तुम से तुम्हारे ब्रह्मचारीजी कि "हरेक पुरुष को अपना पिता मानो, बेटा मानो, भाई मानो!" क्यों? जब स्त्रियों के पीछे इतने दीवाने हैं, तो पुरुषों का भी तो कुछ इंतजाम कर दो! लेकिन पुरुषों के संबंध में कुछ नहीं कहते। क्यों? क्योंकि आरोपण करने की कोई जरूरत नहीं। नैसर्गिक वासना को दबाना है।
साक्षी बनो, कन्हैयालाल द्विवेदी! इन व्यर्थ की बातों से कुछ भी न होगा। लटपटानंद नरक में पड़े होंगे, अगर कहीं कोई नरक है।
अब तुम पूछते हो कि "आपकी बातें मुझे आकर्षित करती हैं।"
सौभाग्यशाली हो कि बुद्धि बिल्कुल भ्रष्ट नहीं हो गई; कि थोड़ा बहुत बोध बाकी है; कि थोड़ी बहुत समझ शेष है। कि लटपटानंद बिल्कुल बर्बाद नहीं कर गए तुम्हें।
और तुम कहते हो, "विचित्र भी लगती हैं!" विचित्र इसलिए लगती हैं कि वे लटपटानंद... ! लटपटानंद विचित्र नहीं लगे, तो मेरी बातें विचित्र लगेंगी ही। जरा नाम तो देखो--लटपटानंद! और विचित्र न लगा! और मेरी बातें विचित्र लगेंगी फिर। क्योंकि चुनाव करना पड़ेगा अब। तय करना होगा।
और तुम निश्चित भाग्यशाली हो कि तुम कहते हो कि "उनकी शिक्षा के अनुसार चल नहीं पाया।" अच्छा हुआ कि नहीं चल पाए। चल पाते, तो पागलखाने में होते। चल पाते, तो बस लटपटानंद जैसे ही कुछ उपद्रव में फंस जाते। बच गए-- जान बची और लाखों पाए, लौट कर बुद्धू घर को आए!

अब तुम पूछ रहे हो कि "सत्य की खोज के लिए अनुशासन चाहिए या उन्मुक्त जीवन?"
"आत्मानुशासित उन्मुक्त जीवन।" अनुशासन और उन्मुक्त जीवन में तो विरोध है। अनुशासन दूसरों का--और उन्मुक्त जीवन अपना--इसलिए विरोध होने वाला है। लेकिन मेरा शब्द समझोः "आत्मानुशासित उन्मुक्त जीवन"। स्वयं के विवेक के प्रकाश में जीया गया स्वतंत्र जीवन। कोई विरोध नहीं है। अनुशासन और उन्मुक्त जीवन में विरोध है। अनुशासन का अर्थः दूसरे जो
कह रहे हैं--ऐसा करो। और तुम्हारे प्राण कुछ और करना चाहते हैं, तो संघर्ष है। और जिस चीज से भी तुम्हारे भीतर संघर्ष पैदा होता है, वही चीज तुम्हें कमजोर करती है, नष्ट करती है, भ्रष्ट करती है।
मैं कहता हूंः आत्मानुशासित उन्मुक्त जीवन। तुम्हारा अनुशासन तुम्हारे अपने ध्यान से आना चाहिए, तुम्हारे बोध से आना चाहिए। फिर उन्मुक्त जीवन में और अनुशासन में कोई विरोध न रह जाएगा। क्योंकि जहां से उन्मुक्त जीवन आता है, वहीं से तुम्हारा अनुशासन भी आएगा। तब क्रांति घटित होती है। तब तुम्हारे भीतर एक संगीत बजने लगता है; एक तालमेल बैठ जाता है। सब विरोध गिर जाते हैं। सब द्वंद्व गिर जाते हैं।
उसी विरोध के कारण तुम्हें अब यह सवाल उठा है कि "मैं दुविधा में हूं
कि संन्यास लूं अथवा विवाह करूं!" यह "अथवा" की बात ही नहीं। संन्यास भी लो--और विवाह भी करो। क्योंकि संन्यास का विवाह से कुछ विरोध नहीं। असल में संन्यास लेकर अगर विवाह न किया, तो लटपटानंद हो जाओगे।
संन्यास लो और विवाह भी करो। संन्यस्त हो कर संसार में रहो। जैसे कमल
जल में रहता है। यही संन्यास की ठीक-ठीक परिभाषा है। भगोड़ापन नहीं। संसार से भागना नहीं है। संसार को बोधपूर्वक जीओ। संसार परमात्मा की अनुकंपा है; उसके द्वारा दिया गया एक विराट अवसर है। इसके सब रंग-रूप पहचानो। इसकी सब गतिविधियों को जीओ। इतना ही ख्याल रहे कि बेहोशी में नहीं। बस। होश में जीओ। होशपूर्वक जीओ।
होशपूर्वक जो भी किया जाएगा, उससे बंधन पैदा नहीं होता; उससे मुक्ति आती है। और बेहोशी में जो भी किया जाएगा, उससे बंधन आता है, मुक्ति नहीं आती। बेहोशी में तुम संन्यास भी ले लो; घर से भी भाग जाओ, तो भी तुम बंधे ही रहोगे--मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि बेहोशी बंधन है।
संसार नहीं बांधे हुए है तुम्हें, तुम्हारी मूर्च्छा बांधे हुए है। इसलिए मेरे पास तो एक ही शिक्षा है--एकमात्र--और वह है कि बेहोशी तोड़ो, मूर्च्छा तोड़ो, जागरण का सूत्र पकड़ो। फिर जागरण का सूत्र अगर तुमसे कहे कि विवाह की कोई जरूरत नहीं, तो मत करना। और जागरण का सूत्र तुमसे कहे कि नहीं, अभी कुछ वासना भीतर शेष है, जिसे जी कर ही मैं पार कर सकूंगा, तो विवाह करना--बिना किसी अपराध-भाव के। फिर तुम्हारे जागरण से जो भी तुम्हें ठीक-ठीक लगे, वह करना। लेकिन तुम अपनी मालकियत से करना, मेरे कहने से नहीं। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कोई आचरण नहीं देता हूं, कोई अनुशासन नहीं देता हूं, क्योंकि मैं कौन हूं--किसी के ऊपर अपने को थोपूं! मैं तो सिर्फ बोधमात्र देता हूं--इशारा। इसलिए मेरा संन्यास सिर्फ उनके लिए है, जिनके पास बुद्धिमत्ता है, जिनके पास बोध को जगाने का साहस और क्षमता है। यह कायरों के लिए नहीं है।
और कायरों को रोकने के लिए मैंने सारा इंतजाम कर रखा है, कि उनको दरवाजे के बाहर ही रोक दिया जाए।
जो सज्जन लुधियाना से आए हैं जैन मित्र, उन्होंने यह भी कहा है कि आपसे मिलने की सब को सुविधा होनी चाहिए। क्यों? क्यों सुविधा होनी चाहिए? सिर्फ उसको मिलने की सुविधा होगी, जो इतनी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करे, जो इतना ध्यान प्रदर्शित करे कि मेरे साथ चल सके।
हर किसी को क्यों मिलने की सुविधा होनी चाहिए! मेरा समय नष्ट करने की
हर किसी को क्यों सुविधा होनी चाहिए! आखिर मैं भी स्वतंत्र हूं। अगर तुम मुझसे मिलने को स्वतंत्र हो, तो मैं भी तो स्वतंत्र हूं कि तुमसे मिलूं या न मिलूं। आखिर मैं अपने जीवन का मालिक हूं। मैं अपनी चेतना का मालिक हूं।

मैं उनसे मिलना चाहता हूं, जिनके जीवन में कुछ दिखता है कि हो सकता है। मैं सिर्फ संन्यासियों से मिलना चाहता हूं। हर किसी से नहीं मिलना चाहता। इसलिए तुम यह मत सोचना कि कोई और तुम्हें रोक रहा है मुझसे मिलने से।
इस आश्रम में जो भी हो रहा है, वह मेरे इशारे पर हो रहा है। इसलिए इस आश्रम में किसी भी चीज पर तुम यह सोच कर मत बैठ रहना कि कोई दूसरा रोक रहा है तुम्हें मेरे पास आने से। कोई रोकने वाला नहीं है। जिस दिन मैं मिलना चाहूं, उस दिन कोई नहीं रोकेगा।
मैं नहीं मिलना चाहता हर किसी से। भीड़-भाड़ से मुझे क्या लेना-देना है! मैं कोई राजनेता नहीं हूं कि भीड़-भाड़ इकट्ठी करूं। राजनेता तो पैसा खर्च करके भीड़-भाड़ इकट्ठी करते हैं। यहां तो तुम्हें आने के लिए पैसा खर्च करना पड़ता है।
मैं भी बीस वर्षों तक हर किसी को आने दे रहा था। फिर मैंने देखा कि यह
तो मूढ़ों की जमात है! इस भीड़-भाड़ में सिर्फ मेरा समय खराब हो रहा है। मैं उनके काम आ सकता हूं, जिनमें साहस हो। और यह कायरों की जमात इकट्ठी हो जाती है; और इनकी भीड़ में वे मुझ तक पहुंच ही नहीं पाते, जिनको पहुंचना चाहिए था। तो मुझे भीड़ को छांटना पड़ा।
और मेरी अपनी तरकीबें हैं छांटने की। मैं एक सेकेंड में छांट देता हूं। जरा सी बात से छांट देता हूं। मुझे कोई बहुत उपाय नहीं करना पड़ता। जैनों की मेरे पास भीड़ थी। दो दिन में छांट दी! बस, जैन-धर्म के संबंध में कुछ कह दिया कि वे भाग खड़े हुए! गांधीवादियों की भीड़ थी मेरे पास। बस, गांधी के संबंध में कुछ कह दिया कि वे भाग खड़े हुए! मुझे जिसको छांटना हो, कुछ करना नहीं पड़ता। एक बात कह दूंगा, और वे अपने आप भाग जाएंगे।
मैं तो उनको ही अपने पास चाहता हूं, जो इस अग्नि-पथ पर चलने को राजी हैं; उन थोड़े से लोगों के लिए। हर किसी के लिए कोई उपाय नहीं है मुझसे मिलने का। न कोई जरूरत है। न मुझे कोई आकांक्षा है। मैं कुछ नेता नहीं हूं। मुझे तुम्हारे मत नहीं चाहिए; न वोट चाहिए। मैं क्यों फिकर करूं भीड़-भाड़ की!
इसलिए मुझे जो कहना है, जैसा कहना है, वैसा ही कहूंगा। रत्ती भर समझौता नहीं करूंगा। समझौता करे राजनेता। और तुम्हारे जो धर्मगुरु समझौता करते हैं, वे सब राजनेता हैं। समझौते की भाषा ही राजनीति की भाषा है।
मैं बिल्कुल गैर-समझौतावादी हूं। मुझे जो कहना है, जैसा कहना है, उसको धार दे कर कहूंगा। गर्दन कटती हो--कटती हो, कट जाए। मेरी कटे--मेरी कट जाए। तुम्हारी कटे--तुम्हारी कट जाए! कोई फिकर नहीं।
मैं अपने संन्यासियों को कोई अनुशासन नहीं देता हूं। हां, उनको आत्मा
को जानने की कुंजी जरूर देता हूं। वही ध्यान है। और जो व्यक्ति अपने को पहचानने लगता है, उसके आचरण में अपने आप क्रांति हो जाती है। फिर उसे दूध पीना हो--दूध पीए। फल खाने हों--फल खाए। मांसाहार करना हो--मांसाहार करे। मैं कुछ नहीं कहता।
लेकिन तुम यहां देखो। मेरे पास लाखों मांसाहारी आए हैं और चुपचाप शाकाहारी हो गए हैं। और मैंने एक दिन नहीं कहा किसी को कि शाकाहारी हो जाओ। इसको मैं क्रांति कहता हूं। मैंने किसी से कहा नहीं कि तुम शाकाहारी हो जाओ।
यहां तो मेरे पास मांसाहारियों की सारी दुनिया से... क्योंकि सारी दुनिया मांसाहारी है।
जैन अपने बच्चों को पढ़ने पश्चिम भेजते हैं। वे सब जा कर मांसाहारी हो जाते हैं! क्या खाक अहिंसा सिखाई थी उनको! मैं उन डाक्टरों को जानता हूं, परिचित हूं, वे मेरे मित्र हैं, जो पश्चिम पढ़ने गए। वहां से मांसाहार करना सीख कर आ गए। अब चोरी-छिपे मांसाहार करते हैं। अंडे खाते हैं और जैन मंदिर भी जाते हैं! ऊपर-ऊपर "अहिंसा परमोधर्मः" भी चलता है।
ये न गए होते पश्चिम, तो अभी भी शाकाहारी होते। मगर वह शाकाहार होना झूठ होता। पश्चिम ने इनका झूठ उखाड़ दिया। इनकी झीनी सी पर्त पाखंड की फाड़

दी। पश्चिम में जाकर इनको समझ में आ गया कि मांसाहार करना शरीर के लिए शक्तिशाली है। बस, वहां से मांसाहार करना सीख कर आ गए! गई सब शिक्षा। गया सब अनुशासन। मगर अभी भी बाहर से छिपाना पड़ता है। अभी भी बाहर तो वही मुखौटा लगाए रहते हैं।
मैं एक डाक्टर के घर मेहमान था। जब मैंने उनके फ्रिज में अंडे देखे,
तो मैंने कहा कि "तुम जैन हो और अंडे कैसे!" उन्होंने कहा, "अब आपसे क्या छिपाना। कम से कम आपसे तो मैं सच कह सकता हूं कि मैं अंडे खाता हूं। मगर और किसी को नहीं बता सकता। चोरी-छिपे खाता हूं। लेकिन अंडा बिना मैं नहीं चल सकता। पश्चिम गया। पांच साल पश्चिम में रहा। अंडे खाना सीख गया। और बहुत कुछ भी खाया। और सब तो छोड़ना पड़ा। क्योंकि यहां चोरी से और चलाना बहुत मुश्किल है। मगर अंडे चला लेता हूं। यह मेरा जो कंपाउंडर है, चुपचाप ले आता है।"
मगर बाहर अभी भी वे दिगंबर जैन मंदिर में पूजा करते भी देखे जाते हैं।
और "अहिंसा परमोधर्मः" की तख्ती लगा रखी है उन्होंने अपने बैठकखाने में! इतना पाखंड सजा कर चलना पड़ता है।
यहां मेरे पास सारी दुनिया से लोग आए हुए हैं। मैंने किसी को कहा नहीं
कि मांसाहार छोड़ना। कभी कहूंगा भी नहीं। लेकिन जो व्यक्ति भी ध्यान में उतरता है, उसे एक बात साफ होनी शुरू हो जाती है कि अपने जीभ के थोड़े से सुख के लिए किसी का जीवन लेना? बात ही मूर्खतापूर्ण मालूम पड़ने लगती है। गिर जाती है अपने से।
मेरे पास जो लोग आए हैं, उनमें से अधिकतम लोग शराब पीने वाले लोग रहे हैं। क्योंकि पश्चिम में शराब ऐसी पी जाती है, जैसे यहां पानी पीया जाता है।
शराब कोई पाप नहीं है दुनिया में। होनी भी नहीं चाहिए। शाकाहारी है।
दूध से तो ज्यादा शाकाहारी है। अंगूर का ही रस है। फलाहार कहो! थोड़े सड़े हुए फलों का आहार है। मगर अपनी-अपनी मौज। किसी को सड़े फल अच्छे लगते हैं; तो क्या करोगे! ताजे अंगूर नहीं खाएंगे; सड़ा कर खाएंगे, तो शराब बन जाएगी। मगर दूध से तो ज्यादा सात्विक है।
फिर यहां आकर उनकी शराब अपने आप छूटने लगती है; अपने आप गिरने लगती है। क्योंकि ध्यान में जैसे-जैसे जाते हैं, एक बात समझ में आती है कि हम शराब क्यों पीते थे। पीते थे कि दुख भूल जाए। अब दुख ही नहीं बचा, तो भुलाना क्या है! और एक बात समझ में आती है कि अब आनंदित हो रहा है जीवन; प्रफुल्लित हो रहा है। शराब पीते हैं, तो आनंद भूल जाता है। आनंद को कौन भुलाना चाहता है!
शराब का काम भुलाना है। दुखी हो, तो दुख को भुला देगी। आनंदित हो--आनंद
को भुला देगी। मगर आनंद को कौन भूलना चाहता है! जो आनंद को नहीं भूलना चाहता, वह शराब पीना अपने आप बंद कर देगा।
मैं किसी को कहता नहीं कि शराब पीना बंद करो। मैं किसी को कहता नहीं
कि मांसाहार मत करो। इस तरह की टुच्ची और छोटी बातें मैं करता नहीं।
मैं तो मूल बात दे देता हूं। फिर तुम्हारा जीवन है। दीया तुम्हें दे दिया, अब इसकी रोशनी में तुम्हें जहां जाना हो। दीवाल से टकराना हो--तो टकराओ। दरवाजे से निकलना हो--तो निकल जाओ। इतना मेरा जानना है कि जिसके हाथ में दीया है, वह दरवाजे से निकलता है--दीवालों से नहीं टकराता। और जिसके हाथ में दीया नहीं है, उससे तुम लाख कहो कि दीवालों से मत टकराना, वह टकराएगा।
संन्यास भी लो--ध्यान भी करो। और विवाह से कुछ विरोध नहीं है। विवाह में कुछ बुरा नहीं है। और ध्यानी अगर विवाह करे, तो उसके विवाह में भी एक सुगंध होती है। क्योंकि उसके विवाह में भी बंधन नहीं होता; स्वतंत्रता होती है। उसके प्रेम से प्रार्थना पैदा होने लगती है। उसके संभोग से भी समाधि की गंध आने लगती है, सुगंध आने लगती है।
और दमित चित्त का व्यक्ति आंख बंद कर के योगासन मार कर बैठ जाए, तो भी क्या करेगा! भीतर वही कामवासना की आंधियां और तूफान चलते रहते हैं।
असली क्रांति भीतर है--बाहर नहीं। बाहर धोखा है, भीतर क्रांति है।

कन्हैयालाल द्विवेदी, अगर जीवन को क्रांति से गुजारना है, अगर है साहस--तो संन्यास।
और मैं नहीं कहता कि विवाह मत करना। इसलिए घबड़ाओ मत कि संन्यास लेने
से फिर विवाह नहीं कर पाऊंगा। यही तो मेरे संन्यास की विशिष्टता है कि तुम्हें संसार से तोड़ता ही नहीं। मैं जोड़ने को हूं--तोड़ने को नहीं। परमात्मा से जोड़ना है। और यह संसार भी परमात्मा का है; क्यों इससे टूटना! अहोभाव से जुड़ो। धन्यवाद से जुड़ो। अनुग्रह से जुड़ो।
अगर तुम्हें परमात्मा की इस कृति में रस नहीं है, तो क्या खाक परमात्मा में रस होगा! जब तुम संगीत को प्रेम नहीं करते, तो संगीतज्ञ को कैसे प्रेम करोगे? और नृत्य को प्रेम न नहीं करते, तो नर्तक को कैसे प्रेम करोगे?
यह परमात्मा का नृत्य है। ये पक्षियों के कंठ से फूटते हुए गीत, ये वृक्षों पर खिले हुए फूल--ये सब परमात्मा के रंग हैं; ये सब परमात्मा के ढंग हैं। इनको प्रेम करो। यह व्यक्तियों का सौंदर्य--स्त्रियों का, पुरुषों का सौंदर्य--यह सब परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है। इससे भागना नहीं है। हां, इसे जाग कर जीना है। और जागने से सब हो जाता है।

चौथा प्रश्नः ओशो, मैं एक युवती के प्रेम में था। वह मुझे धोखा दे गई
और किसी और की हो गई। अब मैं जी तो रहा हूं, किंतु जीने का कोई रस न रहा। मैं क्या करूं?

नगेंद्र! प्रेम में थे या स्त्री पर कब्जा करने की आकांक्षा में थे? क्योंकि तुम्हारी भाषा कहती है कि "वह मुझे धोखा दे गई और किसी और की हो गई!" प्रेम को इससे क्या फर्क पड़ता है! अगर वह युवती किसी और के साथ ज्यादा सुखी है, तो तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए। क्योंकि प्रेम तो यही चाहता है कि जिसे हम प्रेम करते हैं, वह ज्यादा सुखी हो, वह आनंदित हो। अगर वह युवती तुम्हारे बजाय किसी और के पास ज्यादा आनंदित है, तो इसमें रस खो देने का कहां कारण है!
मगर हम प्रेम वगैरह नहीं करते। प्रेम के नाम पर हम कुछ और करते हैं-- कब्जा--मालकियत। तुम पति होना चाहते थे। पति यानी स्वामी। और वह किसी और की हो गई!
और मजा यह है कि तुम्हें उससे प्रेम था। तुमने अपने प्रश्न में यह तो बताया ही नहीं कि उसे भी तुमसे प्रेम था या नहीं। तुम से होता, तो तुम्हारे साथ होती। तुम्हें प्रेम था, इससे जरूरी तो नहीं कि उसे भी प्रेम हो। प्रेम कोई जबरदस्ती तो नहीं। तुम्हें था, यह तुम्हारी मर्जी। और उसे नहीं था, तो उसकी भी तो आत्मा है, उसकी भी तो स्वतंत्रता है। अब किसी को किसी से प्रेम हो जाए और दूसरे को प्रत्युत्तर देना न हो, तो कोई जबरदस्ती तो नहीं है।
तुम प्रेम करने को स्वतंत्र हो, लेकिन किसी के मालिक होने को स्वतंत्र नहीं हो। तुम किसी के जीवन पर छा जाना चाहो, हावी होना चाहो, यह तो अहंकार है--प्रेम नहीं है। प्रेम जानता है--स्वतंत्रता देना।
खुश होओ कि अगर वह कहीं भी है और प्रसन्न है।... यही तो तुम चाहते थे कि
वह प्रसन्न हो जाए। लेकिन नहीं। शायद तुम यह नहीं चाहते थे। तुम चाहते थे कि वह तुम्हारी छाया बन कर चले। तुम्हारे अहंकार की तृप्ति हो। वह तुम्हारा आभूषण बने। तुम दुनिया को कह सको कि देखो, मैंने इस युवती को जीत लिया! वह तुम्हारी विजय का प्रतीक बने, पताका बने। यह तुम्हारे अहंकार का ही आयोजन था। और अहंकार जहां है, वहां प्रेम नहीं है।
और शायद इसी अहंकार के कारण वह किसी और की हो गई हो। समझदार रही होगी। अच्छा किया--किसी और की हो गई। तुम्हारी होती, तुम सताते। तुम्हारा अहंकार बता रहा है कि तुम उसकी छाती पर पत्थर बन कर बैठ जाते।
अब तुम कह रहे होः "अब मैं जी तो रहा हूं, किंतु जीने का कोई रस न रहा।"

युवती को देखा था, उसके पहले जीते थे कि नहीं? तब रस था कि नहीं? तो अब क्या बिगड़ गया! जैसे पहले जीते थे बिना युवती के; युवती को जाना नहीं था, तब भी तो जीते थे न!
मेरे पास लोग आकर पूछते हैं कि हमें बड़ा डर लगता है कि मरने के बाद क्या होगा? मैं उनसे कहता हूं कि जन्म के पहले का तुम्हें कुछ डर लगता है? तुम थे या नहीं--कुछ पता है? वे कहते हैं, कुछ पता नहीं।
कुछ हर्जा है नहीं थे तो? उन्होंने कहाः क्या हर्जा है! जब पता ही नहीं, तो रहे हों या न रहे हों। मैंने कहाः तो बस यही मौत के बाद होगा, जो जन्म के पहले था। इसलिए घबड़ाहट क्या है!
जन्म के पहले का तुम्हें कुछ पता नहीं है; मौत के बाद का भी तुम्हें कुछ पता नहीं होगा। तो चिंता क्या कर रहे हो!
युवती नहीं मिली थी, उसके पहले भी तुम जिंदा थे--और बड़ा रस था। और युवती को देख कर सारा रस खो गया! ऐसे गुलाम हो? और कल का तो भरोसा रखो--कल कहीं फिर कोई दूसरी युवती मिल जाए--उससे भी सुंदर, उससे भी आकर्षक--तो तुम परमात्मा को धन्यवाद दोगे कि अच्छा हुआ कि उस बाई से छुटकारा हो गया! मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी के साथ जा रहा था। एक सुंदर स्त्री पास
से गुजरी। खटक गई; आंख में अटक गई। पत्नी तो ऐसी चीजें एकदम से पहचान लेती हैं।
पत्नी ने फौरन मुल्ला से कहा कि ऐसी सुंदर स्त्री को देख कर तुम्हें जरूर भूल ही जाता होगा कि तुम विवाहित हो!
मुल्ला ने कहा कि नहीं; नहीं फजलू की मां! ऐसी स्त्रियों को देख कर ही मुझे याद आता है कि अरे, मैं विवाहित हूं! हाय राम, मैं विवाहित हूं! ऐसी स्त्रियों को देख कर ही याद आता है।
कल का भरोसा रखो। अगर बीते कल में धोखा खा गए थे, तो आने वाले कल में भी धोखा फिर खाओगे। ऐसी क्या जल्दी पड़ी है!
और पूछते होः "जीवन में कोई रस नहीं रहा। अब मैं क्या करूं?"
अगर इस तरह ही रस आता हो, तो फिर कोई तलाश कर लो। युवतियों की कोई कमी है! पृथ्वी भरी पड़ी है। लेकिन अगर कुछ समझ की बात करनी हो, तो थोड़ा सोचो। तुमने बच्चों की कहानियां पढ़ी होंगी। बच्चों की कहानियों में यूं कहानियां आती हैं कि कोई राजा है उसके प्राण उसने तोते में रख दिए। इससे उसको कोई मार नहीं सकता। जब तक तोते को न मारे, राजा को नहीं मार सकता। राजा को कितना ही मारो, मरता ही नहीं। उसने प्राण अपने तोते में छिपा रखे हैं। जब तोते को पकड़ कर मार डालोगे, तो राजा मर जाएगा।
ये कहानियां बड़ी ठीक हैं। अब यह तो यूं हुआ कि तुमने अपने प्राण उस लड़की में रख दिए। इतने जल्दी गिरवी रख दिए! हर किसी के हाथ में दे देते हो प्राण!
"जीवन का रस ही चला गया।" ज्यादा कुछ रहा नहीं होगा रस। भ्रांति में
हो तुम कि रस था। ऐसे कहीं रस जाता है? रस को तुम जानते ही नहीं कि रस क्या है। जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा है--"रसो वै सः।" उन्होंने तो परमात्मा की परिभाषा की है कि वह रस है। उन्होंने तो सिर्फ परमात्मा को ही रस माना है; और किसी चीज का कोई रस नहीं है।
मिल जाती स्त्री, तो भी रस खो जाता। और स्त्री गले से बंध जाती--सो अलग! फिर उससे छूटना मुश्किल हो जाता। जरा तुम उससे भी तो पूछो, जिसके गले बंध गई है! उसकी क्या हालत है! उसका भी तो बेचारे का दुख-दर्द जानो। उसका दुख-दर्द जान कर तुमको बड़ी सांत्वना मिलेगी, बड़ा आश्वासन मिलेगा।
एक पागलखाने में एक राजनेता देखने गया था पागलखाने को। एक आदमी अपने बाल नोंच रहा था। छाती पीट रहा था। और हाथ में एक तस्वीर लिए था। आंखों से आंसू बह रहे थे--झर-झर! छाती से लगाता था तस्वीर को। सींखचों में बंद था। पूछा उसने सुपर्रिटेंडेंट को, "इस आदमी को क्या हो गया! यह क्या कर रहा है? यह तस्वीर किसकी है?"
उसने कहाः यह तस्वीर एक स्त्री की है, जिसको यह पाना चाहता था और नहीं
पा सका। जब से नहीं पाया, पागल हो गया है--रहा होगा नगेंद्र जैसा! बस, अब तब से यह बस बाल नोंचता है। रोता है। छाती से फोटो लगाता है। चीख-पुकार मचाता

है। इसको पागलखाने में रखना पड़ा है। इसके घर के लोग परेशान हो गए। इसने सबका चैन हराम कर दिया है।
राजनेता ने कहा, "बेचारा!"
आगे बढ़े। दूसरे कटघरे में एक आदमी सींखचों को पकड़-पकड़ कर हिला रहा था। सींखचों से सिर मार रहा था। लहूलुहान हो रहा था उसका सिर। पूछा, "इसको क्या हो गया? इस बेचारे को क्या हो गया?"
उस सुपरिंटेंडेंट ने कहा कि "अब आप न पूछो, तो अच्छा। इसने उस लड़की से शादी कर ली, जिस लड़की की याद में पहला मरा जा रहा है। जब से इसने शादी की है, तब से इसकी यह हालत हो गई! तब से यह सींखचों से सिर मारता है! दीवालों से सिर फोड़ता है। यह आत्महत्या करने को उतारू है। यह आत्महत्या न कर ले, इसलिए इसको पागलखाने में रखना पड़ा है।"
किसको बेचारा कहोगे? वह, जिसको नहीं मिली स्त्री--वह। या जिसको मिल गई--वह? किसके जीवन में रस है?
तुम जरा उनको तो देखो, जिनको उनकी प्रेयसियां मिल गई हैं; उनके प्रेमी मिल गए हैं। उन पर तो जरा नजर डालो। वहां कहां रस है? ऊबे बैठे हैं। जब भी तुम किसी जोड़े को उदास देखो, समझना--विवाहित हैं। जब भी तुम किसी स्त्री- पुरुष को लड़ते देखो, समझो विवाहित हैं। एक-दूसरे की गर्दन को दबाते देखो-- समझो कि विवाहित हैं!
जरा देखो तो चारों तरफ आंख खोल कर। तुम मुझसे पूछ रहे हो, "अब मैं जी तो रहा हूं, किंतु जीने का कोई रस न रहा।" इतने जल्दी गंवा दोगे जीवन का रस! जीवन कुछ और बड़े काम के लिए है। जीवन कुछ और विराट आकाश को पाने के लिए है।
अभी और भी मंजिलें हैं। अभी और भी आसमान हैं।
दिल के सहरा में कोई आस का जुगनू भी नहीं।
इतना रोया हूं कि अब आंख में आंसू भी नहीं।।
कासाए-दर्द लिए फिरती है गुलशन की हवा।
मेरे दामन में तिरे प्यार की खुशबू भी नहीं।।
छिन गया मेरी निगाहों से भी एहसासे-जमाल।
तेरी तस्वीर में पहला सा वो जादू भी नहीं।।
मौज-दर-मौज तेरे गम की शफक खिलती है।
मुझे इस सिलसिलाए-रंग पे काबू भी नहीं।।
दिल वो कमबख्त कि धड़के ही चला जाता है।
ये अलग बात कि तू जीनते पहलू भी नहीं।।
ये अजब राहगुजर है कि चट्टानें तो बहुत।
और सहारे को तेरी याद के बाजू भी नहीं।।
जल्दी ही भूल जाओगे। फिर उलझोगे और भूल जाओगे। अभी लगता है कि
दिल के सहरा में कोई आस का जुगनू भी नहीं।
इतना रोया हूं कि अब आंख में आंसू भी नहीं।।
लेकिन यह सब रोना-धोना, यह आशाओं का बुझ जाना, यह जुगनुओं का भी खो जाना, ज्यादा देर नहीं टिकेगा। आदमी भ्रम पालने में बड़ा कुशल है। जरा रुको। फिर भ्रम पालोगे।
एक भ्रम टूटता नहीं कि दूसरा भ्रम हम पैदा कर लेते हैं! फिर से रस की धार बहने लगेगी! हालांकि वह रस की धार बिल्कुल झूठी है। रसधार तो बहती है सिर्फ उसके जीवन में, जो परमात्मा के प्रेम से भर जाता है। इन छोटे-मोटे प्रेमों में प्रेम नहीं है; आसक्तियां हैं। प्रेम के धोखे हैं। प्रेम केवल शब्द है--प्यारा शब्द। लेकिन शब्द को उघाड़ कर देखो, तो भीतर कुछ भी नहीं। कोई अर्थ नहीं। कोई गौरव नहीं, कोई गरिमा नहीं। कोई काव्य नहीं, कोई संगीत नहीं।
अब तलक मुझ सी किसी पर भी नहीं गुजरी है
मैं बहारों में जला और किनारों में बहा,
मैंने हर आंख में ढूंढा है प्यार अपने लिए
दिल मेरा प्यार भरा प्यारा का भूखा ही रहा।
जिंदगी मेरी सिसकती रहेगी क्या यूं ही
क्या मुझे कोई सहारा न मिल सकेगा कभी?

बहारें देखती हैं मुड़ के मगर रुकती नहीं, कोई भी फूल क्या मेरा न खिल सकेगा कभी? इससे बढ़ कर के भला और क्या है मजबूरी अपने अरमानों की लाशों पर मुझे चलना पड़ा, छिपाता आया हूं जिसको मैं बड़ी मुद्दत से
आज सब के ही सामने वह राज कहना पड़ा।
अब तलक मुझ सी किसी पर भी नहीं गुजरी है
मैं बहारों में जला और किनारों में बहा,
मैंने हर आंख में ढूंढा है प्यार अपने लिए
दिल मेरा प्यार भरा प्यार का भूखा ही रहा।
इस जगत में तुम अगर प्रेम को खोज रहे हो, तो यह ऐसा ही है, जैसे कोई रेत
से तेल को निचोड़ने की कोशिश कर रहा हो--जो नहीं है वहां।
तुम किससे प्रेम मांग रहे हो? यह भी तो देखो कि तुम जिससे प्रेम मांग रहे हो, वह भी तुमसे प्रेम मांग रहा है! न उसके पास है, न तुम्हारे पास है। यहां हर कोई हर किसी से मांग रहा है। और सब भिखमंगे हैं। तुम भी चाहते हो, दूसरा प्रेम दे। और दूसरा भी चाहता है कि तुम प्रेम दो। और दोनों को इसकी फिकर नहीं है कि है भी किसी के पास, जो दे दे?
पहले होना तो चाहिए--देने के पहले होना चाहिए। इसलिए तो यहां हर व्यक्ति हारा हुआ है, थका हुआ है, परेशान है, पीड़ित है। कोई तुम्हीं नहीं। समझो। इस मौके को चूको मत। बड़ी कृपा की उस युवती ने, जो किसी और की हो गई। तुम पर उसकी दया है, अनुकंपा है। उसने बड़ा प्रेम जतलाया तुम्हारे प्रति। एक अवसर दिया तुम्हें देखने का।
तुम मांग रहे थे प्रेम। मगर तुम्हारे पास है? जिसके पास है, वह मांगता नहीं; वह देता है। और जिसके पास नहीं है, वह मांगता है।
और किससे मांग रहे हो? जिसके पास हो, उससे मांगो। और प्रेम का झरना किसके पास होता है? जिसके पास ध्यान--उसके पास प्रेम। बिना ध्यान के प्रेम नहीं।
ध्यान की छाया है प्रेम। ध्यान का फूल है प्रेम। बुद्धों के पास प्रेम होता है। उनसे मांगो। मत मांगो, तो भी वे देते हैं। झोली फैलाओ--मत फैलाओ--तो भी बरस जाते हैं।
जहां रोशनी है, वहां जाओगे, तो रोशनी तुम पर पड़ेगी ही। तुम्हारे मांगने, न मांगने का सवाल नहीं। फूल खिलेगा, उसके पास से गुजरोगे--गंध मिलेगी। मांगने न मांगने का कोई सवाल ही नहीं है।
लेकिन इस जगत में बड़ी अजीब हालत चल रही है। भिखमंगे भिखमंगों के सामने भिक्षापात्र लिए खड़े हैं कि कुछ दे दो! बाबा, कुछ मिल जाए! और दूसरा भी मांग रहा है। और दोनों इस भ्रांति में हैं कि दूसरे के पास होगा। किसी के पास नहीं है।
सिर्फ उन थोड़े से लोगों के पास प्रेम होता है, जिन्होंने ध्यान की अंतिम गहराइयां छुई हैं। प्रेम परिणाम है ध्यान का।
और मजा यह है कि ध्यानी किसी से प्रेम नहीं मांगता; देता है; सिर्फ देता है--मांगता ही नहीं।
और यह भी तुम समझ लेना--यह जीवन का महागणित--कि जो देता है, उसे बहुत मिलता है। हालांकि वह मांगता नहीं। वह छांट-छांट कर भी नहीं देता। वह सिर्फ बांटता ही रहता है। और उस पर बहुत बरसता है। आकाश से बरसता है। बादलों से बरसता है। चांद-तारों से बरसता है। परमात्मा उसे चारों तरफ से भर देता है। वह लुटाए चला जाता है; परमात्मा उसे दिए चला जाता है!
"रसो वै सः।" परमात्मा रस-रूप है। लेकिन किसको परमात्मा मिला है? जो भीतर जागा है; जिसने भीतर सारी तंद्रा और नींद तोड़ दी है; जिसने भीतर बेहोशी की सारी परतें उखाड़ फेंकी हैं; जिसने मूर्च्छा को जड़ों से उखाड़ दिया है; जिसने भीतर रोशन कर लिया अपने को; जो प्रकाशित हो गया है--उसके भीतर परमात्मा उतर आता है। रस की धार बह जाती है।
नगेंद्र! तुम जिस ढंग से सोच रहे हो, उसका तो अंतिम परिणाम आत्महत्या है। मैं जो कह रहा हूं, उसका अंतिम परिणाम आत्मरूपांतरण है। और इसको भी

तुमसे कह दूं कि आत्महत्या के क्षण में ही आत्मरूपांतरण की संभावना है, क्योंकि जब आदमी ऐसी जगह आ जाता है, जहां आगे चलने को कोई जगह नहीं रह जाती, रास्ता खतम हो जाता है--वहीं क्रांति घटती है। नहीं तो क्रांति नहीं घटती। इस अवसर को चूकना मत। यह अवसर है कि तुम जागो।
और प्रेम की जगह ध्यान पर दृष्टि जमाओ। प्रेम धोखा दे गया। देने ही वाला था। क्योंकि था ही नहीं। ध्यान ने कभी किसी को धोखा नहीं दिया है। आज तक नहीं दिया है। जिसने भी ध्यान की तरफ नजर उठाई--मालामाल हो गया है।
सम्राट हो गया है।
और मजा यह है कि उसकी संपदा में प्रेम की संपदा भी आती है।
भीतर झांको, वहां प्रभु का राज्य है। अपने पर आओ। प्रेम कहता है-- दूसरे को पकड़ो। ध्यान कहता है--अपने को पकड़ो। इसलिए ऊपर से तो प्रेम और ध्यान के रास्ते बिल्कुल विपरीत मालूम पड़ते हैं। और हैं भी विपरीत। तुम्हारे प्रेम से तो ध्यान का रास्ता बिल्कुल विपरीत है। अब तुम्हारी नजर उस युवती पर अटकी है। "दूसरे" पर अटकी है। यह भी कोई बात हुई! पहले अपने को तो खोज लो। फिर दूसरे की तलाश में जाना। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम अपने को खोज लो, तो दूसरे तुम्हारी तलाश में आएंगे। तुम्हें कहीं किसी की तलाश में जाना न पड़ेगा।
तुम देदीप्यमान हो उठो, तो तुम्हारी किरणें दूसरों को बुला लाएंगी।
दूर-दूर से लोग चले आएंगे--तुम्हारे झरने पर पानी पीने; अपनी प्यास बुझाने।
कुछ ऐसा करो कि तुम्हें तो रस मिले ही मिले--औरों को भी रस मिल जाए।
कुछ ऐसा करो कि परमात्मा तुमसे बह उठे।
और जब आदमी ऐसी जगह आ जाता है, जहां सोचने लगता है कि अब खतम ही कर लूं अपने को... । जरूर तुमने सोचा होगा बहुत बार कि अब अपने को मिटा ही लूं, क्योंकि अब जीवन तो है ही नहीं। रस नहीं है। जीए जा रहा हूं। क्या सार है जीने में! खतम ही क्यों न कर लूं?
जब खत्म करने तक की तैयारी हो, तो इसके पहले एक काम और कर लो, फिर खतम
कर लेना। इसके पहले एक काम यह तो कर लो--जान तो लो कि मैं कौन हूं? फिर आत्महत्या करनी हो, तो आत्महत्या कर लेना। हालांकि जिसने अपने को जाना है, उसने कभी आत्महत्या नहीं की है। क्योंकि वह तो जानता है--आत्महत्या हो ही नहीं सकती। आत्मा अमर है। मिटाओ तो भी मिट नहीं सकती। जलाओ, तो भी जल नहीं सकती।
और इस शाश्वत को पहचानते ही अपूर्व घटनाएं घटती हैं। चमत्कार घटते हैं। जादू जीवन में आ जाता है। तुम मिट्टी छुओ और सोना हो जाएगी। तुम कांटा छुओगे और फूल हो जाएगा। यह सारा अस्तित्व परमात्मा से जगमगा उठता है।
तुम जगमगा जाओ भीतर, तो बाहर दीये ही दीये जल जाते हैं। जल ही रहे हैं। सिर्फ तुम अंधे हो, इसलिए दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। और चारों तरफ से रस तुम्हारी तरफ बहने लगता है। तुम बहो--फिर देखो।
यह संकट की घड़ी है, इसका उपयोग कर लो। मेरे हिसाब से संकट की घड़ियां बड़े सौभाग्य की घड़ियां होती हैं। समझदार उनको वरदान बना लेते हैं। नासमझ-- उनको अभिशाप। सब तुम पर निर्भर है।

आज इतना ही।

ज्यूं था त्यूं ठहराया
दसवां प्रवचन

बुद्धत्व और पांडित्य

पहला प्रश्नः ओशो,
किसी को चैन से देखा न दुनिया में कभी मैंने।
इसी हसरत में कर दी खतम सारी जिंदगी मैंने।।
कहते हैं लोग मौत से भी बदतर हैं इंतजार।
बस राह देखते ही गुजारी जिंदगी मैंने।।
उठाए क्यों लिए जाते हो मुझको बागे-दुनिया से।
नहीं देखी है दिल भर के बहारे जिंदगी मैंने।।
लोग तो घबड़ा कर यूं ही कह देते हैं कि मर जाएं।
मर के भी लेकिन सुकूं पाते नहीं देखा मैंने।।
जब ये आसी उठाएंगे फिरदौस में जाम।
मय बदल जाएगी पानी में सुना है मैंने।।
आग दोजख की भी अर्क ए शर्म से बुझ जाएगी।
परेशां आदमी को देख ये न सोचा मैंने।।
सब तरफ कब्रें तमन्नाओं की बनी हैं यहां।
एक बस्ती को भी बसते नहीं देखा मैंने।।
इस जहां में तू कैसे बे-पीए मदहोश रहता है?
ऐ साकी! आज तक देखा न तुझसा आदमी मैंने।।
बता तू कौन है इंसान या कोई फरिश्ता है?
या देखा है खुदा को ख्वाब में बना आदमी मैंने।।

अमृत प्रिया! जन्म के साथ जीवन नहीं मिलता; जन्म के साथ जीवन की केवल संभावना मिलती है। उस संभावना को वास्तविक बनाए बिना न कोई आनंद है, न कोई सुगंध है; न फूल खिलते हैं, न वसंत आता है, न पक्षी गीत गाते हैं; न सुबह होती है, न आत्मा के आकाश में तारों की चमक! कुछ भी नहीं! अंधेरा ही अंधेरा, उदासी ही उदासी।
लेकिन हम इस भ्रांति में ही जीते हैं कि जन्म पा लिया, तो जीवन पा लिया। जैसे कोई बीज को लिए बैठा रहे--बैठा रहे--बैठा रहे--तो बीज में न तो सुगंध होगी, न फूल खिलेंगे। और उदास होगा वैसा आदमी। हालांकि बीज में फूल भी छिपे हैं, सुगंध भी छिपी है। मगर जो छिपा है, उसे प्रकट करना होगा। जो अव्यक्त है, उसे व्यक्त करना होगा। जो संभावित है, उसे वास्तविक करना होगा। जो स्वप्न है, उसे सत्य करना होगा।
इतने लोग हैं पृथ्वी पर और इतनी गहन उदासी है। कारण एक है, छोटा सा हैः जन्म को जीवन का पर्याय समझ लिया है। जन्म के साथ तो अवसर मिलता है जीवित होने का; जीवन नहीं मिलता। इसलिए इस देश में हम उस व्यक्ति को ब्राह्मण कहते थे, जो द्विज है। द्विज का अर्थ है, जिसने दुबारा जन्म पा लिया।
एक जन्म तो मिलता है मां-बाप से। उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। तुम बीज की तरह पैदा होते हो और बीज की तरह ही मर जाओगे--तो जिंदगी में कैसे गीत! कैसी बहार! कुछ भी नहीं। खाली के खाली आए, खाली के खाली गए! रिक्त हाथ आए, रिक्त हाथ गए। पीड़ा होगी। संताप होगा। तनाव होगा। बेचैनी होगी। लेकिन कोई उत्सव नहीं होगा। उत्सव असंभव है।
द्विज होना होगा। दुबारा जन्म लेना होगा। एक जन्म मां-बाप ने दिया, एक तुम्हें स्वयं लेना होगा। स्वयं जन्म लेने की प्रक्रिया का नाम ही संन्यास है। संन्यस्त हुए बिना कोई ब्राह्मण नहीं होता।
जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं। फिर क्या करते हैं अपनी जीवन ऊर्जा के साथ--इस पर निर्भर करता है। सौ में से निन्यानबे प्रतिशत लोग तो शूद्र की ही भांति मर जाते हैं; उनका दूसरा जन्म नहीं हो पाता।
और ध्यान रख लेना--ब्राह्मण घर में पैदा होने से कोई ब्रह्म नहीं होता। जब तक भीतर ब्रह्म का जन्म न हो जाए, तब तक कोई न ब्रह्म है, न

ब्राह्मण है। बुद्ध ब्राह्मण हैं। जीसस ब्राह्मण हैं। मोहम्मद ब्राह्मण हैं। लेकिन ब्राह्मण के घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। बुद्ध ने कहा है, जो ब्रह्म को जान ले, वही ब्राह्मण है। और ब्रह्म कहीं बाहर तो नहीं। ब्रह्म तुम में छिपा बैठा है।
बहुत पुरानी कहानी है। ईश्वर ने पृथ्वी बनाई, संसार रचा, तब वह बीच बाजार में ही रहता था संसार के। कुछ अनुभव न था संसार का। स्वाभाविक था कि उसने जो रचा था, उसके बीच में रहा। लेकिन लोग उसे परेशान करते। शिकायतों पर शिकायतें! अभी भी लोग वही करते हैं मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में, गिरजों में। कहते हैं, प्रार्थना; करते हैं शिकायत! हजार शिकवे लेकर जाते हैं--ऐसा होना चाहिए; ऐसा नहीं होना चाहिए; ईश्वर को सलाह देने जाते हैं कि "कैसा होना चाहिए!"
और जो सलाह देते हैं, अगर गौर से सुनें, तो बड़ी अदभुत सलाह देते हैं। इमरसन कहा करता था, "मैंने बहुत लोगों की प्रार्थनाएं सुनीं और यही पाया कि सब परमात्मा से कहते हैं कि हे प्रभु, दो और दो मिल कर चार न हों। दो और दो मिल कर पांच हो जाएं!"
दुनिया में सब मरते हैं और आदमी प्रार्थना करता है, "हे प्रभु, मैं कभी
न मरूं।" यह दो और दो को पांच करने की कोशिश है।
जिंदगी में चीजें आती हैं और जाती हैं। और लोग प्रार्थना करते हैं कि
जो मुझे मिला है, सदा मेरा रहे; थिर रहे। जवानी है, तो जवानी। बुढ़ापा न आए। स्वास्थ्य है, तो बीमारी न आए। धन है, तो निर्धनता न आए। जीत रहा हूं, तो हार न जाऊं। और जानते हैं सब कि सभी को हारना है। और सभी की मौत आज नहीं कल आने ही वाली है। फिर भी दो और दो पांच हो जाएं... !
जो नहीं हो सकता है--वही हम मांगते फिरते हैं। जो हो सकता है, वह तो हो
ही रहा है। उसको मांगने की जरूरत नहीं है।
अभी भी लोग वही कर रहे हैं, तो जब परमात्मा बाजार में ही रहता रहा होगा, लोगों ने उसका जीना हराम कर दिया होगा! अभी भी भक्तों ने उसका जीना हराम किया हुआ होगा। इनकी अगर सबकी प्रार्थनाएं वह सुनता होगा, तो तुम सोचो, पगला गया होगा! आत्महत्या कर ली होगी! कभी का समाप्त हो गया होगा। लोग दिन-रात चौबीस घंटे उसके द्वार पर खड़े रहते। और ऐसी-ऐसी प्रार्थनाएं, जो एक दूसरे के विपरीत पड़तीं! पूरी भी करे, तो कैसे करे! कोई चाहता है कि आज वर्षा हो, क्योंकि उसने बीज बोए हैं। और कोई चाहता हैः आज वर्षा न हो, क्योंकि उसने कपड़े रंगे हैं और कपड़े सुखाने हैं। कोई चाहता है, आज धूप निकले। और कोई चाहता है, आज धूप न निकले। किस-किस की चाहें पूरी हों। कैसे पूरी हों? चाहें विरोधाभासी हैं।
इस पृथ्वी पर चार अरब आदमी हैं, चार अरब चाहें हैं--सबके विरोध में। सत्तर करोड़ लोग इस देश में हैं। प्रत्येक व्यक्ति प्रधानमंत्री होना चाहता है; राष्ट्रपति होना चाहता है! यह कैसे होगा? आपाधापी होगी। दौड़धूप होगी। खींचतान होगी। उपद्रव होगा। इसलिए तो राजनीति उपद्रव बन जाती है। राजनीति संघर्ष हो जाती है। क्योंकि सारे महत्वाकांक्षी एक दूसरे की गर्दन पर सवार हैं; एक दूसरे के सिर पर पैर रख कर चढ़ जाना चाहते हैं पदों पर! खींचातानी होगी। उठा पटक होगी।
परमात्मा घबड़ा गया। कहानी कहती है--बहुत घबड़ा गया! उसने अपने संगी- साथियों को बुलाया। पूछा कि "क्या करूं? ऐसी कोई जगह बताओ, जहां छिप रहूं।"
किसी ने कहा, "आप हिमालय पर छिप जाओ--गौरीशंकर पर!"
परमात्मा ने कहा, "तुम्हें पता नहीं, अभी थोड़ी ही देर में हिलेरी और तेनसिंग पैदा होंगे और वे गौरीशंकर पर पहुंच जाएंगे। और एक दफा एक आदमी पहुंचा कि फिर कतार लग जाएगी। यह कुछ स्थाई हल न हुआ। और एक दफा पता चल गया कि मैं गौरीशंकर पर हूं कि बसें पहुंच जाएंगी, होटलें खुल जाएंगी, ट्रेनें चलने लगेंगी। हेलिकाप्टर उतरने लगेंगे। वही उपद्रव हो जाएगी। वही बाजार भर जाएगा। कुछ और सोचो!"

किसी ने कहा, "चांद पर क्यों नहीं चले जाते?" ईश्वर ने कहा कि "वह और समझो कि थोड़ी देर और बच रहूंगा। लेकिन कितनी देर!" अनंत काल ईश्वर के सामने है। दिन दो दिन के बचने का सवाल नहीं।
तब एक बूढ़े सलाहकार ने ईश्वर के कान में सलाह दी। और ईश्वर ने कहा, "ठीक। यह बात ठीक।"
उस बूढ़े ने क्या सलाह दी? उसने कहा, "आप आदमी के भीतर छिप रहो। वहां आदमी कभी न जाएगा। सब जगह जाएगा--गौरीशंकर चढ़ेगा, चांद पर पहुंचेगा, मंगल पर पहुंचेगा, तारों पर पहुंचेगा--ऐसी कोई जगह नहीं छोड़ेगा; जहां-जहां तक संभावना है वहां-वहां तक जाएगा। सिर्फ एक जगह नहीं जाएगा--अपने भीतर नहीं जाएगा।" ईश्वर ने कहा, "यह बात जंचती है।"
"और अगर कभी कोई अपने भीतर जाएगा भी, तो अपने भीतर जाते-जाते इतना निर्मल और शांत हो जाएगा कि तुम्हें परेशान नहीं करेगा।" कोई बुद्ध जाएगा; कोई महावीर, कोई लाओत्सु, कोई कनफ्यूशियस, कोई जरथुस्त्र--इनसे तो कुछ पीड़ा न होगी। इनका तो आना आनंद ही होगा। ये अपने साथ नृत्य लाएंगे। ये अपने साथ गीत लाएंगे।
कृष्ण की बांसुरी बजे भीतर, तो ईश्वर को कोई अड़चन नहीं हो सकती। बुद्ध
की वाणी झरे भीतर, तो ईश्वर को क्या अड़चन हो सकती है! ये कुछ मांगेंगे नहीं। ये आएंगे, तो कुछ चढ़ाएंगे। ये आएंगे, तो अपने को चढ़ाएंगे। और ये आएंगे, तो खिले फूलों की भांति आएंगे। जुही खिले, बेला खिले, गुलाब खिले, तो भीतर की बगिया और प्यारी हो उठेगी। नये-नये रंग लाएंगे ये लोग। नये-नये ढंग लाएंगे। जीने की नई कला लाएंगे। नये-नये उपहार चढ़ाएंगे।
अगर कोई आया भीतर, तो आते-आते रूपांतरित हो जाएगा।
भीतर आने में व्यक्ति द्विज होता है, ब्राह्मण बनता है। ब्राह्मण बनता है, तो ब्रह्म के योग्य बनता है। और जैसे-जैसे योग्य बनता है, वैसे- वैसे ब्रह्म के साथ एक होता चला जाता है।
जब तक कोई द्विज नहीं होता, तब तक जीवन में ऐसा ही होगा।
अमृत प्रिया, तू कहती हैः
किसी को चैन से न देखा दुनिया में कभी मैंने।
इसी हसरत में कर दी खतम सारी जिंदगी मैंने।।
औरों की तरफ देखो ही मत। पागल है तू। आंख बंद कर। अपनी तरफ देख।
लोग औरों को देखने में कितना समय गंवा रहे हैं! इतनी देर में तो अपने
से पहचान हो जाए। इतनी ही आंख अपने पर गड़ा लें, तो खुद से मुलाकात हो जाए; क्रांति हो जाए; रोशनी फूट पड़े। झरने अवरुद्ध हैं--बहने लगें।
मुल्ला नसरुद्दीन--एक आदमी वंशी लटकाए मछली मारने बैठा है--उसके पीछे खड़ा देख रहा है। लाठी टेके खड़ा हुआ है। तीन घंटे हो गए। चार घंटे हो गए! मछली कुछ पकड़ी नहीं गई। आखिर मुल्ला के भी बरदाश्त के बाहर हो गया। मुल्ला ने उससे कहा कि "मेरे भाई, तुम भी क्या मछलीमार हो! अरे, क्यों सिर खपा रहे हो, चार घंटे से बेकार समय खराब कर रहे हो। एक मछली पकड़ी नहीं!"
उस आदमी ने कहा, "बड़े मियां, मैं तो कम से कम पकड़ने की कोशिश कर रहा हूं। तुम यहां क्या कर रहे हो! तुम सिर्फ मुझे देख रहे हो। मैं तो शायद कभी मछली पकड़ भी लूंगा। तुम्हें क्या मिलेगा? तुम जो लाठी टेक कर यहां खड़े हो चार घंटे से। तुम सिर्फ यह देख रहे हो कि मैं मछली पकड़ पाता हूं कि नहीं। तुम्हें क्या लेना-देना है? न मछली से तुम्हें कुछ लेना, न मुझसे कुछ लेना। तुम तो रास्ता लगो!"
लोग एक-दूसरे को देख रहे हैं और सोच रहे हैं कि कैसी उदासी है! सब की नजरें दूसरों पर गड़ी हैं। इतने में तो अपने से पहचान हो जाए।
अमृत प्रिया! औरों को मत देख। औरों को जिसने देखा, वह भटका। अपने को जिसने देखा, वह पहुंचा! इतनी ऊर्जा तो अपने को देखने में लगा।
क्या प्रयोजन है किसी और को देखने से? यह उनकी जिंदगी है। अगर उन्हें उदास ही रहना है, तो कोई लाख उपाय करे, तो भी उन्हें प्रसन्न नहीं कर सकता।
अगर उन्होंने यही तय किया है, अगर दुखी रहना ही उनका निर्णय है, तो उनकी मर्जी। उनकी स्वतंत्रता है। वे मालिक हैं अपने।

मगर तू क्यों परेशान है! और उनको उदास देख-देख कर तू उदास हो जाएगी। हारे हुए लोगों को देखोगे, पराजित लोगों को देखोगे, तो मन में यह निराशा सघन होने लगेगी कि यही जिंदगी है! यही मुझे होने वाला है!
बुद्धों को देखो। और बुद्ध न मिलें, तो अपने को देखो। क्योंकि वहां बुद्धत्व छिपा है। वह भी बुद्ध को ही देखना है। बाहर के बुद्ध को देख कर भी भीतर के बुद्ध की ही याद आती है। भीतर के बुद्ध को देख कर बाहर के बुद्धों को समझने की सूझ आती है। ये कुछ अलग-अलग बातें नहीं हैं। जैसे कोई आईने में देखता है, तो अपनी ही तस्वीर दिखाई पड़ती है। ऐसे ही बुद्धों में जब कोई झांकता है, तो अपने को ही पाता है।
तू कहती है, "इस जहां में तू कैसे बेपिए मदहोश रहता है!" भीतर की एक मस्ती है, उसके लिए पीना नहीं पड़ता। भीतर भी छनती है।
कल ही किसी ने पूछा था कि ओशो, "क्या आप रोज सुबह भांग छान लेते हैं! आपकी बातें बड़ी प्यारी लगती हैं!"
भांग छानने की जरूरत नहीं; "भगवान" छान लेता हूं। भांग क्या पीनी, जब भगवान को पीयो। फिर अंगूर की ढली क्या पीनी--जब आत्मा की ढली पीना आ जाए। सुबह ही नहीं छानता, हर पल छानता हूं। जाग कर छानता हूं, सो कर छानता हूं। छानता ही रहता हूं।
एक ऐसा भी रस है, जो भीतर मौजूद है। जरा तलाश करना है। उस रस को ही हमने परमात्मा कहा है--"रसो वै सः।" वह भीतर का जो अमृत है, उसको पीयो। तो तू भी ऐसी ही हो जाए। तुझे पूछना न पड़े कि
इस जहां में तू कैसे बेपिए मदहोश रहता है?
ऐ साकी! आज तक देखा न तुझ सा आदमी मैंने।।
बता तू कौन है इंसान या कोई फरिश्ता है?
या देखा है खुदा को ख्वाब में बना आदमी मैंने।।
नहीं, कुछ भी नहीं। सिर्फ दर्पण में तुमने अपनी तस्वीर देखी। मैं दर्पण हूं--इससे ज्यादा कुछ भी नहीं।
मैं तुम्हें तुम्हारा चेहरा दिखा दूं, तो काम पूरा हो गया। मैंने अपना देख लिया। मेरा काम पूरा हो गया है। अब जितनी देर यहां हूं, जिनको भी अपना चेहरा देखना हो, वे देख लें। लेकिन दर्पण में जब तुम चेहरा देखते हो, तो दर्पण में अपनी तलाश करने नहीं निकल जाते। और दर्पण को छाती से भी नहीं लगा लेते। और दर्पण को लिए भी नहीं फिरने लगते हो।
दर्पण में चेहरा देख लिया; पहचान अपनी हुई; दर्पण से कुछ लेना-देना नहीं है।
सदगुरु को दर्पण ही समझो। न उसको पकड़ना है, न उसका अनुकरण करना है। न उसके रंग-रूप में ढलना है। बस, अपना चेहरा देखो। और अपने चेहरे की पहचान आ जाए, तो भीतर उतरो। खोजो वहां। जो दिखाई पड़ा था सदगुरु में, उसको खोजो भीतर। सदगुरु की नकल मत करना। यही भूल हो गई।
ईसाई हैं दुनिया में, मगर ईसा कहां? बौद्ध हैं दुनिया में, मगर बुद्ध कहां? जैन हैं दुनिया में, मगर जिन कहां? क्या हो गया? कहां चूक हुई? कहां पैर गलत पड़ गए?
इतने ईसाई और एक भी ईसा नहीं! और जिस दिन एक भी ईसाई न था, उस दिन ईसा था।
इतने बौद्ध हैं और एक भी बुद्ध नहीं; मामला क्या है? लोग नकल में पड़ गए। लोगों ने दर्पण में तो देखा, फिर दर्पण में ही खोजने लगे। देखा था अपने को; खोजना था भीतर; लौटना था अपने पर।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात बहुत पी लिया। घर आया। पीया हुआ आदमी घर लौटता है, तो पत्नी से डरता है। यूं तो बिना पीए भी डरता है, मगर पी कर तो बहुत ही डरता है। ऐसे जब तक दरवाजे तक नहीं आया था, बड़ा डोल कर चल रहा था। पत्नियों को देखते ही नशा तक उतर जाता है!
दरवाजे को जैसे ही खटखटाया, याद आई कि अब पत्नी दुरुस्त करेगी। रात के तीन बज रहे हैं! लेकिन सौभाग्य कि बेटे ने उठ कर दरवाजा खोल दिया। धन्यवाद दिया परमात्मा को। दरवाजा बंद करके आहिस्ता से अंदर गया।
लेकिन रास्ते में कई जगह गिरा था। याद आया। कहीं कोई खरोंच लग गई हो चेहरे

पर; कोई लहू वगैरह निकल आया हो। घंटों नाली में पड़ा रहा था। वह तो एक कुत्ते ने कृपा की कि जीवन-जल छिड़क दिया उस पर, सो थोड़ा उसे होश आया। तब घर की तरफ चल पड़ा।
सोचा कि दर्पण में देख लूं। नहीं तो सुबह पत्नी देखते से कहेगी कि खरोंच कैसे लगी? यह चोट कहां आई?
तो जा कर दर्पण में देखा। कई जगह चेहरे पर खरोंच थी। चोट थी। तो सोचा
कि मलहम पट्टी लगा लूं। तो मलहम पट्टी लगा ली। मलहम पट्टी लगा कर बड़ा निश्चिंत सो रहा।
सुबह पत्नी उठी। स्नानगृह में गई और वहां से एकदम चिल्लाती हुई आई। झकझोर कर मुल्ला को उठाया कि "तुमने पूरा आईना खराब किया है!" मुल्ला ने कहा, "क्या हुआ?" उसने कहा, "चलो भीतर।" आईने पर उसने जगह-जगह मलहम लगा रखी थी। पट्टी चिपका दी थी। क्योंकि बेचारे को बेहोशी में अपना चेहरा आईने में दिखाई पड़ा था। तो जहां-जहां खरोंच थी, वहां-वहां उसने बेलाडोना चिपका दिया होगा। मलहम लगा दी होगी।
"तुमने सारा आईना खराब किया। तुम रात पीकर आए थे!"
पीया हुआ आदमी कैसे बचे! कुछ न कुछ भूल कर ही लेगा। कुछ न कुछ चूक हो ही जाएगी। बेहोशी में चूक होनी निश्चित है।
बेहोशी में यह हुआ कि लोग ईसाई हो गए। ईसा होना था--ईसाई हो गए! ईसाई होने का अर्थ हैः नकल में पड़ गए। ईसा जैसे होने की नकल में पड़ गए। और नकल का कोई मूल्य नहीं है। झूठे सिक्के हैं। इनकी कितनी ही कतार लग जाए!
आधी पृथ्वी ईसाई है। करोड़ों लोग ईसाई! करोड़ों लोग हिंदू! करोड़ों लोग मुसलमान। करोड़ों लोग बौद्ध--और जिंदगी बेरौनक; और जिंदगी एक बोझ। ऐसे ढो रहे हैं लोग, जैसे पहाड़ सिर पर रखे हों। मरे जा रहे, दबे जा रहे!
मैं दर्पण हूं, इससे ज्यादा नहीं। और जो तुम्हें मुझ में दिखाई पड़े, भूल कर मत सोचना कि दर्पण का है। तुम्हें अपनी तसवीर दिखाई पड़ रही है। इसकी तलाश में भीतर जाना। अगर इसकी तलाश में बाहर निकल गए, तो जो भूल चल रही थी, चलती रहेगी।
ये बाहर तो ही दौड़ रहे हैं सारे लोग। कोई धन के लिए दौड़ रहा है। कोई पद
के लिए दौड़ रहा है। तुम परमात्मा के लिए दौड़ने लगोगे। मगर दौड़ बाहर है। और जब तक दौड़ बाहर है, तब तक गलत है। किस चीज के लिए दौड़ते हो, इससे भेद नहीं पड़ता। जब तक बाहर दौड़ते हो--गलत दौड़ते हो। फिर सौ साल जीओ कि हजार साल जीओ, फर्क नहीं पड़ता।
उपनिषदों में ययाति की कथा है। ययाति सौ वर्ष का हुआ। मौत आ गई। ययाति घबड़ा गया। उसने तो सोचा ही नहीं था कि कभी मरना है। कौन सोचता है कि कभी मरना है! मरण-शय्या पर पड़ा हुआ आदमी भी नहीं सोचता कि मरना है। वह भी कल की योजना बनाता रहता है। कल के विचार करता रहता है। कल क्या करना है! मरते- मरते दम तक भी, आखिरी क्षण तक भी मौत को हम स्वीकार नहीं करते।
जीने की अभीप्सा इतनी प्रबल है कि ययाति की जब सौ वर्ष में मौत आई, तो
वह बहुत चौंक गया। गिड़गिड़ाने लगा। बड़ा सम्राट था, चक्रवर्ती था; मौत के चरणों में गिर पड़ा और कहा कि "अभी मत ले जा। अभी मत ले जा। अभी तो मेरी जिंदगी की कोई भी तमन्ना पूरी नहीं हुई।" जैसा तू कहती है।
उठाए क्यों लिए जाते हो मुझको बागे-दुनिया से।
नहीं देखी है दिल भर के बहारे जिंदगी मैंने।।
ऐसा ही उसने कहा। "इतनी जल्दी! कम से कम सौ साल मुझे और दे दो। दया करो। अभी तो कुछ भी पूरा नहीं हुआ। कोई वासना पूरी नहीं हुई।"
मौत को भी कहते हैं, दया आ गई। मौत ने कहा, "मुझे किसी को तो ले जाना ही पड़ेगा। खानापूरी तो करनी ही पड़ेगी फाइल में। तुम्हारा बेटा अगर कोई जाने को राजी हो... ।"
उसके सौ बेटे थे। ययाति की सौ पत्नियां थीं। उसने कहा कि "कोई अड़चन नहीं। मेरे बेटे मेरा बड़ा आदर करते हैं, बड़ा सम्मान करते हैं।"
उसने सौ ही बेटे इकट्ठे कर लिए। उनमें कोई बेटा अस्सी साल का था। कोई अठहत्तर साल का था। कोई पचहत्तर साल का था। कोई सत्तर साल का था। बूढ़े थे। खुद भी बूढ़े हो रहे थे।

उसने सारे बेटों से कहा कि "बेटा, मौत मेरे द्वार पर खड़ी है। यह है मौका परीक्षा का। आज देखूं कि कौन मुझे प्रेम करता है। तुम कहते तो बहुत थे कि पिताजी, तुम्हारे लिए हम मर सकते हैं। आज समय आ गया। देखें, कौन चुनौती स्वीकार करता है! मौत कहती है कि मैं जी सकता हूं सौ साल और। तुम में से कोई जाने को राजी हो, हाथ उठा दे।"
सब एक दूसरे की तरफ देखने लगे! कौन जाने को राजी! ये बातें करने की हैं।
पति पत्नियों से कहते हैं कि "मर जाऊंगा तेरे बिना।" पत्नियां पतियों
से कहती हैं, "मर जाऊंगी तुम्हारे बिना!" प्रेमी प्रेयसियों से कहते हैं कि "मर जाऊंगा। जी न सकूंगा। एक पल न जी सकूंगा!" ये सब बातें हैं। न कोई मरता है, न कुछ होता है!
यह आदमी जो इस स्त्री से कह रहा है कि "तेरे बिना मर जाऊंगा", न मालूम कितनी स्त्रियों से कह चुका है! और अभी तक मरा नहीं! असल में यह इसकी आदत ही हो गई। यह इसकी शैली ही हो गई!
बेटे इधर-उधर देखने लगे। सिर्फ एक बेटा जिसकी उम्र अभी केवल सोलह ही वर्ष थी, खड़ा हो गया। उसने कहा, "मैं तैयार हूं!"
मौत को तो बहुत दया आ गई उस बेटे पर। सोचा कि भोला-भाला है। अभी छोकरा
ही है। इसे कुछ अनुभव नहीं है। अनुभवी जो हैं, वे तो इधर-उधर देख रहे हैं कि कौन जाता है, देखें! एक दूसरे की तरफ देख रहे हैं कि तुम बड़ी ऊंची बातें करते थे, अब देखें! एक दूसरे की तरफ देख रहे हैं कि उठो भाई, हाथ उठाओ। कहते तो तुम यह थे; कहते तो तुम ऐसा थे। बड़े चरण छूते थे। बड़ी पूजा करते थे? अब मौका आ गया। अब दिखा दो अपनी मर्दानगी; अपना जोश-खरोश! यह अवसर न चूको। कोई अपनी तरफ नहीं देख रहा था!
यह बेटा उठ कर खड़ा हो गया। इसने कहाः "मैं राजी हूं!"
मौत ने कहा, "सुन नासमझ! तेरे और कोई निन्यानबे भाई राजी नहीं हैं। तू क्यों राजी हो रहा है? पूछ पहले इन दूसरे भाइयों से, ये क्यों राजी नहीं हैं!"
तो उनमें से एक बूढ़े भाई ने कहा, "जब हमारे पिता राजी नहीं हैं, सौ साल
हो गए उनको, मेरी तो अभी उम्र केवल सत्तर ही साल है! जब वे सौ साल में जाने को राजी नहीं हैं, तो मैं सत्तर साल में कैसे राजी हो जाऊं! अभी मेरी कौन सी इच्छाएं पूरी हो गईं! उनकी सौ में नहीं हुईं, तो मेरी सत्तर में कैसे हो जाएंगी! मैं भी अधूरा हूं। मेरी भी तृष्णा खाली है। मेरा भी भिक्षापात्र अभी भरा नहीं। मेरा भी मन अभी जाने को राजी नहीं। जब उनका नहीं, तो मेरा कैसे हो?"
सभी भाइयों ने इसमें सहमति भरी कि "बात ठीक है। हमारा कैसे हो! हम भी अपनी इच्छाएं पूरी करना चाहते हैं। हर आदमी अपनी इच्छाएं पूरी करना चाहता है। और जब पिता को इतनी दया नहीं है, अपने बेटों की बलि चढ़ाने को राजी हैं, तो हमको किसलिए दया हो! अपना-अपना स्वार्थ। वे अपना देख रहे हैं, हम अपना देख रहे हैं। यह मामला स्वार्थ का है; पिता-पुत्र का है ही नहीं। इसमें पिता-पुत्र का संबंध कहां आता है!"
तो मौत ने कहा, "सुन अपने भाइयों की बात। तू तो अभी सोलह साल का है। तूने तो कुछ भी नहीं देखा। जिंदगी का क ख ग भी नहीं देखा। वापस ले ले अपना वचन!"
लेकिन वह बेटा हंसने लगा। उसने कहा, "मैं इसीलिए तो राजी हूं कि मेरे भाई--कोई सत्तर के हैं, कोई पचहत्तर के हैं, कोई अस्सी तक के हैं--इनको जिंदगी में कुछ नहीं मिला; मेरे पिता सौ साल के हैं, इनको जिंदगी में कुछ नहीं मिला। ये सौ आदमी मेरे सामने मौजूद हैं। निन्यानबे मेरे भाई, सौवां मेरा पिता--इनको जिंदगी भर जी कर कुछ नहीं मिला, तो मैं इस नाहक जिंदगी में किसलिए जीऊं! मुझे क्या खाक मिल जाएगा। इन सब को देखकर ही तो मैं राजी हो गया कि मुझे ही ले चलो। क्या सार है इस जिंदगी में!"
फिर भी उस बूढ़े ययाति को बोध न आया।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि छोटे बच्चे बूढ़ों से ज्यादा स्पष्ट होते हैं, साफ होते हैं, स्वच्छ होते हैं। उनकी दृष्टि अभी ताजी होती है। उनकी दृष्टि पर अभी धूल नहीं जमी होती अनुभव की।
उसने जिद्द की तो मौत उसे ले गई। सौ साल बाद मौत फिर आई। सौ साल कब गुजर गए--पता नहीं चला! और ययाति फिर गिड़गिड़ाने लगा। इस सौ साल में उसने फिर शादियां कर ली थीं। पुराने बेटे तो मर चुके थे। पुरानी पत्नियां मर चुकी थीं। नए बेटे थे, नई पत्नियां थीं। फिर वही सवाल उठा। फिर एक बेटे को मौत ले गई।
ऐसी कहानी कहती है कि हजार साल तक ययाति जिंदा रहा। मौत आती रही और हर बार वह सौ साल और मांगता रहा। जब हजारवें साल मौत आई, तो उसने कहा, "अब बहुत हो चुका। अब और तो नहीं मांगोगे?"
ययाति ने कहा, "नहीं, मैं मांगने वाला भी नहीं था। इतना ही कह जाना चाहता हूं उन मनुष्यों के लिए, जो मेरे पीछे आएंगे--कि सौ साल जीओ कि हजार साल जीओ, कुछ हाथ नहीं लगता। हाथ खाली के खाली रह जाते हैं।"
बाहर की दौड़ से कभी किसी के हाथ नहीं भरे। फिर चाहे धन के लिए दौड़ो, चाहे पद के लिए, चाहे परमात्मा के लिए! और जो भीतर गया है, एकदम भर गया है। पूछो बुद्धों से, पूछो जाग्रत पुरुषों से! जो भीतर गया मालिक हो गया। जो बाहर रहा--भिखमंगा रहा।
हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पे दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।।
निकलना खुल्द से आदम का सुनते आए थे लेकिन।
बहुत बे-आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले।।
मोहब्बत में नहीं है फर्क जीने और मरने का।
उसी को देख कर जीते हैं जिस काफिर पे दम निकले।।
खुदा के वास्ते पर्दा न काबे का उठा जालिम।
कहीं ऐसा न हो यहां भी वही काफिर सनम निकले।।
कहां मयखाने का दरवाजा और कहां वाइज।
पर इतना जानते हैं कल वो जाता था कि हम निकले।।
फर्क नहीं है यहां कुछ--तुम्हारे तथाकथित धार्मिकों में और अधार्मिकों में, पापियों में और पुण्यात्माओं में--बहुत फर्क नहीं है। एक जैसे ही लोग हैं। कहां मयखाने का दरवाजा और कहां वाइज। कहां वह धर्मोपदेशक धर्मगुरु... !
कहां मयखाने का दरवाजा और कहां वाइज।
पर इतना जानते हैं कल वो जाता था कि हम निकले।।
सब एक ही तरह के उपद्रव में उलझे हैं।
हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पे दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।।
जिंदगी भर दौड़ कर भी कोई अरमान पूरा नहीं होता।
निकलना खुल्द से आदम का सुनते आए थे लेकिन।
बहुत बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले।।
पर सभी बेआबरू होकर निकलते हैं। यहां से आबरू पाकर तो वही निकलता है,
जो अपने को जान कर निकलता है। यह कूचा उन थोड़े से लोगों के लिए सार्थक हो जाता है, जो खुद को पहचान लेते हैं।
अमृत प्रिया, अपने को पहचान। समय मत गंवाओ।
मैं तुमसे कहता हूं कि जीवन महाआनंद है, महाउत्सव है। जीवन शाश्वत गीत है, जिसका न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत। मगर तुम्हारा जीवन तो बीज है अभी। इसे ध्यान की भूमि दो। इस पर प्रेम का पानी बरसाओ। इस पर श्रम की किरणें पड़ने दो। जागरूक होकर इसकी रक्षा करो। और देर नहीं लगेगी, जल्दी ही अंकुर निकलेंगे। जल्दी ही वसंत आ जाएगा, मधुमास आ जाएगा। एक क्षण में भी यह बात हो सकती है, त्वरा चाहिए, सघन अभीप्सा चाहिए।
अभीप्सा और आकांक्षा का भेद ख्याल में रखना। आकांक्षा होती है बाहर की; अभीप्सा होती है भीतर की। जो व्यक्ति समग्ररूपेण स्वयं को खोजने में लग जाए; रत्ती भी बचा कर न रखे; आधा-आधा नहीं--पूरा पूरा लग जाए; निन्यानबे

प्रतिशत भी नहीं, सौ प्रतिशत लग जाए--तो एक क्षण में क्रांति घट सकती है।
एक क्षण में तुम्हारे जीवन में सुगंध आ सकती है; सूरज निकल सकता है। यह जो अंधेरी रात चल रही है जन्मों-जन्मों से, इसकी सुबह हो सकती है। नहीं तो यह उदासी चलती रहेगी--चलती रहेगी--चलती रहेगी।
न किसी की आंख का नूर हूं, न किसी के दिल का करार हूं।
जो किसी के काम न आ सके मैं वो एक मुश्ते-गुबार हूं।
मेरा रंग रूप बिगड़ गया, मेरा यार मुझसे बिछुड़ गया।
जो चमन खिजां से उजड़ गया मैं उसी की फस्ले-बहार हूं।।
पए-फातहा कोई आए क्यों, कोई चार फूल चढ़ाए क्यों।
कोई आ के शम्मा जलाए क्यों, मैं वो बेकसी का मजार हूं।।
मैं नहीं हूं नग्मा-ए-जांफिजा, मुझे सुन के कोई करेगा क्या।
मैं बड़े बिरोग की हूं सदा, मैं बड़े दुखों की पुकार हूं।।
जिंदगी की दोनों संभावनाएं हैंः अंधेरी रात भी हो सकते हो तुम-- आलोकित दिवस भी।
न किसी की आंख का नूर हूं, न किसी के दिल का करार हूं।
जो किसी के काम न आ सके, मैं वो एक मुश्ते-गुबार हूं।।
यूं तो मिट्टी हो। अगर अपने को न पहचानो तो एक मुट्ठी भर मिट्टी हो।
इससे ज्यादा तो कुछ भी नहीं। और मिट्टी मिट्टी में गिर जाएगी। मिट्टी मिट्टी में गिरनी ही है; कब गिर जाएगी, कहा नहीं जा सकता। इसलिए देर न करो।
जागने में देर न करो। जागने को स्थगित न करो। जागने को कल पर न टालो। जिसने कल पर टाला, उसने सदा के लिए टाला।
मुट्ठियों में खाक लेकर दोस्त आए बादे-दफ्न
मुट्ठियों में खाक लेकर...
और करें भी क्या! जब कोई मर जाए, तो दोस्त और करें भी क्या! अब खाक पर खाक ही डाली जा सकती है।
मुट्ठियों में खाक ले कर दोस्त आए बादे-दफ्न
जिंदगी भर की मोहब्बत का सिला देने लगे!
क्या सिला दिया--खूब सिला दिया! "जिंदगी भर की मोहब्बत का सिला देने लगे!" कैसा सिला--कि मुट्ठियां भर-भर के खाक डालने लगे!
और किसी के मुंह से न निकला
मेरे दफ्न के वख्त
कि इन पर खाक न डालो
इन्होंने आज ही बदले हैं कपड़े
और आज ही हैं ये नहाए हुए
मुट्ठियों में खाक ले कर दोस्त आए बादे-दफ्न
जिंदगी भर की मुहब्बत का सिला देने लगे!
पर करें भी क्या! करने को कुछ बचता भी नहीं। इधर सांस उखड़ी--उधर लोगों
ने अरथी सजाई। क्षण भर में क्या हो जाता है!
जरा सी देर में क्या हो गया जमाने को
अभी जो अपने थे पराए हो गए!
"जरा सी देर में क्या हो गया जमाने को!" लेकिन जमाना भी क्या करे! तुम मिट्टी ही रहे; मिट्टी में ही गिर गए। अब मिट्टी में ही पूर कर लोग चले गए। सब दबा कर चल दिए--मिट्टी में दबा कर चल दिए! कोई दुआ-सलाम भी नहीं करता। "सब दबा के चल दिए, न कोई दुआ न सलाम! क्या हो गया जमाने को! जरा सी देर में क्या हो गया जमाने को!" लौट कर भी कोई नहीं देखता। कैसा सिला दिया! "जिंदगी भर की मोहब्बत का सिला देने लगे!"
यह कभी भी होगा। यह अभी हो सकता है। आज हो सकता है। इसके पहले कि यह हो--भीतर के चैतन्य को पहचान लो। इसके पहले कि मौत आए, अपने भीतर के अमृत को जान लो, ताकि मरो, तो भी तुम्हारे भीतर नृत्य रहे; मरो, तो भी तुम्हारे भीतर आनंद रहे। मरो, तो भी जानते हुए कि "मैं नहीं मर रहा हूं। जो मर रहा है, वह मैं नहीं हूं। देह मरती है, मैं नहीं मरता हूं।"
जब तक इस अमृत-तत्व को कोई नहीं जान लेता, तब तक जीवन में न कोई रस है, न कोई आनंद है, न कोई उत्सव है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आपका और हमारे संभावित कच्छ के आश्रम का विरोध करने वाले गौभक्त श्री शंभू महाराज को दिनांक इकतीस अगस्त उन्नीस सौ अस्सी के रोज बीस-पच्चीस संन्यासी और संन्यासिनियों के साथ हम मिलने गए। बड़ौदा में उनकी भागवत सप्ताह थी। उस मौके पर मिलने का आयोजन किया। बहुत-सी बातें हुई, जिनमें निम्न बातें खास रहीं। श्री शंभू महाराज ने बतायाः "पहला--ओशो का विरोध करने का कारण, मेरे गुरु शंकराचार्य के खिलाफ बोलते हैं, इसलिए करता हूं।"

मैं जो बोला हूं, उसका खंडन करो, उसको जवाब दो। मेरे कच्छ आने का विरोध करने से उसका कोई जवाब होगा? मैं कच्छ आऊं या न आऊं, मैंने जो शंकराचार्य के संबंध में कहा है, उसका जवाब ऐसे दिया जाएगा?
मैंने कहा क्या है शंकराचार्य के विरोध में! स्मृति के लिए--शंभू महाराज की--दोहरा देता हूं। मैंने यही कहा है कि शंकराचार्य के इस कथन से मैं राजी नहीं हूं कि "ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है।" और तो मैंने कुछ भी नहीं कहा।
सिद्ध करो कि जगत मिथ्या है। मेरा कच्छ आने का विरोध करते हो, इससे तो सिद्ध होता है--जगत सत्य है। कच्छ सत्य है? और जगत असत्य हो जाएगा? मेरा आना सत्य है! तुम्हारा विरोध सत्य है! तो जगत कैसे असत्य हो जाएगा?
"जगत असत्य है और ब्रह्म सत्य है"--इस बात का मैंने निश्चित विरोध किया है। अब भी विरोध करूंगा, क्योंकि मेरी दृष्टि में यह सूत्र भारत की दरिद्रता, दीनता, हीनता, गुलामी--सब का आधार है। इस सूत्र को जब तक हम उखाड़ न फेंकेंगे, तब तक भारत के जीवन में सौभाग्य का उदय नहीं हो सकता।
भारत क्यों विज्ञान को जन्म नहीं दे पाया? --जगत असत्य है--इसलिए। विज्ञान कैसे जन्मे? जब जगत है ही नहीं, तो विज्ञान कैसा? जगत का यथार्थ मानो, तो विज्ञान का जन्म हो सकता है। और भारत में सबसे पहले विज्ञान का जन्म हो सकता था। क्योंकि हम पांच हजार वर्षों से ऐसे महत चिंतकों को जन्म दिए हैं कि विज्ञान का जन्म न हो, यह बात समझ में नहीं आती।
जब पश्चिम बिल्कुल जंगली अवस्था में था, तब हमने सभ्यता के स्वर्ण शिखर छुए हैं। और हम विज्ञान को जन्म न दे सके! कारण है--इस भ्रांत उपदेश में कि "जगत मिथ्या है; जगत माया है।"
और ऐसा नहीं कि मैं ही विरोध कर रहा हूं; महावीर ने भी विरोध किया है। असल में जिसके पास भी थोड़ी स्पष्ट दृष्टि है, वह यह कहेगा कि जगत को कैसे असत्य कह सकते हो। और अगर जगत असत्य है, तो हम सब असत्य हो गए। फिर हमारी धारणाएं और हमारे ध्यान भी असत्य हो गए। और हमारी समाधियां और समाधि के अनुभव भी असत्य हो गए! और फिर हमारा ब्रह्म कैसे सत्य होगा, जब हम ही सत्य नहीं हैं; जब हम ही झूठ हैं, तो झूठे लोगों का अनुभव कैसे सत्य होगा?
मैं कहता हूंः जगत भी सत्य है, ब्रह्म भी सत्य है। जगत और ब्रह्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जगत बाहर--ब्रह्म भीतर। मगर अगर बाहर असत्य है, तो भीतर भी सत्य नहीं हो सकता। जरा सोचो।
अगर बाहर तुम्हारे घर का सारा जगत असत्य है, तो तुम्हारे घर का भीतर कैसे सत्य हो सकता है? तुम्हारा घर ही नहीं टिक सकेगा; उसके लिए जमीन चाहिए, जिस पर टिके। वह जमीन बाहर होनी चाहिए। नहीं तो तुम्हारा घर अतल खड्ड में गिर जाएगा।
पदार्थ उतना ही सत्य है जितना परमात्मा।
शंकराचार्य की यह दृष्टि घातक सिद्ध हुई, भयानक अभिशाप सिद्ध हुई। इसका परिणाम यह हुआ, हमने जगत में उत्सुकता छोड़ दी। फिर हम रोते फिरते हैं, भीख मांगते फिरते हैं। कोई कारण न था भीख मांगने का, अगर हमने जगत की थोड़ी चिंता की होती। मगर चिंता क्यों करें, जब असत्य ही है।
और बड़ा मजा यह है, शंकराचार्य भी भोजन करते हैं। शंकराचार्य भी लोगों
को समझाने जाते हैं--जो कि असत्य हैं! शंकराचार्य विवाद के लिए सारे देश में घूमते हैं। किससे विवाद कर रहे हो? किस कारण विवाद कर रहे हो? वहां कोई है ही नहीं! नाहक अपने से ही बातचीत कर रहे हो! अपने को ही हरा रहे हो।

यह शंकर दिग्विजय की जो चर्चा करते हैं शंकर के मानने वाले, यह दिग्विजय किसकी? यह विजय-यात्रा किस पर? कोई दूसरा तो है नहीं, दूसरा तो असत्य है। फिर विवाद किससे है? मंडनमिश्र नहीं हैं, तो विवाद किससे कर रहे हो? जीत किसको रहे हो? हार कौन रहा है?
शंकराचार्य का पूरा जीवन तो कुछ और कह रहा है।
शंकराचार्य ने जगत का त्याग किया; जो है ही नहीं, उसका त्याग किया जा सकता है? मैं पूछता यह हूं--जो है ही नहीं, उसका त्याग कैसे करोगे? कम से कम त्याग के लिए तो होना चाहिए! जैसे एक भिखमंगा कहे कि "मैंने राजपाट सब त्याग कर दिया! तुम हंसोगे! तुम कहोगेः राजपाट था कहां?
दो अफीमची एक झाड़ के नीचे लेटे थे। पूर्णिमा की रात। और एक अफीमची ने कहाः अहा, क्या प्यारा चांद निकला! करोड़ रुपए में भी खरीद सकता हूं!" दूसरा अफीमची हंसने लगा। उसने कहाः चुप रह। बकवास न कर! अरे क्या तू खरीदेगा! हिम्मत है तेरी खरीदने की? करोड़ से काम नहीं चलेगा।
उसने कहाः दस करोड़ में खरीद सकता हूं। पचास करोड़ में खरीद सकता हूं।
एक अरब में खरीद सकता हूं।
दूसरे अफीमची ने कहा, "बकवास बंद कर। हमें बेचना ही नहीं! तू लाख सिर मारे, जब हम बेचेंगे ही नहीं, तू खरीदेगा कैसे?
चांद की खरीद-फरोख्त हो रही है! जैसे इनके बाप का हो! जो है ही नहीं, वह खरीदा जा रहा है! जो है ही नहीं, वह बेचा जा रहा है--जो अपना है ही नहीं... । इनको तुम अफीमची कहते हो। और इसी तरह की पीनक की बातों को तुम वेदांत कहते हो? मैं नहीं कहता।
मैं तो मानता हूं, विज्ञान उतना ही सत्य है, जितना धर्म।
दुनिया में दो तरह की भ्रांतियां हुईं--एक भ्रांति शंकराचार्य जैसे लोगों ने फैलाई, जिन्होंने कहा--"जगत असत्य है और ब्रह्म सत्य है।" अर्थ हुआ--विज्ञान असत्य है, धर्म सत्य है। और दूसरी तरह की भ्रांति कार्ल मार्क्स जैसे लोगों ने फैलाई, जिन्होंने कहा, "जगत सत्य है, ब्रह्म असत्य है। विज्ञान सत्य है, धर्म अफीम का नशा है।"
मैं कहता हूंः ये दोनों गलत हैं। और एक मजे की बात है, दोनों एक बात से राजी हैं; दोनों अद्वैतवादी हैं--कार्ल मार्क्स भी और शंकराचार्य भी। क्योंकि दोनों एक में मानते हैं, दो में नहीं मानते। हालांकि उनका एक अलग-अलग है। कार्ल मार्क्स कहता हैः "जगत सत्य है, और ब्रह्म असत्य है।" मगर है अद्वैतवादी, यह ख्याल रखना। और शंकराचार्य कहते हैंः "ब्रह्म सत्य है, जगत असत्य है।" वे भी अद्वैतवादी हैं।
मैं कार्ल मार्क्स और शंकराचार्य को एक सी ही भ्रांतियों का शिकार मानता हूं। मेरी दृष्टि में दोनों ही सत्य हैं और दोनों अलग भी नहीं हैं। मैं भी अद्वैतवादी हूं। लेकिन मैं मानता हूं--एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। इससे मैं द्वैतवादी नहीं हो जाता। सिक्का एक है, पहलू दो हैं। और सिक्का एक पहलू का कोई बनाकर दिखा दे, तो मैं मान लूंगा कि कार्ल मार्क्स भी सच्चा है और शंकराचार्य भी सच्चे हैं। एक पहलू का कोई सिक्का बना कर बता दे। कैसे बनाओगे एक पहलू का सिक्का? सिक्के के दो पहलू होते हैं। प्रकाश नहीं हो सकता है, अगर अंधकार न हो और अंधकार नहीं हो सकता, अगर प्रकाश न हो। पुरुष नहीं हो सकता, अगर स्त्री न हो; स्त्री नहीं हो सकती, अगर पुरुष न हो। जन्म नहीं हो सकता अगर मौत न हो; मौत नहीं हो सकती, अगर जन्म न हो। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
ठंडा और गर्म--एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सुख और दुख--एक ही सिक्के
के दो पहलू हैं। विज्ञान और धर्म--एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पूरब और पश्चिम--एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
मैंने शंकराचार्य का जो विरोध किया है, उस विरोध में कार्ल मार्क्स
का विरोध भी सम्मिलित है। मैं यह कह रहा हूं सिर्फ कि क्यों एक सिक्के के पहलू को स्वीकार करते हो और दूसरे पहलू को इनकार करते हो? और दूसरे को इनकार करने में कोई वैज्ञानिकता नहीं है, कोई तर्क नहीं है। और उसके दुष्परिणाम दोनों ने भोगे हैं। पश्चिम दुष्परिणाम भोग रहा है कि धर्म खो गया है पश्चिम में। पदार्थ ही पदार्थ रह गया है। तो विज्ञान तो बहुत बढ़ा।

विज्ञान ने तो अंबार लगा दिया खोजों का। और आदमी की आत्मा बिल्कुल खो गई! वस्तुएं इकट्ठी हो गईं; आदमी खो गया!
यहां हमने उलटा काम किया। आत्मा तो बच गई, मगर रोटी खो गई, छप्पर खो गया, कपड़े खो गए। यह आत्मा भी बड़ी दीन-हीन हो गई, बड़ी दरिद्र हो गई, बड़ी पाखंडी हो गई। हो ही जाएगी।
पश्चिम में विक्षिप्तता पैदा हो रही है, क्योंकि आत्मा न हो तो संतुलन खो जाता है। शरीर ही शरीर बचा। और पूरब भी आत्मघात की कगार पर खड़ा हुआ है। देखते हो रोज-रोज क्या होता जा रहा है! लोगों की भीड़ बढ़ती जाती है-- भोजन रोज कम होता जाता है। वस्त्र कम होते जाते हैं। जमीन कम होती जाती है। लोगों की भीड़ बढ़ती जाती है।
अगर रोका न गया भावों का चढ़ाव
तो एक दिन अखबारों में छपेंगे ये भाव
गेहूं दस पैसे जोड़ी
चावल पचास पैसे कौड़ी
चना एक रुपये में पचास
पांच रुपए में किलो घास
दूध एक रुपये बूंद
घी एक रुपया दस पैसे सूंघ
एक रुपया तोला आम कच्चे
और दस रुपये में तीन बच्चे!
इस सबका जिम्मा किस पर होगा? शंकराचार्य इसमें जिम्मेवार हैं।
मैं जो कह रहा हूं, शंभू महाराज को कहना चंद्रकांत भारती, मेरी बातों
का उत्तर दें। मेरे कच्छ आने का विरोध करने से मेरी बातों का उत्तर नहीं होता। इससे सिर्फ भय मालूम होता है, कायरता मालूम होती है, नपुंसकता मालूम होती है। और मुझे जो कहना है, वह मैं कच्छ में रहूं कि पूना में, मैं कहूंगा; कुछ फर्क पड़ता नहीं। कहां रहूंगा, इससे क्या फर्क पड़ता है? जो मुझे कहना है, वह कहूंगा, जब तक कि तुम उसे गलत सिद्ध न कर दो।
लेकिन जवाब इनमें से कोई भी देने को नहीं हैं। और ये गौ-भक्त हैं! और संसार माया है। तो यह गऊ माया नहीं है? गौ-भक्ति चल रही है--और संसार माया है! सिर्फ गौ को छोड़ कर, बाकी संसार माया है?

दूसरा शंभू महाराज ने कहा कि "ओशो जी की इंदिरा गांधी तक बड़ी पहुंच है। अगर ओशो जी उनको कह कर गौ-हत्या बंद करवा दें, तो मैं उनका शिष्य हो जाऊंगा।"

मेरी किसी तक कोई पहुंच नहीं है। मैं अपने कमरे के बाहर नहीं निकलता, पहुंच हो कैसे सकती है? और अगर मेरी पहुंच हो भी, तो मैं इस तरह की मूर्खतापूर्ण बातों में पड़ता नहीं कि गौ-हत्या बंद करवा दो; कि शराब बंद करवा दो! ये सब बेवकूफी की बातें हैं। ये सब देहाती-बुद्धि की बातें हैं। जरूर गौ-रक्षा होनी चाहिए। मगर गौ-रक्षा और गौ-हत्या बंद करवाना दो अलग बातें हैं। सच तो यह है--अगर गौ-हत्या जारी रहे, तो ही गौ-रक्षा हो सकती है। तुम चौंकोगे थोड़ा और शंभू महाराज तो बहुत तिलमिला जाएंगे। मगर मैं भी क्या करूं, मुझे जैसा दिखाई पड़ता है, वही कहूंगा। मैं रत्ती भर अन्यथा नहीं कह सकता--बुरा लगे भला लगे। गौ-रक्षा हो सकती है, अगर गौ-हत्या जारी रहे। अगर गौ-हत्या बंद हुई, तो गौ-रक्षा नहीं हो सकती।
और मेरी बात गणित की तरह साफ है। दुनिया में कोई ऐसा देश नहीं है, जहां गऊओं की इतनी दुर्दशा हो, जितनी भारत में है। क्यों? वहां कहीं गौ-हत्या बंद नहीं हुई है, मगर गौ-रक्षा हो रही है। यहां की चालीस गायें उतना दूध नहीं देतीं, जितना स्वीडन की एक गाय दूध देती है। यह गौ-रक्षा है!
भारत में आदमियों को खाने के लिए तो भोजन नहीं है, तुम गऊओं को बचा-बचा
कर करोगे क्या? भूखा मारोगे, और क्या करोगे? भूखा मार रहे हो! हड्डी-हड्डी हो रही हैं भारत की गाएं। भूखी मर रही हैं। तुम भूखे हो, तो तुम्हारी गायों

को कौन भोजन देने वाला है? आदमी को नहीं मिल रहा खाने को, घास नहीं मिल रही आदमी को खाने को, गऊओं को कौन खिलाएगा; कैसे खिलाएगा?
भारत के पास जितने पशु हैं, गाएं-भैंसें, उतने दुनिया के किसी देश के पास नहीं हैं। आदमियों से ज्यादा संख्या हुई जा रही है! मगर उनको खिलाओगे- पिलाओगे कैसे? बचाते जाओ, तो बस हड्डी-हड्डी होंगी। उनको जबर्दस्ती जिला कर रखना है, सड़ाना है, मारना है? इससे ज्यादा दयापूर्ण होगा कि जो गाय, जितनी गाएं बचा सकते हो, उतनी गायें तुम बचाओ। उनको स्वास्थ्य दो। उनको ठीक सम्यक भोजन दो। उनकी ठीक चिकित्सा की व्यवस्था करो।
गौ-रक्षा अगर करनी है, तो गौ-हत्या नहीं रोकी जा सकती। मजबूरी है। अभी
तो नहीं रोकी जा सकती। अभी तो आदमी की हत्या के दिन करीब आ गए। आदमी इतना हुआ जा रहा है, इतनी संख्या बढ़ी जा रही है कि हमको बच्चे रोकने पड़ रहे हैं। संतति-निरोध--वह हत्या ही है। उसको तुम हत्या न कहो, "संतति-निरोध" कहो, अच्छे शब्द में छिपाओ, मगर है तो हत्या ही। भ्रूण-हत्या है। बच्चा मां के पेट में नहीं आने देंगे, यह भी हत्या है। गर्भपात के लिए हमें कानूनी व्यवस्था करनी ही पड़ेगी। करनी पड़ रही है। वह भी हत्या है।
हमें बूढ़ों को आज नहीं कल मरने की स्वतंत्रता देनी ही पड़ेगी। वह भी हत्या है। लेकिन मजबूरी है, कोई और उपाय नहीं है। और मजबूरी के लिए जिम्मेवार शंकराचार्य हैं और ये शंभू महाराज जैसे लोग हैं। नहीं तो इतनी मजबूरी की कोई जरूरत न थी।
हमने भी अगर विज्ञान के जगत में थोड़ी गति की होती, अगर हमने भी उत्पादन के ज्यादा वैज्ञानिक ढंग खोजे होते, अगर हमने भी उद्योग में नये- नये तकनीक ईजाद किए होते, तो यह हालत न आती। हम सिर्फ बच्चे पैदा करते हैं, और हमसे कुछ भी नहीं होता। और संसार माया है! बड़ा मजेदार काम चल रहा है! बच्चे पैदा करने भर में माया नहीं है!
मैंने कल तुमसे कहा कि चंदूलाल ने अपने गुरु स्वामी मटकानाथ ब्रह्मचारी को अपनी पत्नी के साथ रासलीला करते हुए पकड़ लिया, तो बड़े गुस्से में आ गया चंदूलाल। स्वाभाविक है। पत्नी को तो उसने कहा कि मैं तेरी हत्या ही कर दूंगा, तलाक तो निश्चित है। और ब्रह्मचारी को, जो उसके गुरु थे, उनको कहा कि अरे ब्रह्मचारी के बच्चे, अरे लंगोट के कच्चे! अरे उल्ले के पट्ठे! कम से कम जब मैं अपनी पत्नी से बात कर रहा हूं, तब तो तू छेड़छाड़ बंद कर दे! उठ, अपने तीन कपड़े पहन!
ब्रह्मचारी को तीन कपड़े रखने की सुविधा है। वे तीनों टेबल पर रखे हैं। और ब्रह्मचारी ने क्या कहा? ब्रह्मचारी ने कहाः वत्स, क्यों नाराज हो रहा है? अरे यह जगत तो माया है! सब सपना है--कह गए शंकराचार्य! क्यों भ्रम में पड़ रहा है? क्यों सपने में उलझ रहा है, अरे, क्या माया-मोह में उलझा है? ये तुम्हारे तथाकथित साधु-संत-महात्मा, इनके बड़े अजीब काम हैं। एक तरफ जगत को माया कहेंगे, दूसरी तरफ जगत को छोड़ो इसका उपदेश देंगे। जो है ही नहीं, उसको छोड़ना क्या? एक तरफ कहेंगे कि धन माया है, और दूसरी तरफ कहेंगे कि दान धर्म है।
बड़े मजे की बातें हैं। कुछ गणित होता, कोई तर्क होता, कोई हिसाब होता, कोई बुद्धि की बात होती! धन माया है झूठ है--और धन का दान? स्वर्ग में उसका फल मिलेगा। झूठ का दान करोगे? जो है ही नहीं उसका दान करोगे? ईश्वर तक को धोखा दोगे! और फिर स्वर्ग में उसका करोड़ गुना फल पाओगे। यह ही महात्मा समझा रहे हैं। क्या मजा चल रहा है!
असत्य को त्याग कर दिया और एक करोड़ गुना फायदा! यह तो कुछ लाटरी जैसा मामला हुआ! लाटरी में भी कम से कम असली दाम लगाना पड़ता है। यह तो लाटरी से भी बढ़िया लाटरी हुई। कुछ लगाना ही नहीं पड़ा। हल्दी लगे न फिटकरी रंग चोखा हो जाए!
और परमात्मा के दरवाजे पर दानियों की बड़ी इज्जत होती है। और दान भी किसको देना! ब्राह्मण समझाता है, ब्राह्मण को देना। क्योंकि ब्राह्मण को दान देने का लाभ बहुत है। और जैन क्या समझाता है? जैन समझाता है, जैन मुनि को देना; ब्राह्मण को नहीं, जैन मुनि को देने का बड़ा लाभ है। और बौद्ध क्या समझाता है, कि बौद्ध भिक्षु को देना--जैन मुनि को नहीं; क्योंकि बौद्ध

भिक्षु को देने का बड़ा लाभ है! तुम जरा गणित देख रहे हो? साफ है। दान हमको दो!
पहले समझाते हैं कि धन माया है, ताकि जरा तुम्हारी मुट्ठी ढीली हो; फिर कहते हैं--अब दान करो--और दान हमको करना! ब्राह्मण कहता है मुझको; जैन मुनि कहता है मुझको; बौद्ध भिक्षु कहता है मुझको--दान मुझको करना, तो ही लाभ पाओगे, तो ही पुरस्कार मिलेगा स्वर्ग में! किसी और को मत दे देना, नहीं तो भटकोगे। बेकार गया।
गौ-हत्या बंद करवाना घातक होगा। और ऐसा नहीं है कि मैं कोई गऊओं का दुश्मन हूं। लेकिन मैं पूछना चाहता हूं कि ये सज्जन अपने को कहते हैं मैं गौ-भक्त हूं, यह भक्ति कैसी, किसलिए भक्त हो गऊ के? इसीलिए न कि उससे दूध मिलता है! यह भक्ति है या स्वार्थ?
और दूध तुम्हारे लिए शंभू महाराज, गौ में पैदा होता है कि गौ के बछड़े
के लिए पैदा होता है? यह गौ के बछड़े से छीनना और दूध शंभू महाराज पीएं, यह तो शोषण है, बलात्कार है।
अगर असली गौ-भक्त हो, तो दूध पीना बंद कर दो, पहली तो बात। गौ-भक्त दूध नहीं पी सकता। कैसे पीएगा? गौ-भक्त को तो यह करना चाहिए कि अपनी पत्नी का दूध बछड़ों को पिलवाए! यह सीधी बात होगी, अगर भक्ति है।
यह कैसी भक्ति है कि बछड़ों को अलग हटा कर उनका दूध खुद पी रहे हो!
और दूध को कहते हैं कि बड़ा शुद्ध आहार है, सात्विक आहार है! छीन रहे हो, हिंसा है यह। और गौ के बछड़ों को बांध देते हैं पास। सच तो यह है कि मुर्दा बछड़ों को बांध देते हैं, मरे-मराए बछड़ों में भूस भर कर रख देते हैं, ताकि गौ को धोखा रहे कि बछड़ा पास है, तो उसके स्तन से दूध बहने लगे। अगर अपनी पत्नियों का दूध पिलाओ बछड़ों को, सांडों को, नंदियों को! यह भक्ति होगी! जो आदमी गौ का मांस खा रहा है, वह भी भक्त नहीं है। और जो गौ का दूध पी रहा है, वह भी भक्त नहीं है; क्योंकि दोनों शोषण कर रहे हैं गौ का। और ये गौ- भक्त तो गजब का शोषण करते हैं! ये तो पंचामृत पीते हैं। ये दूध ही नहीं पीते; गौ-मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी--इन पांच चीजों का नाम पंचामृत! इससे तो मोरारजी भाई देसाई बेहतर, कम से कम अपना तो पीते हैं--स्वदेशी! स्वावलंबी! क्या गौ का पी रहे हो!
अरे, ऋषि-मुनि पहले ही कह गए कि अमृत-घट भीतर है! मगर मोरारजी देसाई के पहले कोई नहीं खोज पाया था--अमृत-घट कहां है! अमृत घट यानी ब्लैडर! वहां अमृत भरा हुआ है। और टोंटी भी परमात्मा ने दी हुई है, जब चाहो तब निकालो और पीओ!
मैं तो मोरारजी भाई को कहूंगाः थोड़े और आगे बढ़ो--पंचामृत बनाओ। क्या जीवन-जल ही पी रहे हो! पंचामृत पीओ, तो अमर हो जाओगे। जब स्वमूत्र पीने से पचासी साल जी गए और प्रधानमंत्री बन गए, अगर पंचामृत पीओ, अपना ही पंचामृत होना चाहिए, फिर तो मौत असंभव है। और पक्का समझो कि तुम सारी दुनिया के राष्ट्र जब इकट्ठे हो जाएंगे, तुम्हें पहले उसके प्रधान बनोगे--बड़ा प्रधान! असली बड़ा प्रधान!
गौ-भक्ति क्या है यह? किसलिए है? और अगर दूध के कारण ही गौ-भक्ति है,
तो फिर भैंस की भक्ति क्यों नहीं करते? आखिर भैंस का क्या कसूर है बेचारी का!
न तो मेरी किसी तक कोई पहुंच है, न मुझे किसी तक पहुंच की कोई जरूरत है। मैं अपने कमरे के बाहर नहीं जाता, पहुंचूंगा कैसे! और अगर मेरी पहुंच होती भी तो मैं इस तरह की मूर्खतापूर्ण बातों में रस नहीं लेता।
जिंदगी में बड़े सवाल हैं और तुम कहां गौ-हत्या की बातों में पड़े हो! ये
ही मूढ़ जन, ये ही देहाती किस्म के साधु-संत, गंवार जिनको कहना चाहिए--गंवार का मतलब समझ लेना, गांव के, और कुछ मतलब नहीं है। गंवार यानी गांव के--ये ही भारत को बीसवीं सदी में नहीं आने दे रहे हैं। इन्हीं दुष्टों के कारण भारत पिछड़ा हुआ है। यह कोई हजार साल पीछे जिंदा है।
दुनिया कहां से कहां पहुंच गई! आदमी जमीन से चांद तक पहुंच गया। ये गऊ
के थन से अटके हुए हैं! और थन में से कुछ निकलता भी नहीं। कुछ निकले तो भी ठीक, मगर थन ही खींच रहे हैं! और गौ-भक्ति चल रही है!

मगर ये सब राजनीतिक दांव-पेंच हैं। यह हिंदू-मन का शोषण है। हिंदू की धारणा है गौ-भक्ति की। तो बस हिंदू-मन को शोषण करना हो, तो गौ-भक्ति की बात करो।
और वे कहते हैं कि "अगर मैं इतना कर दूं, तो वे मेरे शिष्य हो जाएंगे।" तुम तो हो जाओगे, मगर मैं तुम्हें शिष्य स्वीकार करूंगा? कभी नहीं! ऐसे दकियानूसी लोगों को मैं शिष्य स्वीकार नहीं करता।
और पहली तो बात यह कि शिष्य होने की शर्त नहीं होती। और तुम शर्त लगा रहे हो। सशर्त कोई शिष्य होता है? शिष्य का अर्थ ही होताः बेशर्त समर्पण। वे शर्त लगा रहे हैं कि गौ-हत्या बंद करवा दूं, तो मेरे शिष्य हो जाएंगे! जैसे मुझे प्रलोभन दे रहे हों; जैसे मुझे कुछ रस हो इनके शिष्य होने में! इनका क्या करूंगा? और एक बांझ गाय बांध ली घर में! इनका करना क्या है! कोई यहां श्रीमद्भागवत सप्ताह करवाना है?
और श्रीमद्भागवत में है भी क्या? जो हिंदू नहीं है, अगर वह पढ़ेगा श्रीमद्भागवत तो हैरान होगा कि कृष्ण की जिन लीलाओं का वर्णन है, अगर ये लीलाएं हरेक करने लगे तो हरेक आदमी जेल में हो। फिर हमें जेल बड़े करना पड़ें। सच तो यह है कि हमें सबको जेल में कर देना पड़े, कुछ थोड़े से लोग जो श्रीमद्भागवत को मान कर न चलते हों, उनको बाहर। या यूं समझो कि अभी जो जेल हैं, उनको बाहर बना देना पड़े और अभी जो बाहर है उसको जेल बना देना पड़े। श्रीमद्भागवत में है क्या? जरा सोचो, जरा विचारो। तुम्हारी स्त्रियों के जरा कोई कपड़े चुरा कर झाड़ पर चढ़ जाए, तो क्या करोगे? पुलिस में खबर करोगे कि इनकी पूजा करोगे? "पूजा" ही के अर्थों में पूजा करनी पड़ेगी फिर; ठीक से "पूजा" करनी पड़ेगी! जिसको मराठी में "शिक्षा" कहते हैं, वैसी शिक्षा देनी पड़ेगी।
और कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियां थीं, जिनमें दूसरों की स्त्रियां थीं भगाई हुई! दूसरों की विवाहित स्त्रियां थीं भगाई हुई! सब चोरी-चपाटी थी।
और बड़ा मजा यह है कि कृष्ण की लोग प्रशंसा किए चले जाते हैं ये भक्तगण, क्योंकि उन्होंने द्रौपदी की लाज बचाई। और सोलह हजार स्त्रियों की लाज लूटी, उसका कुछ हिसाब नहीं! दूसरों की स्त्रियों की लाज लूटी, उसका कुछ हिसाब नहीं। और द्रौपदी इनकी बहन थी, उसकी लाज बचाई तो कोई खास बात हुई? अरे, अपनी बहन की तो कोई भी लाज बचाता है! इसीलिए तो जब किसी को तुम गाली देते हो, तो उसको बहन की गाली देते हो। कभी सोचा तुमने, क्यों देते हो? बहन का कोई हाथ ही नहीं है! बहन की गाली देकर तुम उसको उकसाते हो कि बचाओ लाज! एक बड़े मजे की बात है कि आदमी कसूर करे, उसकी बहन को गाली पड़ती है! और किसी की बहन को गाली दो, फौरन लट्ठ लेकर खड़ा हो जाता है। लाज बचाएगा ही। सभी कृष्ण हैं इस अर्थों में तो!
और ये दूसरों की स्त्रियां भगा लाए! और इसका भक्त गण बड़ी प्रशंसा से-- क्या रस ले-ले कर वर्णन करते हैं! आह! वाह-वाह! सुभान अल्लाह!
कोई यहां श्रीमद्भागवत सप्ताह करवाना है? मैं ऐसे लोगों को शिष्य वगैरह नहीं लेता। मेरा रस इन दकियानूसी मुर्दों में नहीं है; वे होना भी चाहें, तो भी दरवाजे के बाहर से संत महाराज ही उन्हें लौटा देंगे कि रास्ते पर लग जाओ! आगे बढ़ो!

और तीसरी बात, उन्होंने कहा कि "ओशो जी को भगवान कहने में मुझे तकलीफ नहीं है।" तकलीफ नहीं है, तो कहा किसलिए? तकलीफ होगी, नहीं तो बात ही कहने की नहीं है कुछ।
"भगवान" कहने में तकलीफ नहीं है और भगवान को कच्छ आने देने में तकलीफ है? क्या मजे की बात हो रही है!
और कहा कि "मैं उन्हें बड़े पवित्र, प्रज्ञावान और विद्वान समझता हूं।" अगर बड़े पवित्र, प्रज्ञावान और पवित्र समझते हो, तो जो मैं कह रहा हूं, उस पर थोड़ा ध्यान दो। उस पर तो कुछ ध्यान देते नहीं।

यह कहा होगा डर के मारे, क्योंकि मेरे संन्यासियों ने उनको ऐसी दिक्कत में डाल दिया कि उनको किसी तरह समझाने-बुझाने के लिए कहा होगा कि चलो, भगवान भी माने लेता हूं, प्रज्ञावान भी माने लेता हूं।
प्रज्ञावान हम उसको कहते हैं, जिसको बुद्धत्व उपलब्ध हुआ, प्रज्ञा उपलब्ध हुई। अब जिसको बुद्धत्व उपलब्ध हुआ, उसकी बात सुनो, समझो, अगर मानते हो तो। या फिर इस तरह की झूठी बातें न कहो। ये खुशामदी बातें हैं। मगर तथाकथित भक्त बस, खुशामद ही सीखे हैं।
इस देश में चमचे बहुत पुराने हैं। यह कोई नई बात नहीं है कि आज दिल्ली में चमचे इकट्ठे हो गए हैं। चमचा इस मुल्क में बड़ा धार्मिक व्यक्ति रहा है--सदा से। इसलिए तो हम परमात्मा की स्तुति करते हैं; वह चमचागिरी है, और कुछ भी नहीं--कि हम पापी और तुम महाकरुणावान, कि हम दीन-हीन और तुम दीन-हीनों को बचाने वाले! यह तुम स्तुति कर रहे हो या खुशामद? स्तुति का मतलब भी खुशामद ही होता है।
और खुशामद से तुम सोचते हो तुम परमात्मा को प्रसन्न कर लोगे! राजनेताओं को कर लो भला, क्योंकि ये तुम जैसे ही मूढ़ हैं। इनमें और तुममें कुछ भेद नहीं। इनको तुम जो कहो खुशामद में, उसको मान लेंगे।
निपट भोंदुओं को कहो कि आप जैसा बुद्धिमान कोई भी नहीं है; जिनकी शक्ल देख कर बच्चे डर जाएं, उनको कहो कि अहा, आपका सौंदर्य! नहीं पृथ्वी पर ऐसे कोई सौंदर्य का धनी हुआ कभी! और ये बड़े प्रसन्न होंगे, बड़े आनंदित होंगे। ये तुम्हारी बात स्वीकार कर लेंगे। इसी स्तुति को तुम परमात्मा के लिए कर रहे हो।
परमात्मा को भी लोग रिश्वत दे रहे हैं इस देश में। इसलिए तो रिश्वत इस देश से हटाना बहुत मुश्किल है। नारियल चढ़ा आते हैं हनुमानजी को। नारियल क्या है? रिश्वत है--कि बेटा नहीं हो रहा, बेटा पैदा हो जाए, तो एक नारियल और चढ़ाऊंगा; कि पांच आने का प्रसाद बांट दूंगा! कि हे गणेशजी, अगर इस बार लाटरी मेरे नाम खुल जाए, तो पक्का समझो, सत्यनारायण की कथा करवा दूंगा; गणेश उत्सव में गणेश की मूर्ति बनवा दूंगा, कि झांकी सजवा दूंगा!
तुमने क्या समझा है परमात्मा को? मगर लोग ऐसे ही मूढ़ हैं।
मेरे गांव में, जब मैं छोटा था, मेरे गांव में मुहर्रम बड़े उत्सव से मनाया जाता है। और हिंदू-मुस्लिम दंगा मेरे गांव में कभी हुआ नहीं। तो हिंदू-मुसलमान दोनों ही सम्मिलित होते हैं। और मुहर्रम के समय वली उठते हैं, वली की सवारियां उठती हैं। और जो आदमी सवारी लेकर कूदता-फांदता है, उछलता है, उसके सामने लोग मनौतियां मनाते हैं। और जो जितना उछलता-कूदता है, उतना ही बड़ा वली समझा जाता है।
मुझे बचपन से ही शक रहा कि यह उछल-कूद सब झूठ है। तो मैं बामुश्किल कोशिश करके एक सवारी की डोर पकड़ने को किसी तरह से मौका पा गया। पीछे ही पड़ा रहा लोगों के, तो उन्होंने कहा कि "अच्छा भई, इस छोकरे को रस्सी पकड़ा दो; यह पीछे ही पड़ा है। बड़ा धार्मिक भाव वाला है!"
मैं साथ में एक सुई भी ले गया था, क्योंकि मैंने सुन रखा था कि जब वली आ जाते हैं, तो फिर उसको पता ही नहीं चलता; गर्दन भी काट दो, तो पता नहीं चलता। तो मैं सुई चुभाऊं कि पता चलता है कि नहीं। और जब मैं सुई चुभाऊं, तो वे और उछलें-कूदें। पता उसे ठीक से चल रहा है कि जब भी सुई चुभाऊं, तब वह और उछले-कूदे, और शोरगुल मचाए!
हालत यह हो गई कि मैं जिसकी डोर पकड़ लूं, वह वली सबसे ज्यादा प्रसिद्ध
हो जाए गांव में, उसको ज्यादा चढ़ोतरी चढ़े; और लोग कहने लगे, "इस छोकरे में भी कुछ गुण है, जिसकी डोर पकड़ लेता है... ।" मगर जो वली बनें, वे मेरे हाथ-पैर जोड़ें बाद में कि "भैया, तू किसी और की डोर पकड़ना। अब तुझसे क्या छिपाना! और हम वैसे ही कूदेंगे, तू सुई मत चुभाया कर!"
यह प्राइवेट, अकेले में मुझसे कह दें कि देख, सुई मत चुभाना। डोर तू भला पकड़, क्योंकि फायदा हमें भी है, चढ़ोतरी होती है। कोई बेटा नहीं हो रहा, किसी को बेटी नहीं हो रही, किसी की सगाई नहीं हो रही। तो लोग चढ़ोतरी चढ़ाते हैं, रेवड़ियां बंटवाते हैं, मिठाइयां लाते हैं। तेरी वजह से हमको कम से कम चार-पांच गुना ज्यादा मिलता है। मगर तू हमारी जान ले लेता है। हम वैसे ही

उचकेंगे। तू सिर्फ हाथ से इशारा कर दिया कर। सुई चुभाने की कोई जरूरत नहीं है।
तो मैं उनसे कहता कि आधा मेरा! तो आधा मुझे मिलता। और मैंने करीब-करीब सारे वलियों की रस्सियां पकड़ कर देखीं, वे सब सुई चुभाने से खूब उछलते- कूदते। और बाद में मुझसे हाथ जोड़ कर कहते कि भैया, तू हमारी बदनामी न करवा। क्रोध तो हमें इतना आता है एक झापड़, तेरे को एक चपत मार दें, मगर अगर मारें, तो हमारी भद्द खुल जाए। सो हम कुछ कह भी नहीं सकते, उछलना ही कूदना पड़ता है।
मगर लोग चढ़ा रहे हैं... । तब से मैंने देखा कि क्या धोखाधड़ी चल रही है! गणेशजी की मूर्ति के सामने चढ़ा रहे हो, हनुमान जी की मूर्ति के सामने चढ़ा रहे हो! किसी को गौ-भक्ति की पड़ी है, किसी को बंदर-भक्ति की पड़ी है! कोई हाथियों की पूजा कर रहा है! इस देश की बुद्धि तो देखो थोड़ी।
अब वे खुशामद के लिए कह रहे हैं। यह स्तुति है झूठी। वे मेरे संन्यासी... । और मेरे संन्यासी तो तर्क करने में कुशल हो जाते हैं। वे तो चोट करने में कुशल हो जाते हैं। उनके पास तो तलवार में धार आ जाती है। तो बीस-पच्चीस संन्यासी गए, उन्होंने उनको ठिकाने लगा दिया होगा। उस भय से कह रहे हैं। नहीं तो यह विरोधाभास कैसा?

चौथी बात उन्होंने कही कि "अखबारों में मेरा जो निवेदन अन्य चौदह साधु-महंत-मंडलेश्वर आदि के साथ आया है, उसमें जो शब्द और भाषा छापी गई है, ऐसा मैंने कभी कहा ही नहीं है; जो भी छपा है वह प्रेस की विकृति मात्र है।"

अगर ऐसा है शंभू महाराज, तो उसका खंडन करना चाहिए अखबारों में। यह मेरे शिष्यों को कहने से कुछ सार नहीं है। अखबारों में खंडन करो कि तुम्हारे वचन गलत छापे गए हैं। वह तो तुमने खंडन नहीं किया। यह झूठ बात है।
सचाई यह है कि शंभू महाराज ने पच्चीस हजार रुपया देकर अखबारों में वे वक्तव्य छपवाए। अखबारों में कोई वक्तव्य छापने को राजी भी नहीं था। और ये कौन हैं चौदह साधु महंत मंडलेश्वर? ये वे ही लोग हैं, जिनके निहित स्वार्थों पर मुझसे चोट हो रही है। ये वे ही लोग हैं, जो कह रहे हैं--जगत माया है और ब्रह्म सत्य है। ये वे ही लोग हैं, जो लोगों का शोषण कर रहे हैं और इस देश की प्रज्ञा को आगे नहीं बढ़ने दे रहे। ये वे लोग हैं, जो जंजीरें हैं, जिनको तोड़े बिना हम आगे बढ़ नहीं सकेंगे। ये हमारे फांसी के फंदे हैं। अगर यह सच है, तो मेरे संन्यासियों से कहने से कोई प्रयोजन नहीं। अखबारों में वक्तव्य दो कि तुम्हारा वक्तव्य गलत छापा गया है, विकृत किया गया है। और अखबारों में स्वीकार करो कि तुम मुझे भगवान स्वीकार करते हो, प्रज्ञावान स्वीकार करते हो, विद्वान स्वीकार करते हो।
ये स्वीकार नहीं कर सकेंगे अखबारों में वे। क्योंकि ये स्वीकार करेंगे, तो फिर मेरा कच्छ आने में विरोध कैसे करेंगे? विरोध तो वे यह कर रहे हैं कि मेरे कच्छ आने से कच्छ की संस्कृति नष्ट हो जाएगी, कच्छ की सभ्यता नष्ट हो जाएगी, कच्छ तो पाताल में चला जाएगा--मेरे आने से!
इनमें से किसी को कच्छ की अभी तक कोई सुध न थी। मैंने कच्छ जाने की बात की, तो इनको कच्छ की बड़ी प्रीति जगी है! सबको कच्छ की प्रीति जगी है। कच्छ को बचाना है!
और मैं जो दे रहा हूं, वह संस्कृति नहीं तो क्या है? निश्चित ही वह बीसवीं सदी की संस्कृति है। बीसवीं की ही नहीं, इक्कीसवीं सदी की संस्कृति है। मैं जो दे रहा हूं, वह भविष्य की सभ्यता है। और तुम जो बचा रहे हो, वे अतीत की मुर्दा लाशें हैं, जिनको कभी का दफना दिया जाना चाहिए था।
इसलिए वक्तव्य वे दे भी नहीं सकते, क्योंकि अगर कहें कि यह भगवान है व्यक्ति, प्रज्ञावान है, तो फिर इससे कैसे संस्कृति नष्ट हो जाएगी और सभ्यता नष्ट हो जाएगी? और जब मेरे शिष्य होने को तैयार हैं... । और मुद्दा क्या है कि गौ-हत्या बंद हो जाए, तो वे मेरे शिष्य होने को तैयार हैं!

शंकराचार्य को छोड़ने को इतनी जल्दी तैयार! फिर मेरी सब गलत बातें मानने को तैयार! फिर मैं तुम्हारी संस्कृति नष्ट नहीं कर दूंगा? फिर तुम्हारी सभ्यता का क्या होगा, तुम्हारे धर्म का क्या होगा? कच्छ को डुबा रहा हूं, तुमको भी डूबा दूंगा! तुम कैसे बचोगे मेरे शिष्य होकर? गौ बच जाएगी मान लो, मगर तुम कैसे बचोगे?
यह जरा सोचो। इस तरह के व्यर्थ के लोग हमारी छाती पर सवार हैं।

और पांचवीं बात उन्होंने कही कि "अब ओशो अच्छे ढंग से बोल रहे हैं; पहले जैसे नहीं रहे हैं, कुछ सुधर गए हैं!"

बिल्कुल गलत! मैं और बिगड़ रहा हूं। सुधरने का सवाल ही नहीं उठता। मुझे जैसे-जैसे अनुभव होता जा रहा है इन सारे नासमझों का, उतनी-उतनी मैं धार रख रहा हूं। इनकी गर्दनें काटनी हैं। मैं चोट और गहरी कर रहा हूं। मेरी चोट रोज गहरी होती जाएगी। इस गलती में न रहे कोई। मगर यह फिर वे मेरे शिष्यों को समझा रहे हैं।
अब यह बड़े मजे की बात है कि एक तरफ कहते हैं मुझे "भगवान", और दूसरी तरफ
यह भी कहते हैं कि सुधर रहे हैं! भगवान में भी कुछ सुधरने को बचता है? मतलब यह हुआ कि भगवान हो कर भी कुछ सुधरने को रह जाता है शेष! बिगड़ने को ही बचता है, सुधरने को कुछ नहीं बचता। अब भगवान ही हो गए तो अब बिगड़ने का डर भी नहीं रहता। अब तो तुम मुझे नर्क में भी भेज दो, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। वहीं उत्सव मनाऊंगा। वहीं तुम पाओगे कि शैतान को मैंने संन्यासी बना लिया है! अब मुझे कोई न सुधरना है, न बिगड़ने का कोई डर है। मगर ये देखते हो मूढ़तापूर्ण बातें कि ओशो अच्छे ढंग से बोल रहे हैं; पहले जैसे नहीं रहे हैं, कुछ सुधर गए हैं! "कुछ"! उसमें भी कंजूसी है। "पूरा" कैसे कहें, क्योंकि भीतर तो कुछ और भरा है। भीतर तो यह भरा है कि मैं उनकी जड़ें काटे डाल रहा हूं। इसलिए कुछ अपने लिए बचाव भी तो रखना पड़ेगा। अगर कह दें कि बिल्कुल सुधर गए हैं, तो फिर विरोध कैसे करेंगे? तो कुछ सुधर गए हैं! सो मेरे संन्यासियों को भी राजी कर लें और महंत मंडलेश्वर और महात्माओं को भी राजी कर लें कि कुछ ही कहा है मैंने, कुछ पूरा तो कहा नहीं।
भगवान का अर्थ ही होता है कि जिसने सब पा लिया; जिसने अपने को पा लिया;
जो अपने घर आ गया; जिसने अपने स्वभाव में थिरता पा ली। ज्यूं था त्यूं ठहराया!

और आखिरी छठवीं बात उन्होंने कही कि "मैं अखिल भारत सनातन धर्म परिषद
का उप-प्रमुख हूं। और गुजरात में रहने के कारण कच्छ के आश्रम का विरोध संगठन की ओर से करना पड़ रहा है।"

क्या बेईमानी है! तो छोड़ो ऐसा संगठन जिसके कारण झूठ काम करने पड़ रहे हैं!
इस वक्तव्य का तो मतलब यह हुआ कि वे विरोध नहीं करना चाहते, लेकिन चूंकि सनातन धर्म परिषद के उप-प्रमुख हैं, इसलिए संगठन के कारण विरोध करना पड़ रहा है। तो छोड़ो संगठन सत्य के लिए। सत्य बड़ा है कि संगठन बड़ा है? लेकिन सब तरफ राजनीति है। उप-प्रमुख हैं, कैसे छोड़ दें! पद पर हैं। पद बड़ी चीज है, सत्य वगैरह की किसको फिकर है! सत्य का विरोध किया जा सकता है, मगर पद थोड़े ही छोड़ा जा सकता है! पद के लिए समझौता किया जा सकता है।
ये कैसे धार्मिक लोग हैं, जो खुद कह रहे हैं अपने मुंह से कि संगठन के कारण विरोध करना पड़ रहा है; मैं विरोध नहीं करना चाहता! यह तो मजबूरी है, चूंकि मैं उप-प्रमुख हूं।
तो इस्तीफा क्यों नहीं देते? कौन तुम्हें रोक रहा है इस्तीफा देने से? इस्तीफा दे दो। ऐसे संगठन में क्या रहना जो गलत काम करता हो, गलत काम करवाता हो? और ऐसे संगठन को सनातन धर्म कैसे कहना?

सनातन धर्म किसी की बपौती नहीं है। हिंदुओं की कोई बपौती नहीं है। सनातन धर्म और हिंदू-धर्म पर्यायवाची नहीं हैं। सनातन धर्म पर किसी का ठेका नहीं है।
सनातन धर्म का अर्थ होता हैः धर्म की वह अनंत धारा, जिसमें सब बुद्ध हुए--लाओत्सु हुए, जरथुस्त्र हुए, कृष्ण हुए, महावीर हुए, जीसस हुए, कबीर हुए, नानक हुए, रैदास हुए, रज्जब हुए। यह अनंत धारा!
सनातन धर्म का अर्थ हिंदू नहीं है। सनातन धर्म का अर्थ तो समस्त धर्मों का जो सार है, निचोड़ है--बाइबिल, कुरान, वेद, धम्मपद, अवेस्ता--इन सबका जो निचोड़ है, जो सारसूत्र है। "एस धम्मो सनंतनो" बुद्ध ने कहा है। वह है सनातन धर्म, जो सारे धर्मों का निचोड़ है।
धर्म आते हैं और जाते हैं, सनातन धर्म न आता है, न जाता है। सनातन धर्म
तो सत्य का पर्यायवाची है। हिंदू रहें दुनिया में न रहें, कोई फर्क नहीं पड़ता--सनातन धर्म रहेगा! किसी और रंग-ढंग में रहेगा, किसी और वेश में रहेगा, किसी और शास्त्र से प्रकट होगा, किसी और बुद्ध के वचनों में झलकेगा। हिंदुओं के होने से कुछ फर्क नहीं पड़ता।
लेकिन हिंदुओं को यह भ्रांति है कि उनका धर्म सनातन है। जैनों को यह भ्रांति है कि उनका धर्म सनातन है। जैन दावा करते हैं कि वेद से भी पुराना है उनका धर्म, क्योंकि वेद में, ऋग्वेद में जैनों के पहले तीर्थंकर के नाम का उल्लेख है। इससे बात तो यह सिद्ध होती है कि ऋग्वेद बाद में लिखा गया होगा। जैनों के पहले तीर्थंकर, पहले हो चुके होंगे। और सम्मानपूर्वक उल्लेख है; जीवित अगर होते तो सम्मान तो हो ही नहीं सकता था। जीवित बुद्ध का तो हमेशा अपमान होता है! कम से कम मरे हुए तीन सौ साल तो हो ही गए होंगे, कम से कम, ज्यादा हो गए होंगे, मगर कम से कम तीन सौ साल का फासला तो चाहिए, तब तक सम्मान मिल पाता है।
जीवित बुद्धों को तो सूली लगती है, पत्थर मारे जाते हैं, कानों में खीले ठोंके जाते हैं। मुर्दा बुद्धों की पूजा की जाती है!
इतने सम्मान से उल्लेख है आदिनाथ का, इससे सबूत मिलता है कि देर हो गई होगी, काफी समय हो गया होगा आदिनाथ को हुए। अगर जीवित होते तो वेद उनका सम्मानपूर्वक उल्लेख नहीं कर सकते थे, क्योंकि आदिनाथ और वेद में क्या तालमेल? कोई तालमेल नहीं।
वेद बहुत ही लौकिक है, बहुत ही सांसारिक है, बहुत पदार्थवादी है। वेद में कुछ सूत्र हैं जो अध्यात्म के हैं। निन्यानबे प्रतिशत सूत्र तो बिल्कुल ही भौतिकवादी हैं--इतने भौतिकवादी कि भौतिकवादी भी शरमा जाए। गौ- भक्तों की ऐसी-ऐसी प्रार्थनाएं वेदों में हैं कि मेरी गऊ के थनों में दूध बढ़ जाए और दुश्मन की गऊ के थनों का दूध सूख जाए। क्या धार्मिक बातें हो रही हैं!
और वेद के समय में गौ-हत्या जारी थी, अश्वमेध यज्ञ होते थे, गौमेध यज्ञ होते थे, नरमेध यज्ञ भी होते थे, जिनमें आदमियों की बलि दी जाती थी। गऊओं की बलि दी जाती थी, घोड़ों की बलि दी जाती थी। और ये वेद को मानने वाले लोग शोरगुल मचाए फिरते हैं--गौ-हत्या बंद होनी चाहिए! वेदों में कहीं कोई गौ- हत्या बंद करने का उल्लेख नहीं है।
आदिनाथ बिल्कुल विरोध में थे--किसी भी तरह की हिंसा के। जैन धर्म का
तो मूल ही है--"अहिंसा परम धर्म।"
आदिनाथ का सम्मान से उल्लेख इस बात का सूचक है कि काफी समय हो चुका होगा आदिनाथ को मरे। तो जैनों के पास तर्क तो है कि उनका धर्म इनसे भी ज्यादा पुराना है। लेकिन पुराने होने से कोई सनातन नहीं होता।
जैनों के पहले और संस्कृतियां हो गईं, और धर्म हो गए। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो में खुदाई जो हुई है, वे सात हजार साल पुरानी सभ्यता के अवशेष हैं। हड़प्पा में एक मूर्ति मिली है--पद्मासन में बैठे हुए व्यक्ति की। निश्चित ही योग, पतंजलि के योग-सूत्र से ज्यादा पुराना है। महावीर बैठे पद्मासन में, इससे पांच हजार साल पहले कोई बैठ चुका है। हड़प्पा में उसकी मूर्ति मिली है।

और हड़प्पा और मोहनजोदड़ो दोनों ही आर्यों के भारत आने के पहले की सभ्यताएं हैं, आर्यों का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। और आर्यों ने कहीं हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की सभ्यता का उल्लेख नहीं किया है। वेदों में कोई उल्लेख नहीं है। वेद बाद में रचे गए हैं।
तो हड़प्पा, मोहनजोदड़ो में कोई धर्म रहा होगा, तब तो पद्मासन लगाए बैठा
है कोई आदमी, ध्यान कर रहा है। एक आदमी की आंख बंद किए हुए खड़ी हुई मूर्ति मिली है। कोई आंख बंद करके खड़ा होकर ध्यान कर रहा है।
ध्यान भी था, योग भी था, धर्म भी था--हिंदुओं के बहुत पहले, जैनों के बहुत पहले, बौद्धों के बहुत पहले। मगर कहां गया वह धर्म जो हड़प्पा, मोहनजोदड़ो में था? न उसके मानने वाले रहे, न वह धर्म रहा।
मगर धर्म किसी के साथ नष्ट नहीं होता। सवारियां बदल जाती हैं, मगर धर्म की यात्रा जारी रहती है। पश्चिम में बहुत से धर्म रहे। समाप्त हो गए। मगर धर्मों के समाप्त होने से धर्म समाप्त नहीं होता। धर्म सनातन है। धर्म का अर्थ समझो। धर्म का अर्थ हैः जगत का स्वभाव; जगत का नियंत्रण करने वाला सूत्र, जगत को जो अपने में बांधे हुए है। जगत को जो धारण किए हुए है--वह धर्म। "एस धम्मो सनंतनो!" उसी धर्म को हम सनातन कह सकते हैं। उसका हिंदू, ईसाई, मुसलमान से कुछ लेना-देना नहीं; जैन-बौद्ध से कुछ लेना-देना नहीं। ये सब उसी धर्म की छायाएं हैं।
जैसे चांद निकलता है, तो नदी में भी प्रतिबिंब बनता है, तालाब में भी, झील में भी, पोखरों में भी, डबरों में भी--जिसकी जितनी हैसियत, वैसा प्रतिबिंब बन जाता है। गंदा डबरा होगा, तो उस में भी प्रतिबिंब बनता है। तुम एक थाली रख दोगे पानी भर कर, तो उसमें भी प्रतिबिंब बनेगा। करोड़ों प्रतिबिंब बनेंगे, चांद एक है। क्या तुम सोचते हो, तुम्हारी थाली टूट जाएगी, पानी बिखर जाएगा, तो चांद टूट जाएगा और बिखर जाएगा? क्या तुम सोचते हो, तुम्हारी तलैया सूख जाएगी, तो चांद सूख जाएगा? क्या तुम सोचते हो, तुम्हारी नदी आंधी-तूफान से भर जाएगी और लहरें उठ आएंगी तो प्रतिबिंब छितर-बितर हो जाएगा, मगर चांद थोड़े ही छितर-बितर हो जाएगा।
एस धम्मो सनंतनो! वह धर्म सनातन है, जिसकी छायाएं तो बनती हैं, मिटती हैं, मगर जो स्वयं न बनता है न मिटता है, जो सदा से है। सभी बुद्धों ने उसकी तरफ इशारा किया है। सबकी अंगुलियां उसी चांद की तरफ उठी हैं। अंगुलियां अलग-अलग हैं, चांद एक है। अंगुलियां मत पकड़ लेना।
जो हिंदू होकर बैठ गया, उसने एक अंगुली पकड़ ली। जो जैन होकर बैठ गया, उसने दूसरी अंगुली पकड़ ली। जो ईसाई होकर बैठ गया, उसने तीसरी अंगुली पकड़ ली। ये तीनों अंगुलियां अलग-अलग हैं। निश्चित जीसस की अंगुली अलग होगी। महावीर की अंगुली अलग होगी; बुद्ध की अंगुली अलग होगी; कृष्ण की अंगुली अलग होगी; अंगुलियां अलग-अलग होंगी। इनकी देहें अलग-अलग हैं, इनके रंग-रूप अलग-अलग हैं, इनकी भाषा अलग-अलग हैं; मगर जिस चांद की तरफ इशारा है, न ईसाई देखता उस चांद को, न हिंदू देखता, न बौद्ध देखता; किसी को उस चांद से मतलब नहीं, सबको अपनी-अपनी अंगुली की पड़ी है। अंगुली की पूजा चल रही है। बड़ी अजीब यह दुनिया है!
मैंने सुना है, एक महात्मा के दो शिष्य थे। एक दोपहर महात्मा, गर्मी थी, लेटा। दोनों शिष्यों में झगड़ा हो रहा था, प्रतिस्पर्धा हो रही थी--कौन सेवा करे। महात्मा ने कहा, "ऐसा करो, तुम मुझे बांट लो। यह झगड़ा बंद करो। बायां पैर एक का, दायां पैर एक का।
महात्मा लेट गया। एक बायां पैर दबाने लगा; जिसका बायां पैर था, वह बायां दबाने लगा। जिसका दायां था, वह दायां दबाने लगा। नींद में महात्मा ने करवट बदली; बाएं पर दायां पैर पड़ गया। तो जिसका बायां था, उसने कहाः हटा ले अपने पैर को! मेरे पैर पर पड़ रहा है।
उसने कहाः अरे देख लिए तेरे जैसे बहुत! कौन है, जो मुझसे कहे कि हटा ले!
है कोई माई का लाल, जो मुझसे कह दे कि मेरा पैर हट जाए? नहीं हटेगा। कर ले जो तुझे करना है!
उसने कहाः देख हटा ले! नहीं तो कुटाई कर दूंगा तेरे पैर की!

उसने कहाः देखूं तो तू कर कुटाई मेरे पैर की। अगर तेरे पैर को काट कर
दो टुकड़े न कर दूं, तो मेरा नाम नहीं; मेरे बाप का नाम बदल देना!
इनकी बातचीत सुन कर महात्मा की नींद खुल गई। आंखें बंद की हुईं उसने बात सुनी। उसने कहा, "भाइयो, रुको, दोनों पैर मेरे हैं। न तेरा बायां है, न उसका दायां है! अब मेरे पैर की कुटाई और काटपीट मत कर देना!"
मगर यही हो रहा है। सत्य की काट-पीट हो रही है, क्योंकि मेरा, तेरा! सत्य किसी का भी नहीं है। हम सत्य के हो सकते हैं, सत्य हमारा नहीं होता। और दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं--एक वे, जो चाहते हैं, सत्य हमारा हो, हमारे अनुकूल हो, हमारे ढांचे में ढले; और एक वे, जो कहते हैं, हम सत्य के होने को राजी हैं; सत्य का जो रंग हो, जो ढंग हो, सत्य जहां ले जाए, हम उसके साथ जाने को राजी हैं; हम सत्य की छाया बनने को राजी हैं।
ये दूसरे लोग ही केवल सत्य को खोज पाते हैं। पहले तरह के लोग तो हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, पारसी, सिक्ख होकर समाप्त हो जाते हैं। ये कभी सत्य को नहीं पा सकते हैं।
यह कैसा सनातन धर्म है?
शंभू महाराज कहते हैं, मैं अखिल भारतीय सनातन धर्म परिषद का उप-प्रमुख हूं। और गुजरात में रहने के कारण कच्छ के आश्रम का विरोध संगठन की ओर से करना पड़ रहा है।
यह तो बड़ी राजनीति हो गई। यह तो कुछ सनातन धर्म न रहा। यह तो धर्म भी न रहा, सनातन की तो बात ही छोड़ दो। इसमें तो कुछ धार्मिकता भी न रही; यह तो पद का मोह रहा।
छोड़ो ऐसा पद जिसके कारण गलत काम करना पड़ रहा है। इतनी धार्मिकता का सबूत तो दो। छोड़ो ऐसा संगठन, जिसके कारण विरोध करना पड़ रहा है। उप-प्रमुख बने रहने के लिए इतना रस है!
अजीब लोग हैं और अजीब झूठों में पड़े हैं। अजीब बेईमानियों में उलझे हुए हैं। और बेईमानियों को बड़े अच्छे-अच्छे शब्दों में ढाल रहे हैं, ढांक रहे हैं। फिर इनके झूठों के पर्दे के बीच से ये जो भी देखते हैं, वह भी विकृत हो जाता है। ये मुझे समझ नहीं पाते। कैसे समझ पाएंगे? इनके आग्रह ही, इनके पक्षपात ही, इनके पूर्वाग्रह ही बाधाएं बन जाते हैं।
सुना है मैंने, किसी सरकारी कार्यवश एक सप्ताह के लिए दिल्ली गए थे। दूसरे ही दिन वापस लौट आए। मैंने पूछाः आश्चर्य है कि आप तो सात दिन के लिए जरूरी काम के लिए दिल्ली गए थे, दो ही दिन में कैसे लौट आए! बोलेः क्या बताएं, साले दिल्ली के लोगों को मेरे आने की खबर पहले से ही हो गई थी। अतः उन्होंने मेरी बेइज्जती करने के लिए जगह-जगह स्टेशन पर ही मेरे विरोध में पोस्टर चिपका दिए थे। इसलिए तो मैं स्टेशन से ही वापस लेकर टिकट, तुरंत लौट आया।
मेरा आश्चर्य और बढ़ा। मैंने कहाः मैं कुछ समझा नहीं। मामला जरा विस्तार से बतलाइए! मेरे बार-बार पूछने पर उन्होंने बामुश्किल सकुचाते हुए कहा, दिल्ली के कुछ गुंडों, लफंगों और असामाजिक तत्वों ने पोस्टर चिपकाए थे, जिन पर लिखा था--आज ही देखिए, चूकिए नहीं। आ गया, आ गया आपके शहर में--जोरू का गुलाम!
वे तो बेचारे किसी फिल्म का पोस्टर चिपकाए थे, मगर ये जोरू के गुलाम हैं ढब्बूजी। ये समझे कि मेरे लिए पोस्टर चिपकाए गए हैं--आ गया, आ गया! आज ही आपके शहर में, जोरू का गुलाम! स्टेशन से ही लौट आए!
लोग अपने ही पक्षों से, अपने पक्षपातों से, अपनी धारणाओं से देखते हैं, इसलिए सत्य से चूक जाते हैं। मैं सीधी-साफ बात कह रहा हूं--बिना लाग-लगाव के। सिर्फ वे ही समझ सकते हैं। जिनमें इतना साहस हो कि अपने पक्षपात और पूर्वाग्रहों को एक तरफ हटा कर रख दें। और मजा तो यह है, इन्हीं पक्षपातों के कारण लोग दुखी हैं। मगर फिर भी अपने दुख को भी लोग पकड़ लेते हैं। अपना दुख! अपना है, तो उससे भी मोह बना लेते हैं।
दो मित्र सड़क पर जा रहे थे। एक मित्र चलता और बीच-बीच में रुक जाता। दूसरे मित्र ने पूछा, "क्या आपका जूता तंग है, कि आप ठीक से चल नहीं पा रहे?"

पहला बोलाः हां, वाकई जूता तंग है।
दूसरे मित्र ने कहाः तब तो आपको बड़ा कष्ट हो रहा होगा?
पहला बोलाः हां, थोड़ा तो है ही, पर इससे लाभ भी बहुत है।
दूसरा मित्र बोलाः लाभ! वह क्या है?
पहला मित्र बोलाः तंग जूता पहनने से जो कष्ट होता है, उससे दूसरे सभी कष्ट भूल जाते हैं!
एक से एक मजेदार लोग हैं। एक से एक उनकी तरकीबें हैं! तंग जूता पहने हुए हैं, और कष्ट भूल ही जाएंगे। तंग जूते का कष्ट इतना है कि अब और कष्ट क्या याद रहेंगे! चल रहे हैं घसिट कर, लंगड़ रहे हैं!
लोग दुखों को भी पकड़े बैठे हैं, झूठों को भी पकड़े बैठे हैं! और इतनी बातें उन्होंने कहीं और उन्हें जरा भी संकोच न आया कि क्या वे कह रहे हैं! शायद सोच-विचार भी न उठा होगा।
चंद्रकांत भारती ने ठीक किया कि मुझे ये सारी बातें लिख कर भेज दीं।
ये सारे लोग झूठों में पले हैं। इनके पास अपना कोई जीवंत अनुभव नहीं है; सब उधार है, सब बासा है। तोतों की तरह हैं ये लोग। ये दोहरा रहे हैं गीता, कुरान, बाइबिल। मगर अपना कोई अनुभव नहीं है। और जब तक सत्य स्वयं का अनुभव नहीं हो, तब तक सत्य सत्य नहीं होता।
मगर अपने झूठ पर भी अहंकार आरोपित हो जाता है। हमारे झूठ को भी कोई तोड़ दे, तो हमें पीड़ा होती है--हमारा जो था! और हमारे सारे चारों तरफ के वातावरण से हमें झूठ ही सिखाया जाता है।
एक वकील साहब ने अपने पुत्र को काबिल वकील बनाने का निश्चय किया था, इसलिए उसे बचपन से ही झूठ बोलना सिखा रहे थे। एक दिन पुत्र की परीक्षा लेने के लिए वकील साहब ने कहा, "बेटा, अगर तुम मेरी बात खतम होते ही फौरन कोई शानदार झूठ बोल कर दिखाओ, तो मैं तुम्हें दस रुपये दूंगा।"
अभी तो आप पंद्रह रुपया इनाम देने को कह रहे थे--पुत्र तुरंत बोला। देखा, सीख गया!
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को राजनीति का पाठ पढ़ा रहा था, उससे कहाः बेटा, सीढ़ी पर चढ़ जा। बेटा सीढ़ी पर चढ़ गया--आज्ञाकारी बेटा! और मुल्ला ने कहाः अब तू बेटा, कूद पड़। मैं तुझे सम्हाल लूंगा।
बेटा थोड़ा डरा कि कहीं चूक जाए। ऊंची सीढ़ी। कहीं बाप के हाथ से नीचे गिर जाएं, हाथ-पैर टूट जाएं! मुल्ला ने कहाः बेफिकर रह। अरे, अपने बाप पर भरोसा नहीं? कूद पड़!
थोड़ा झिझका, सकुचाया। मुल्ला ने फिर उसे उत्साह दिलाया, सो वह कूद पड़ा। और जब वह कूदा, तो मुल्ला दो कदम पीछे हट कर खड़ा हो गया! धड़ाम से नीचे गिरा। सिर फूट गया दीवाल से; पैर छिल गया; रोने लगा। मुल्ला ने कहाः चुप! उसने कहाः आप हट क्यों गए?
मुल्ला ने कहा कि अब तू याद रख--इस जिंदगी में अपने बाप का भी भरोसा ठीक नहीं। यह पाठ तुझे पढ़ाया है बेटा!
मुल्ला राजनीतिज्ञ है, अपने बेटे को राजनीति सिखा रहा है--यहां अपने बाप का भी भरोसा ठीक नहीं! ऐसा उसने नगद पाठ पढ़ाया।
यहां हम झूठों में पाले जा रहे हैं; उधार धारणाएं हम पर थोपी जा रही हैं और हम उनको ही ढो रहे हैं। आंखें अंधी हो गई हैं धारणाओं में। हृदय बंद हो गए हैं। कुछ सूझ-बूझ नहीं। कुछ होश-हवास नहीं।
इन छह ही बातों में इतनी विपरीतताएं हैं, इतने विरोधाभास हैं कि कोई
एक व्यक्ति इतनी बातें एक साथ कह सकता है, तो निश्चित ही विक्षिप्त होने का प्रमाण देता है।
मैं तो इतना ही चाहता हूं तुमसे कि तुम सारे पक्षपातों से मुक्त हो जाना। मेरी बातों को भी मत पकड़ना, क्योंकि मेरी बातें पकड़ोगे, तो वे पक्षपात बन जाएंगी। बातें ही मत पकड़ना।
तुम्हें निर्विचार होना है। तुम्हें मौन होना है। तुम्हें शून्य होना है। तभी तुम्हारे भीतर ध्यान का फूल खिलेगा। और ध्यान का फूल खिल जाए तो अमृत तुम्हारा है, परमात्मा तुम्हारा है। एस धम्मो सनंतनो!

और ध्यान का फूल खिल जाए, तो रज्जब की बात तुम्हें समझ में आ जाएगीः ज्यूं था त्यूं ठहराया! तुम वहीं ठहर जाओगे, तो तुम्हारा स्वभाव है।
स्वभाव में थिर हो जाना इस जगत में सबसे बड़ी उपलब्धि है।

आज इतना ही।